VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

हिन्दी

हिन्दी काव्य

SYLLABUS

UNIT-I **भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी काव्य का इतिहास : इतिहास लेखन की परंपरा एवं विकास** : भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य का काल विभाजन, नामकरण एवं साहित्यिक प्रवृत्तियाँ।

सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, रासो साहित्य, नाथ साहित्य और लौकिक साहित्य। भक्ति आंदोलन के उदय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण, भक्तिकाल के प्रमुख संप्रदाय और उनका वैचारिक आधार, निर्गुण और सगुण कवि और उनका काव्य। रीति काल की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नामकरण, प्रवृत्तियाँ एवं परिप्रेक्ष्य। रीतिकालीन साहित्य के प्रमुख भेद (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीति मुक्त, प्रमुख कवि और उनका काव्य)।

UNIT-II **आधुनिक कालीन काव्य का इतिहास** : सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नामकरण एवं प्रवृत्तियाँ, 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और पुनर्जागरण, हिन्दी नवजागरण, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग एवं छायावाद की प्रवृत्तियाँ एवं अवदान। उत्तर छायावाद की विविध वैचारिक प्रवृत्तियाँ, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, समकालीन कविता, प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ और साहित्यिक विशेषताएँ।

UNIT-III **आदिकालीन कवि : विद्यापति** : (विद्यापति पदावली-संपा. : आचार्य रामलोचन शरण) (क) राधा की वंदना, (ख) श्रीकृष्ण प्रेम-35, (ग) राधा प्रेम-36; **गोरखनाथ** : (गोरखबानी : संपादक पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल गोरखबानी सबदी (संख्या 2, 4, 7, 8, 16), पद (राग रामश्री 10,11); **अमीर खुसरो** : (अमीर खुसरो-व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डॉ परमानन्द पांचाल) कव्वाली-(घ) (1), गीत-इ (4), (13), दोहे-च (पृष्ठ 86), 05 दोहे-गोरी सोवे, खुसरो रैन, देख मैं, चकवा चकवी, सेज सूनी।

UNIT-IV **भक्तिकालीन निर्गुण कवि : कबीर** : (कबीरदास-संपा. श्यामसुंदर दास) (क) गुरुदेव कौ अंग-1, 06, 11, 17, 20 (ख) बिरह कौ अंग-4, 10, 12, 20, 33; **मलिक मोहम्मद जायसी** : (मलिक मोहम्मद जायसी-संपा.-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) मानसरोदक खंड (01 से 06 पद तक)।

UNIT-V **भक्तिकालीन सगुण कवि : सूरदास** : (भ्रमरगीत सार-संपा. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) (पद संख्या-7, 21, 23, 24, 26); **गोस्वामी तुलसीदास** : (श्रीरामचरित मानस-गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर) अयोध्या काण्ड-दोहा संख्या 28 से 41।

UNIT-VI **रीतिकालीन कवि : केशवदास** : (कविप्रिया (प्रिया प्रकाश)-लाला भगवानदीन), तृतीय प्रभाव-1, 2, 4, 5; **बिहारीलाल** : (बिहारी रत्नाकार-जगन्नाथ दास रत्नाकर) प्रारम्भ के 10 दोहे; **घनानंद** : (घनानंद ग्रन्थावली-संपा.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) सुजानहित-1, 4, 7।

Unit-VII **आधुनिककालीन कवि : भारतेंदु हरिश्चंद्र** : मातृभाषा प्रेम पर दोहे, रोकहूँ जो तो अमंगल होय, ब्रज के लता पता मोहि कीजे; **जयशंकरप्रसाद** : कामायनी के श्रद्धा सर्ग के प्रथम दस पद, आँसू के प्रथम पाँच पद; **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** : वर दे वीणा वादिनि वर दे, तुलसीदास (प्रारंभ के दस पद), वह तोड़ती पत्थर; **सुमित्रानंदन पन्त** : मौन निमंत्रण, प्रथम रश्मि, यह धरती कितनी देती है; **महादेवी वर्मा** : बीन हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, फिर विकल हैं प्राण मेरे, यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

Unit-VIII **(अ) छायावादोत्तर कवि और हिन्दी साहित्य में शोध : अज्ञेय** : नदी के द्वीप, नया कवि : आत्म स्वीकार, नंदा देवी-6 (नंदा बीस तीस-एक मरू दीप); **नागार्जुन** : अकाल और उसके बाद, बादल को घिरते देखा है; **धर्मवीर भारती** : बोआई का गीत, कविता की मौत (दूसरा सप्तक, सम्पादक अज्ञेय); **शमशेर** : 1. बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात ही, 2. काल तुझसे होड़ है मेरी (कविता); **दुष्यंत** : 1. हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए, 2. तो तय था चिरागा हर एक घर के लिए।

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, बागपत रोड, टी०पी० नगर,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी काव्य का इतिहास : इतिहास लेखन की परम्परा एवं विकास ...3
UNIT-II : आधुनिककालीन काव्य का इतिहास ...25
UNIT-III : आदिकालीन कवि ...41
UNIT-IV : भक्तिकालीन निर्गुण कवि ...55
UNIT-V : भक्तिकालीन सगुण कवि ...76
UNIT-VI : रीतिकालीन कवि ...91
UNIT-VII : आधुनिककालीन कवि ...114
UNIT-VIII : छायावादोत्तर कवि और हिन्दी साहित्य में शोध ...138
© मॉडल पेपर ...160

UNIT-I

भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत आदिकालीन एवं मध्यकालीन हिन्दी काव्य का इतिहास : इतिहास लेखन की परम्परा एवं विकास

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. आदर्श अथवा सर्वमान्य काल-विभाजन को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर हिन्दी साहित्य के आदर्श अथवा सर्वमान्य काल-विभाजन के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है जिसमें हमें समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अब तक दिए गए काल-विभाजन के आधार पर कहा जा सकता है कि **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० नगेन्द्र द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन को आदर्श या सर्वमान्य माना जाता है जो अधिक स्पष्ट, वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित है।** इन तीनों के समन्वयात्मक रूप को ही हमें स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित चार कालक्रमों में विभक्त किया जा सकता है—

1. **आदिकाल** (संवत् 1050 से संवत् 1375 तक),
2. **भक्तिकाल** (संवत् 1375 से संवत् 1700 तक),
3. **रीतिकाल अथवा शृंगारकाल** (संवत् 1700 से संवत् 1900 तक),
4. **आधुनिककाल** (संवत् 1900 से अद्यतन)।

प्र.2. डॉ० नगेन्द्र ने हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में किन-किन तत्त्वों पर प्रकाश डाला है?

उत्तर डॉ० नगेन्द्र ने हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में पाँच प्रमुख तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। ये प्रमुख तत्त्व हैं—सर्जन शक्ति (साहित्यकार की प्रतिभा एवं उसका व्यक्तित्व), परम्परा (साहित्य तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ), वातावरण (युगीन परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ एवं चेतना), द्वन्द्व एवं सन्तुलन।

प्र.3. 'हिन्दी साहित्य' के इतिहासों में अब तक लिखित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का नाम बताइए।

उत्तर प्रसिद्ध साहित्यकार **डॉ० नगेन्द्र** के सम्पादन में 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' तथा 'हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती' इतिहास सम्बन्धी दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सन् 1973 ई० में प्रकाशित हुए। इन ग्रन्थों में हिन्दी साहित्य के इतिहास को अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया।

प्र.4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का परिचय दीजिए।

उत्तर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' सन् 1929 ई० में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व यह ग्रन्थ 'हिन्दी शब्दसागर' में 'हिन्दी का विकास' नाम से प्रकाशित हुआ था। यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-इतिहास-लेखन-परम्परा में अद्वितीय सिद्ध हुआ।

प्र.5. शुक्ल जी द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास की प्रमुख विशेषताएँ बताइए। **(2021)**

उत्तर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के रूप में आचार्य की कृति की सबसे बड़ी विशेषता कवियों और साहित्यकारों के जीवन-चरित्र सम्बन्धी इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन को प्रमुखता देना है। एक क्षेत्र में इन्होंने चुने हुए कवियों को ही लिया। इनके द्वारा लगभग एक हजार कवियों को अपने इतिहास में स्थान दिया गया। वस्तुत: इतिहास के इतने संक्षिप्त कलेवर में भी इतने कवियों का जैसा प्रामाणिक, सारगर्भित एवं सोदाहरण विवेचन वे प्रस्तुत

कर पाए हैं, उससे इतिहासकार शुक्ल की महानता प्रमाणित होती है। इसी प्रकार विभिन्न काव्यधाराओं और युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्धारण में भी इन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। रीतिग्रन्थकारों के आचार्यत्व एवं कवित्व का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए उनकी उपलब्धियों तथा सीमाओं के सम्बन्ध में जो निर्णय आचार्य शुक्ल ने दिए, बहुत-कुछ अंशों में वे आज भी मान्य हैं।

प्र.6. हिन्दी-साहित्य के आदिकाल को अन्य किन नामों से जाना जाता है?

उत्तर आदिकाल का नामकरण विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से किया है। इस काल को **डॉ० ग्रियर्सन** ने 'चारणकाल', **मिश्रबन्धुओं** ने 'प्रारम्भिककाल', **राहुल सांकृत्यायन** ने 'सिद्ध-सामन्त युग', **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने 'आदिकाल', (वीरगाथाकाल), **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र** व **डॉ० रसाल** ने आदिकाल; **डॉ० रामकुमार वर्मा** ने 'सन्धिकाल' तथा 'चारणकाल', **विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ने 'वीरकाल' एवं **डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त** ने 'प्रारम्भिककाल' (आविर्भावकाल) के नाम से विभूषित किया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों द्वारा इसे 'उत्तर-अपभ्रंशकाल', 'जैनकाल', 'जैन युग' आदि नाम भी दिए गए हैं।

प्र.7. सिद्ध किन्हें कहा जाता है? परिभाषित कीजिए।

उत्तर बौद्ध धर्म के वज्रयान सम्प्रदाय में मन्त्र-तन्त्र एवं तान्त्रिक क्रियाओं, द्वारा प्राप्त सिद्धि के चमत्कार का सहारा लेने वाले सिद्ध कहलाए। **डॉ० शिवकुमार शर्मा** के अनुसार, "मन्त्रों द्वारा सिद्धि चाहने वाले सिद्ध कहलाए। ....यद्यपि वज्रयानी परम्परा को लेकर इन सिद्ध कवियों ने कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, किन्तु इन सिद्धों में विशेष बात यह थी कि वे ईश्वरवाद की ओर अग्रसर हो रहे थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। इसके लिए स्त्री का सेवन संसाररूपी विष से बचने के लिए था। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध-साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास के कारण सिद्धों का सिद्धान्त पक्ष सहज मार्ग कहलाया।"

प्र.8. 'नाथ' शब्द से आप क्या समझते हैं? नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक का नाम भी लिखिए।

उत्तर 'नाथ' शब्द का अर्थ 'रक्षक' या 'शरणदाता' है। **पुरुषोत्तमप्रसाद आसोपा** ने 'आदिकाल की भूमिका' में 'नाथ' शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया है—"मूलतः 'नाथ' शब्द मुक्तिदान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और नाथ-सम्प्रदाय वह सम्प्रदाय है, जो अज्ञान के अन्धकार को दूरकर संसार के बन्धनों से मनुष्य को मुक्त कराने में समर्थ होता है।" नाथों की शिष्य-परम्परा में शिव को आदिनाथ कहा जाता है, परन्तु भौतिक रूप में गोरखनाथ नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

प्र.9. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कौन हैं? इनके विषय में संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर सन्त कबीरदास को ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। ये स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। इन्होंने समाज में प्रचलित अनेक आडम्बरों, रूढ़ियों, पाखण्डों एवं कुप्रवृत्तियों का विरोध कर समाज को सुधारने का प्रयास किया। **डॉ० नगेन्द्र** ने उनके विषय में कहा है—"सन्त-मत के समस्त कवियों में कवि कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक थे। उन्होंने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके कहीं पर कुछ नहीं लिखा है .....कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करने वाले और मर्यादा के रक्षक कवि थे। उन्होंने स्वतः कहा है—'तुम जिन जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार'। पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना ही उनका प्रधान लक्ष्य है।"

प्र.10. रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि का परिचय देते हुए उनके विषय में संक्षेप में समझाइए।

उत्तर रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं। इनके द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' रामकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। इस महाकाव्य में अवधी भाषा में मुख्यतः दोहा-चौपाई शैली में राम के चरित्र का आदर्श रूप वर्णित किया गया है। यह महाकाव्य सात काण्डों में विभाजित है। इसी ग्रन्थ ने राम को जनसामान्य में मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया। 'विनयपत्रिका', 'रामाज्ञा प्रश्नावली', 'कवित्त रामायण', 'रामललानहछू', 'जानकी-मंगल' तथा 'बरवै रामायण' रामकाव्य के रूप में उनकी अन्य प्रतिष्ठित रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'दोहावली', 'गीतावली', 'वैराग्य सन्दीपनी' तथा 'कृष्ण गीतावली' उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

प्र.11. अष्टछाप का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर श्री वल्लभाचार्य ने भगवान की कृपा को पुष्टि की संज्ञा देकर पुष्टिमार्ग की स्थापना की। उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ द्वारा उसे और अधिक व्यापक बना दिया गया। गोस्वामी विट्ठलनाथ तथा वल्लभाचार्य से प्रभावित होकर जिन आठ कृष्णभक्त कवियों ने पुष्टिमार्ग के विकास में अपना सहयोग प्रदान किया, उन्हें अष्टछाप का कवि कहा गया।

अष्टछाप से आशय उन आठ कवियों से है, जिन पर गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने आशीर्वाद की छाप लगाई थी एवं जिन्हें श्रीनाथजी की सेवा में पद-गायन हेतु नियुक्त किया था। इन आठ कवियों में चार कवि श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हैं—कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास। ये शेष चार कवि—गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास—गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे।

प्र.12. कृष्णभक्त कवियों में सूरदास के स्थान का निर्धारण कीजिए।

उत्तर सूरदास को पुष्टिमार्गीय अष्टछाप कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि माना गया है। ये कृष्ण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी भक्ति में सख्यभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। सूरदास ने कृष्ण की बाललीलाओं, यशोदा का वात्सल्य भाव गोपियों की विरह-व्याकुलता, उनका वाग्वैदग्ध्य, और निर्गुण ब्रह्म पर सगुण की उपासना की श्रेष्ठता का जैसा प्रतिपादन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनका एक-एक प्रसंग, एक-एक पद कृष्णभक्ति का महासागर है। अयोध्यासिंह उपाध्याय **हरिऔधजी** ने उनके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उचित ही कहा है—"वास्तव में वे सागर थे और सागर के समान ही उत्तल-तरंग-माला-संकुलित। उनमें गम्भीरता भी वैसी ही पाई जाती है। जैसा प्रवाह, माधुर्य, सौन्दर्य, उनकी कृति में पाया जाता है, अन्यत्र दुर्लभ है।"

प्र.13. सूफी काव्य की मसनवी शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर सूफी काव्य धारा में कथारम्भ के पहले ईश्वरस्तुति, मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा और गुरु परम्परा का परिचय दिया जाता है। इस धारा के सभी काव्य भारतीय चरितकाव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवी शैली में लिखे गए हैं। इसमें गाथा सर्गों या अध्यायों में विभक्त नहीं होती, बराबर चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप में रहता है। **रामस्वरूप चतुर्वेदी** के शब्दों में—"इस शैली के पीछे देसी लोक गाथाओं का संस्कार भी देखा जा सकता है, जिनमें शास्त्रीय दृष्टि से कोई विभाजन नहीं, कथा लगातार चलती रहती है।" लेकिन हिन्दी काव्यधारा से प्रभावित सूफी कवियों ने महाकाव्य (प्रबन्ध) पद्धति को अपनाया। पद्मावत में ग्रीष्म-वर्णन, नगर-वर्णन, समुद्र-वर्णन, विरह-वर्णन, युद्ध-वर्णन आदि भारतीय महाकाव्य शैली में लिखे गए हैं। मसनवी काव्य में जिस प्रकार पाँच-सात छन्दों के बाद विराम आता है, यहाँ कुछ चौपाइयों के बाद दोहा रखा गया है। ये बातें पद्मावत, इन्द्रावत, मृगावती इत्यादि सबमें पाई जाती हैं।

प्र.14. सर्वांग निरूपक कवि किन्हें कहा जाता है? उदाहरण सहित बताइए।

उत्तर वे कवि जिन्होंने काव्य लक्षण, काव्य हेतु, काव्य प्रयोजन, काव्य भेद, शब्द शक्ति, काव्य की आत्मा, रस, ध्वनि, काव्य गुण, काव्य दोष, काव्य रीति, अलंकार एवं छन्द का निरूपण अपने ग्रन्थ में किया, सर्वांग निरूपक कवि कहे जा सकते हैं। सर्वांग निरूपक के कुछ कवि तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

1. चिन्तामणि— कविकुल कल्पतरु
2. देव— शब्द रसायन
3. सोमनाथ— रस पीयूष निधि
4. अमीरदास— सभा खण्डन
5. रस रहस्य— कुलपति
6. भिखारीदास— काव्य निर्णय
7. जनराज— कविता रस विनोद

प्र.15. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध काव्यों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर रीतिबद्ध कवियों द्वारा रीतिकाल की परिपाटी के अनुकूल लक्षण-ग्रन्थों की रचना की गई एवं आचार्यत्व की अभिलाषा से काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने पर बल दिया गया, जबकि रीतिमुक्त कवियों द्वारा रीतिकाल में लक्षण-ग्रन्थ लिखने की परम्परा को स्वीकार नहीं किया गया। इन कवियों ने रूढ़ियों एवं बन्धनों से मुक्त रहकर स्वतन्त्र रूप से काव्य-सृजन किया। रीतिसिद्ध कवियों द्वारा लक्षण-ग्रन्थों की रचना तो नहीं की गई, परन्तु प्रसंगानुकूल उन्होंने यत्र-तत्र अपने काव्य के विविध अंगों के लक्षण तथा उदाहरण अवश्य प्रस्तुत किए।

प्र.16. किसी एक रीतिमुक्त कवि और उसके द्वारा रचित प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

उत्तर रीतिकाल के प्रमुख रीतिमुक्त कवि घनानन्द माने जाते हैं। हृदय की पावनता तथा सात्त्विकता इनके काव्य का प्राण है। प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति करते हुए घनानन्द ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द' नामक ग्रन्थ में 41 रचनाएँ बताई हैं। इनमें से कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं—**'सुजानसागर', 'सुजान रागमाला', 'इश्कलता', 'प्रेम सरोवर', 'नेहसागर', 'वियोगबेलि'** तथा **'कृपाकन्द'** आदि।

प्र.17. भक्तिकालीन कृष्ण-भक्तिधारा की विशेषताएँ बताइए। **(2021)**

उत्तर भक्तिकालीन कृष्ण-भक्तिधारा की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. राधा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन
2. रीति तत्त्व का समावेशन
3. प्रेममयी भक्ति
4. जीवन के प्रति आवश्यक राग रंग
5. प्रकृति चित्रण
6. अलंकार और छन्द योजना
7. रस योजना
8. भाषा शैली

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हिन्दी साहित्य के लेखन के क्रम को स्पष्ट रूप से समझाइए।

उत्तर

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन का क्रम

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के सम्बन्ध में सबसे पहला प्रयास फ्रेंच विद्वान् **गार्सा-द-तॉसी** द्वारा किया गया था। इन्होंने फ्रेंच भाषा में **'इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी'** नामक ग्रन्थ लिखा। इन्होंने इस ग्रन्थ में हिन्दी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्णक्रमानुसार दिया। इसका प्रथम भाग सन् 1839 ई० में तथा द्वितीय सन् 1847 ई० में प्रकाशित हुआ था।

गार्सा-द-तॉसी की इस परम्परा को अग्रसर करने का श्रेय **श्री शिवसिंह सेंगर** को है, जिन्होंने सन् 1883 ई० में **'शिवसिंह सरोज'** में लगभग एक सहस्र भाषा-कवियों का जीवन-चरित उनकी कविताओं के उदाहरणसहित प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इसमें कवियों के जन्मकाल, रचनाकाल आदि बहुत विश्वसनीय नहीं हैं। इतिहास के रूप में इस ग्रन्थ का महत्त्व अधिक नहीं, लेकिन फिर भी इसमें उस समय तक उपलब्ध हिन्दी-कविता सम्बन्धी ज्ञान को संकलित कर दिया गया है, जिसमें परवर्ती इतिहासकार लाभान्वित हो सकते हैं—इसी दृष्टि से इसका महत्त्व है।

'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की पत्रिका के विशेषांक के रूप में सन् 1888 ई० में **जॉर्ज ग्रियर्सन** द्वारा रचित **'द मॉडर्न वर्नेक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान'** का प्रकाशन किया गया, जिसे नाम से 'इतिहास' न होते हुए भी सच्चे अर्थों में हिन्दी-साहित्य का पहला इतिहास कहा जा सकता है। इसमें लेखक ने कवियों और लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ग्रियर्सन ने हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में जिस स्पष्ट एवं निर्भ्रान्त दृष्टि का परिचय दिया, वह निश्चय ही उस युग की भूमिका में महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस कृति ने आगामी लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य किया।

ग्रियर्सन के उपरान्त **मिश्रबन्धुओं** ने इस दिशा में प्रयास किया। इन्होंने अपने ग्रन्थ को 'इतिहास' की संज्ञा न देते हुए इस बात का भरसक प्रयास किया कि यह एक आदर्श इतिहास सिद्ध हो। इनके द्वारा रचित **'मिश्रबन्धु विनोद'** चार भागों में विभाजित है। इसके प्रथम तीन भाग सन् 1913 ई० में प्रकाशित हुए एवं चतुर्थ भाग सन् 1934 ई० में प्रकाशित हुआ। इसे परिपूर्ण एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिए इन्होंने एक ओर तो इसमें लगभग पाँच हजार कवियों को स्थान दिया है एवं दूसरी ओर इसे आठ से भी अधिक कालखण्डों में विभक्त किया है। इतिहास के रूप में इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कवियों के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विविध अंगों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है एवं अनेक अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है। कवियों का सापेक्षिक महत्त्व निर्धारित करने हेतु उनकी श्रेणियाँ भी बनाई गई हैं, किन्तु काव्य-समीक्षा में परम्परागत सिद्धान्तों तक पद्धति का ही अनुकरण मिलता है। अत: आधुनिक समीक्षा-दृष्टि से यह ग्रन्थ भले ही बहुत सन्तोषजनक न कहा जा सके, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतिहास-लेखन की पूर्व-परम्परा को आगे बढ़ाने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है, जैसा कि **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने स्वयं स्वीकार किया है, "कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्राय: 'मिश्रबन्धु विनोद' से ही लिए हैं।" परवर्ती इतिहासकारों के लिए भी यह आधार-ग्रन्थ रहा है।

प्र.2. नाथ सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर

नाथ सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषताएँ

1. नाथपन्थ सम्प्रदाय का हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी प्रभाव पड़ा। बहुत-से मुसलमान जो हिन्दुओं की ही तरह निम्न श्रेणी के थे, नाथपन्थ में आए और गेरुए वस्त्र पहनकर 'नाथ योगी' बन गए।
2. नाथपन्थी से सम्बन्धित योगी कान की लौ में बड़े-बड़े छेद करके स्फटिक के भारी कुण्डल पहनते हैं। इसलिए ये 'कनफटा' योगी भी कहलाते हैं।

3. सदाचार, वाक् संयम एवं कठोर ब्रह्मचर्य के साथ-साथ आचरण की शुद्धता पर इन्होंने बल दिया।
4. नाथपन्थ ने हिन्दू समाज में प्रचलित रूढ़ियों पर भी प्रहार किया।
5. गोरखपन्थ की पुस्तकें गद्य और पद्य दोनों में उपलब्ध होती हैं। ये रचनाएँ 1343 ई० के आस-पास की हैं।
6. नाथ पन्थ का सर्वाधिक प्रभाव सन्त काव्य पर परवर्ती हिन्दी साहित्य में दिखाई पड़ता है। उनके भाव, भाषा और छन्द तीनों ही नाथ पन्थ से प्रभावित हैं।
7. नाथपन्थ का प्रचार पंजाब और राजपूताने की ओर लिए राजस्थानी था।
8. नाथपन्थियों की बानियों में सधुक्कड़ी भाषा, मूलत: खड़ी बोली और राजस्थानी के मेल से बनी है।
9. सिद्ध सम्प्रदाय में जो अश्लीलता पाई जाती है, उसका नाथ पन्थ में अभाव है।
10. नाथपन्थियों ने जाति-पाँति का खण्डन किया तथा बाह्याडम्बर का खुलकर विरोध किया।

प्र.3. प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख कवियों एवं उनके काव्य के विषय में संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर

प्रेमाश्रयी काव्यधारा के प्रमुख कवि और उनका काव्य

मुल्ला दाऊद, रंजन, कुतुबन शेख, जायसी, जलालुद्दीन अहमद, उसमान, मंझन, शेखनबी, जटमल, प्रेमी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद आदि का सूफी साहित्य अथवा प्रेमाख्यानक परम्परा के विकास में महत्त्वपर्ण योगदान रहा है। इन सबमें कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान का नाम अत्यधिक विख्यात रहा है। अत: हम यहाँ इन चारों का ही संक्षिप्त अध्ययन करेंगे—

1. **कुतुबन शेख**—कुतुबन शेख द्वारा रचित **'मृगावती'** सूफी साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है। इस प्रेम-कथा द्वारा हिन्दी में सूफीमत का प्रवेश हुआ। इस ग्रन्थ में चन्द्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेम-कथा का अद्‌भुत वर्णन है। यह अवधी भाषा एवं दोहा-चौपाई शैली में लिखी गई है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार—"इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्-प्रेम का स्वरूप दिखलाया है।"
2. **मंझन**—कुतुबन शेख के उपरान्त मंझन द्वारा रचित **'मधुमालती'** नामक प्रेम-कथा उपलब्ध होती है। इस ग्रन्थ में कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम-कथा का वर्णन किया गया है। यद्यपि यह कृति खण्डित रूप में प्राप्त हुई है, लेकिन फिर भी यह 'मृगावती' से श्रेष्ठ सिद्ध हुई। इसमें भी अवधी भाषा व दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है, लेकिन 'मृगावती' की अपेक्षा इसकी भाषा-शैली में अधिक सरलता, सरसता तथा प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसमें आध्यात्मिक प्रेम की सफल अभिव्यंजना की गई है।
3. **जायसी**—मलिक मुहम्मद जायसी का नाम सूफी काव्य-परम्परा में सर्वाधिक विख्यात रहा है। इनका जन्म संवत् 1549 के आस-पास जायसनगर में हुआ माना जाता है। इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ—**'पद्मावत', 'अखरावट'** और **'आखिरी कलाम'** उपलब्ध हैं। इनमें 'पद्मावत' सर्वप्रमुख है। यह ग्रन्थ ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण है, जबकि 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' का केवल साम्प्रदायिक महत्त्व है। 'पद्मावत' में कवि ने राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की लौकिक प्रेम-कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। इसकी भी अवधी भाषा है तथा दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। इसकी गणना महाकाव्यों के साथ की जाती है। इसमें सभी रसों का सुन्दर परिपाक दृष्टिगत होता है, परन्तु प्रधानता शृंगार की रही है। जायसी ने अपने इस ग्रन्थ के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम दोनों संस्कृतियों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिए इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्त्व रहा है।
4. **उसमान**—उसमान ने जायसी की पद्धति पर **'चित्रावली'** का प्रणयन किया। इन्होंने जायसी का पूर्णरूपेण अनुकरण किया। इसीलिए इनके काव्य के प्रारम्भ में ईश स्तुति, पैगम्बर के खलीफा, बादशाह जहाँगीर तथा शाह निजामुद्दीन और हाजी बाबा की प्रशंसा परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त इसमें नगर, सरोवर एवं दान-महिमा का वर्णन भी जायसी के अनुरूप किया गया है। इसमें सुजान और चित्रावली के चित्र-दर्शनजन्य प्रेम का निरूपण मिलता है। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई शैली तथा भाषा की दृष्टि से सफल रहा है।

प्र.4. सूफी-सन्त कवियों की दार्शनिक विचारधारा के बारे में संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

उत्तर

सूफी कवियों की दार्शनिक विचारधारा

सूफी-सन्त कवियों की दार्शनिक विचारधारा अथवा मूलभूत सिद्धान्त संक्षेप में निम्न प्रकार हैं—

1. सूफी-सन्त केवल ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं। ये विश्व की समस्त वस्तुओं में उसी ईश्वर की झलक देखते हैं।
2. सूफी-सन्तों ने ईश्वर को **'हक'** कहा। इनके अनुसार प्रकृति, वनस्पति, पशु-पक्षी, जीव आदि में उसी परमात्मा की छाया है। सूफी सन्त उसी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मूल-सौन्दर्य के दर्शन करना चाहते हैं और उसी में लीन हो जाने पर स्वयं को 'हक' समझने लगते हैं।
3. सूफी-सन्तों ने सृष्टि में मानव को सर्वोपरि माना। इनकी मान्यता है कि परमात्मा ने अपने गूढ़ रहस्य को अभिव्यक्त करने के लिए ही सृष्टि का निर्माण किया।
4. इन्होंने ईश्वर और आत्मा में कोई अन्तर स्वीकार नहीं किया।
5. परमात्मा के स्थान पर पहुँचने के लिए इन्होंने चार अवस्थाएँ—**शरीयत, तरीकत, मारिफत** और **हकीकत** मानीं।
6. प्रेम को सर्वोच्च स्थान देते हुए सूफी कवियों ने बताया कि प्रेम से रिक्त होकर ही आत्मा इन चारों अवस्थाओं को पारकर ईश्वर का साक्षात्कार करती है।
7. इन्होंने बताया कि गुरु के अभाव में ब्रह्म का साक्षात्कार असम्भव है।

प्र.5. सन्त कवियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा के विषय में संक्षेप में बताइए।

उत्तर

सन्त कवियों का भाषा प्रयोग

सन्त कवियों का लक्ष्य समाज सुधार एवं विश्व धर्म का सन्देश देना था। इसलिए इन्होंने साहित्य की रचना लोकभाषा में की है। ये घुमक्कड़ साधु थे और देश के विभिन्न भागों में भ्रमण करते थे; इसलिए इनकी भाषा को सधुक्कड़ी नाम दिया गया है, इसलिए सन्त कवियों की भाषा में खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। कई आलोचकों ने तो उनकी भाषा को खिचड़ी घुमक्कड़ी या पंचमेल का नाम दिया है। उनकी काव्य भाषा मूलत: जन भाषा है तथा शास्त्रीय बन्धनों से मुक्त है। यह भाषा जीवन के अनुभवों से पुष्ट है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो कबीर को **'भाषा का डिक्टेटर'** कहा है, क्योंकि भाषा पर कबीर का असाधारण अधिकार था। यद्यपि सुन्दरदास की भाषा अन्य सन्त कवियों से अपेक्षाकृत प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। सन्त कवियों की सरल एवं सहज अभिव्यक्ति के उदाहरण देखिए—

कबिरा खड़ा बजार में, लिए मुराड़ा हाथ। जो घर जाले आपना, सो चले हमारे साथ॥
आँखड़ियाँ झाँईं पड़ीं, पंथ निहारि-निहारि। जीभड़िया छाला पड़या, नाम पुकारि-पुकारि॥

सन्त कवियों ने अपने साहित्य में अधिकतर लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग किया है। अलंकारों की दृष्टि से रूपक, उपमा, अनुप्रास, यमक, श्लेष का समावेश हुआ है तो छन्दों की दृष्टि से दोहा, सोरठा, सवैया का भी अधिकतर प्रयोग इन कवियों द्वारा किया गया है। इनकी रचनाओं में संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

अत: स्पष्ट होता है कि भक्तिकाल में सन्त काव्य धारा का विशेष स्थान है। इन कवियों ने निर्गुण-निराकार ईश्वर का गुणगान करते हुए प्रकृति के कण-कण में ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया है। इतना ही नहीं, इन कवियों में ईश्वर प्राप्ति के सन्दर्भ में प्रचलित पाखण्डों तथा आडम्बरों का भी भरपूर विरोध किया। इन सन्त कवियों का काव्य उच्चकोटि का धार्मिक, नैतिक साहित्य भी है और समाज सुधार का वाहक भी। भारतीय समाज में समरसता लाने में इन सन्त कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मानव मात्र की समानता, स्वतन्त्रता तथा विश्वधर्म की स्थापना का प्रयास इन्हीं सन्तों द्वारा किया गया। अत: सामाजिक व साहित्यिक दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्र.6. रीतिबद्ध काव्य का परिचय देते हुए इसके प्रमुख रीतिबद्ध कवियों एवं उनकी रचनाओं का नाम लिखिए।

उत्तर

रीतिबद्ध काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ

रीतिबद्ध काव्य में वे काव्य-ग्रन्थ आते हैं, जिनमें काव्य-तत्त्वों के लक्षण देकर उदाहरण रूप में काव्य-रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। इस परम्परा में कतिपय ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने काव्यशास्त्र की शिक्षा देने हेतु रीति-ग्रन्थों का प्रणयन किया था। 'रसविलास', 'छन्दविचार', 'पिंगल', 'शृंगार मंजरी', 'कविकुल कल्पतरु' आदि आचार्य चिन्तामणि के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। चिन्तामणि की परम्परा के अन्य महत्त्वपूर्ण कवि आचार्य कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, ग्वाल कवि आदि हैं। जिन कवियों के कृतित्व के कारण

रीतिकाव्य प्रतिष्ठित हुआ, उनमें देव का नाम विशेष रूप से उल्लिखित है। नवरसों का सफल निरूपण करने वाले आचार्यों में पद्माकर तथा सैयद गुलाम नबी 'रसलीन' आदि प्रख्यात हैं। शृंगार रस विषयक सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सर्वप्रथम आता है। रीतिबद्ध काव्य-परम्परा के कवियों में कुछ कवि ऐसे भी हैं, जिन्होंने रीति-ग्रन्थों की रचना न करके काव्य-सिद्धान्तों अथवा लक्षणों के अनुसार काव्य-रचना की है। ऐसे कवियों में सेनापति, वृन्द, नेवाज, बिहारी, कृष्ण कवि आदि की गणना की जाती है। सेनापति का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कवित्त रत्नाकर' है। बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी प्रसिद्धि का मूल आधार इनकी श्रेष्ठ कृति 'सतसई' है। दोहा जैसे छोटे-से छन्द में एक साथ ही अनेक भावों का समावेश कर सकने की सफलता के कारण इनके काव्य में 'गागर में सागर' भरने की उक्ति चरितार्थ होती है।

प्र.7. रीतिसिद्ध कवियों की कुछ प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

रीतिसिद्ध कवियों की प्रमुख विशेषताएँ

'सतसई' काव्य-परम्परा का विकास, रीतिसिद्ध कवियों की सबसे बड़ी विशेषता है इसमें ये मात्र कवि रूप में सामने आते हैं, आचार्य रूप में नहीं। शायद वे आचार्य बनना भी नहीं चाहते थे। ये कवि मनमौजी और स्वच्छन्द प्रवृत्ति के थे। यह बात दूसरी है कि इन्होंने चमत्कार का आश्रय लेकर चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ भी कही हैं परन्तु काव्यशास्त्रीय लक्षणों में नहीं बँध सके। इन्होंने भाव और कला का विलक्षण समन्वय करके दिखा दिया, जिसके कारण इनका कलाचातुर्य और गहन भाव-बोध अपने उत्कृष्ट रूप में दिखाई देता है।

रीतिसिद्ध कवियों ने शृंगार के समग्र अंग-प्रत्यंगों को तो वर्ण्य-विषय बनाया ही, साथ ही बहुलता और विषय-वैविध्यता को भी अपने काव्य का अभिन्न अंग बनाया। इनके काव्य में नीति, दर्शन, पुराण, इतिहास, वीर, भक्ति, ज्योतिष, शृंगार, हास्य आदि की प्रभावी व्यंजना हुई है। इनका सूक्ष्मतर हाव, भाव, अनुभाव, निरूपण इनके काव्य को और भी सरस बना देता है।

शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ 'सतसई' पद्धति की हैं, जो दोहा-सोरठा शैली में ही रची गई हैं। इनकी शैली सफल मुक्तक शैली है, जिसमें कल्पना की समाहार-शक्ति और भाषा की समास-शक्ति का विलक्षण सम्मिश्रण है। दोहा जैसे छोटे छन्द में पूरा-का-पूरा प्रसंग इन्होंने समेट दिया है। उक्ति-वैचित्र्य, अलंकारों की अनूठी छटा, लक्षणा, व्यंजना, चमत्कारिक प्रयोग, नादात्मकता, सटीक उत्कृष्ट ब्रजभाषा का प्रयोग, वक्रोक्तिप्रधानता, श्लेष की अद्भुत छटा—इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

प्र.8. रीतिमुक्त कवियों एवं उनके काव्य के विषय में संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

रीतिमुक्त प्रमुख कवि और उनका काव्य

जिन कवियों ने रीति के बन्धन को स्वीकार नहीं किया, उन्हें रीतिमुक्त कवि कहा जाता है। इन्होंने रीति की बँधी-बँधाई पद्धति पर काव्यांग निरूपक, लक्षण ग्रन्थ लिखने में कोई रुचि नहीं दिखाई, अपितु हृदय की स्वतन्त्र वृत्तियों को काव्य का विषय बनाया। स्वच्छन्द प्रेम को अपनी काव्यवस्तु बनाने वाले प्रमुख कवि—घनानन्द, बोधा, आलम, ठाकुर हैं।

रीतिमुक्त कवियों को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. रीतिमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवि
2. रीतिमुक्त प्रबन्धकार
3. रीतिमुक्त सूक्तिकार
4. रीतिमुक्त पद्यकार

इनमें से प्रथम वर्ग में वे कवि आते हैं जिन्होंने शृंगारी काव्य की रचना की। घनानन्द इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं। द्वितीय वर्ग में प्रबन्धकाव्य लिखने वाले कवि हैं। इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं—सूदन (सुजान चरित्र), लालकवि (छत्र प्रकाश), सबलसिंह चौहान (महाभारत)। तीसरे वर्ग में नीति सम्बन्धी सूक्तियों की रचना करने वाले वृन्द, घाघ, बैताल गिरधरदास, जैसे कवि आते हैं। इनकी कविता के एक-दो उदाहरण निम्नलिखित हैं—

1. भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नांहि।
   जानि परत हैं काग पिक, ऋतु बसन्त के मांहि।।
2. मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल अट्टू।
   मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू।।
   बाम्हन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
   पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै।।
   अरु बेनियाव राजा मरै तबै नींद भरि सोइए।
   बैताल कहें विक्रम सुनौ एते मरै न रोइए।।

शुक्ल जी के अनुसार रीतिमुक्त धारा के कवि जो ब्रह्मज्ञान एवं वैराग्य की बातों को पद्य में कहते हैं, उन्हें रीतिमुक्त पद्यकार कहना उचित है। इसका कारण है कि इनकी कविता में रसात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की वह क्षमता नहीं है, जो सरस कवियों में होती है।
वस्तुत: रीतिमुक्त कवियों में स्वच्छन्दतावादी कवियों का काव्य ही विशेष उल्लेखनीय है। इन्हें रीतिमुक्त शृंगारी कवि भी कहा जाता है। इन शृंगारी कवियों में घनानन्द प्रमुख हैं इनके कुछ अन्य प्रचलित अन्य नाम हैं—आनन्दघन या घन आनन्द। **घनानन्द** के लिखे ग्रन्थों के नाम हैं—सुजान सागर, विरहलीला, रसकेल्विल्ली, लोकसार और कृपाकाण्ड। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित कवित्त और सवैये भी मिलते हैं जो विभिन्न संग्रहों में संकलित हैं। घनानन्द द्वारा फुटकर रूप में लगभग 400 सवैये, कवित्त लिखे गए हैं। घनानन्दकृत कृष्णभक्ति सम्बन्धी एक ग्रन्थ छतरपुर के राजपुस्तकालय में सुरक्षित है।
रीतिमुक्त धारा के दूसरे प्रसिद्ध कवि **'आलम'** हैं। ये औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रित कवि थे। इन्होंने मुक्तक शैली में 'आलमकेलि' नामक ग्रन्थ की रचना की।
'बोधा' ने 'विरहवारीश' और 'इश्कनामा' नामक दो रचनाएँ लिखीं। जिनमें पहली तो 'माधवानल'-कामकन्दला' की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर आधारित प्रबन्ध काव्य है और दूसरी रचना प्रेम पर लिखे गए मुक्तक छन्दों का संग्रह है।
शुक्ल जी ने 'ठाकुर' नाम के तीन कवियों का उल्लेख किया है। इनमें से तीसरे ठाकुर बुन्देलखण्डी ठाकुर थे जो कि कायस्थ थे। यही रीतिमुक्त धारा के कवि हैं। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—'ठाकुर ठसक' एवं 'ठाकुर शतक'। इनके काव्य में बुन्देलखण्ड में प्रचलित कहावतों तथा मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

प्र.9. हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के महत्त्व को संक्षिप्त रूप से समझाइए।

उत्तर

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का महत्त्व

रीतिकालीन काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है, लेकिन फिर भी इसमें विविधता विद्यमान है। इसमें भक्ति-नीति के साथ-साथ वीर रस का काव्य भी उपलब्ध होता है। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होने पर भी काव्य में चमत्कार एवं भावात्मक आकर्षण बना रहता है। नारी-विषयक दृष्टिकोण स्वस्थ न होने पर भी इसमें मनोवैज्ञानिकता की प्रधानता है। भाषा, छन्द, अलंकार एवं काव्य-रूप की दृष्टि से भी इस काल के कवि सफल रहे हैं। भाव एवं कला दोनों दृष्टिकोणों से उनका काव्य सबल रहा है। इस सम्बन्ध में **डॉ० भगीरथ मिश्र** के अनुसार—"रीतिकाव्य की परम्परा ने शुद्ध काव्य के लिए एक निश्चित मार्ग खोल दिया।" इसी प्रकार **डॉ० शिवकुमार शर्मा** के शब्दों में—"यह रीतिकाव्य शास्त्र की दृष्टि से चाहे इतना महत्त्वपूर्ण न हो, परन्तु कवित्व की दृष्टि से बड़ा मनोरम है। इस काव्य का साहित्यिक और ऐतिहासिक मूल्य अक्षुण्ण है।" **डॉ० नगेन्द्र** की मान्यता भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है—"उसमें न आत्मा की अतुल जिज्ञासा है, न प्रकृति की दृढ़ कठोरता। वह तो जैसे जीवन का एक विराम स्थल है, जहाँ सभी प्रकार की दौड़-धूप से शान्त होकर मानव नारी की मधुर अंचल-छाया में बैठकर अपने दु:खों और पराभवों को भूल जाता है। .....घोर निराशा के इस युग में कवि किसी-न-किसी रूप में संचार करते रहे। मैं समझता हूँ, कम-से-कम इसके लिए तत्कालीन समाज को उनका कृतज्ञ अवश्य होना चाहिए।" इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के वैशिष्ट्य को किंचित् भी नकारा नहीं जा सकता। वास्तव में रीतिकाल हिन्दी साहित्य के बहुविध विकास-विस्तार का युग है।

प्र.10. 'भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग था।' इस कथन की समीक्षा कीजिए। (2021)

उत्तर

भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग

हिन्दी साहित्य में भक्ति-काव्य भाव और कला दोनों दृष्टियों से महान् एवं समृद्ध है। यह आदर्शमय साहित्य भारतीय संस्कृति का द्योतक है। इस साहित्य में चिरन्तन मूल्यों एवं शाश्वत समस्याओं का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि यह साहित्य विशेष स्थान रखता है। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** के अनुसार कह सकते हैं कि "काव्यत्व भी उत्कृष्टता की कसौटी है और इस दृष्टि से भक्तिकाल का पूर्ण विवेचन सिद्ध कर ही देता है कि भाव और कला, अनुभूति और अभिव्यक्ति, अन्तरंग और बहिरंग समस्त रूपों में यह काव्य अपूर्व है।"
भक्तिकाल की कतिपय विशेषताएँ ऐसी हैं, जिनके कारण उसे 'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग' माना गया है। अनुभूति की गहनता, भावप्रवणता, आध्यात्मिकता, भारतीय संस्कृति एवं उच्चतम धर्म की व्याख्या, समन्वय की विराट् चेष्टा, दार्शनिकता, भाषा और छन्द की विविधता आदि विशेषताएँ भक्ति-काव्य के अतिरिक्त अन्य साहित्यों में परिलक्षित नहीं होतीं। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** का यह कथन सत्य है कि "समूचे भारतीय इतिहास में यह अपने ढंग का एकमात्र साहित्य है। इसी का नाम 'भक्ति साहित्य' है। यह एक नई दुनिया है। यह साहित्य एक महती साधना और प्रेमोल्लास का देश है, जहाँ जीवन के सभी विषाद, नैराश्य और कुण्ठाएँ धुल जाती हैं।.....नया साहित्य (भक्ति साहित्य) मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर

चला। यह लक्ष्य है—भगवद्भक्ति, आदर्श है—शुद्ध सात्त्विक जीवन तथा साधन है—भगवान् के निर्मल चरित्र तथा सरस लीलाओं का गान। इस साहित्य को प्रेरणा देने वाला तत्त्व भक्ति है, इसलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सब प्रकार से भिन्न है।''

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय ज्ञान परम्परा एवं हिन्दी साहित्य के विकास पर लेख लिखिए।

उत्तर

भारतीय ज्ञान परम्परा और हिन्दी साहित्य का विकास

भारतीय ज्ञान परम्परा का सबसे बड़ा आधार वेद है। भारतीय ज्ञान परम्परा जड़ नहीं बल्कि सतत् प्रवहमान है, इसमें विवेक के उपयोग की स्वतन्त्रता है। भारतीय संस्कृति आदि भौतिक ज्ञान परम्परा को महत्त्व नहीं देती, आदि वैदिक आध्यात्मिक प्रवृत्ति को महत्त्व देती है। भारत की पहचान ज्ञान परम्परा एवं ज्ञान-संस्कृति के रूप में रही है। अनेक प्राचीन सभ्यताएँ ज्ञान के क्षेत्र में स्वयं को भारत का ऋणी मानती हैं। केवल प्राचीन समय में ही नहीं अपितु सदा ही, अद्यावधिपर्यन्त भारत ने ज्ञान का निर्यात दूसरी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को किया है।

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। यदि हिन्दी साहित्य पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यधिक विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषाविद **डॉ० हरदेव बाहरी** के अनुसार, हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही उचित होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है; जैसे—कभी 'वैदिक संस्कृत', कभी 'संस्कृत', कभी 'प्राकृत', कभी 'अपभ्रंश' और अब 'हिन्दी'। आलोचक कह सकते हैं कि 'वैदिक संस्कृत' और 'हिन्दी' में तो जमीन-आसमान का अन्तर है। पर ध्यातव्य है कि चीनी, जर्मन, हिब्रू, रूसी, और तमिल आदि जिन भाषाओं को 'बहुत पुरानी' बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन-आसमान का अन्तर है; किन्तु लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को 'प्राचीन', 'मध्यकालीन', 'आधुनिक' आदि कहा गया, जबकि 'हिन्दी' के सन्दर्भ में प्रत्येक युग में भाषा का नया नामकरण होता रहा।

हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आस-पास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है। अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किए गए हैं, उन पर विचार करना भी परमावश्यक है। सामान्यतया प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य-रचना प्रारम्भ हो गई थी।

साहित्य की दृष्टि से जो रचनाएँ पद्यबद्ध मिलती हैं, वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, नीति, धर्म, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, शृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या 'प्राकृताभास हिन्दी' में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने 'देशी भाषा' कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ।

हिन्दी साहित्य का आरम्भ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। यह वह सत्य है जब सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात् देश में अनेक छोटे-छोटे शासन केन्द्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मुसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती और धार्मिक क्षेत्र अस्त-व्यस्त थे। उन दिनों उत्तर भारत के अनेक भागों में बौद्ध पन्थ का प्रचार था। बौद्ध पन्थ का विकास कई रूपों में हुआ जिनमें से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तान्त्रिक थे एवं सिद्ध कहलाते थे। इन्होंने जनता के मध्य उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिन्दी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कालीन लोकभाषा पुरानी हिन्दी में लिखा गया। इसके बाद नाथपन्थी साधुओं का समय आता है। इन्होंने बौद्ध, शंकर, तन्त्र, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पन्थ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिए धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोक प्रचलित पुरानी हिन्दी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इसके उपरान्त जैन साहित्य प्राप्त होता है। स्वयम्भू का 'पउमचरिउ' अथवा अपभ्रंश की रामायण, आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और नाथपन्थियों की रचनाएँ मुक्तक और केवल धार्मिक हैं, पर

जैन साहित्य की अनेक रचनाएँ जीवन की सामान्य अनुभूतियों से भी सम्बद्ध हैं। इनमें से कई प्रबन्ध काव्य हैं। इसी काल में अब्दुर्रहमान का काव्य 'सन्देशरासक' भी लिखा गया जिसमें परावर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है।

इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक पुरानी हिन्दी का रूप निर्मित तथा विकसित होता रहा और देशभाषा हिन्दी का रूप अधिक स्पष्ट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्राय: युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहने वाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को 'रासो' कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेम-प्रसंगों का भी उल्लेख किया गया है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्राय: प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत **'बीसलदेवरासो'** और प्रबन्धकाव्य **'पृथ्वीराजरासो'**, **'खुमानरासो'** आदि इन रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परम्परा सन्दिग्ध नहीं है। इनमें शौर्य एवं प्रेम की ओजस्वी तथा सरस अभिव्यक्ति हुई है।

इसी दौरान **मैथिल कोकिल विद्यापति** हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौन्दर्य और प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। **अमीर खुसरो** भी इसी समय में हुए हैं। इनके द्वारा ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन रचे गए। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है। हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ लोकभाषा में कविता के माध्यम से हुआ और गद्य का विकास बाद में हुआ।

प्र.2. हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन की आवश्यकता के विषय में विवरण देते हुए किन्हीं दो प्रकार के विभाजन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन की आवश्यकता

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब हमारी पहली समस्या होती है कि लगभग 1000 वर्षों के इतिहास को कैसे पढ़ा जाये? इसी समस्या को ध्यान में रखकर इतिहास को कालखण्डों में विभाजित करते हैं। लेकिन इससे हमारे प्रश्न का समाधान नहीं होता। इसी से जुड़ा एक दूसरा प्रश्न उठ खड़ा होता है। साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन और नामकरण की अनिवार्यता क्या है? इस अनिवार्यता को इतिहास में किन तथ्यों से पुष्ट किया जाता है? इतिहास का कोई कालखण्ड या युग इतिहास की तथ्यपूर्ण वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करता है अथवा वह इतिहासकार के मन की संकल्पना है। क्या युग की पहचान इतिहासकार की व्याख्या है? इन सारे प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ना आवश्यक है। इन प्रश्नों से जूझे बिना इतिहास का सही विभाजन नहीं हो सकता और न ही काल-विभाजन के आधारों को समझा जा सकता है।

यदि काल-विभाजन इतिहास की केवल पद्धतिगत अनिवार्यता है तो उसका औचित्य इतिहास बोध की वास्तविकता से ही निर्धारित हो सकता है। इतिहास बोध में एक प्रकार की आलोचनात्मक चेतना होती है। एक ऐसी चेतना जिसका उपयोग हम जीवन और संस्कृति के परीक्षण के लिए करते हैं। जिसकी कसौटी पर साहित्य और समाज के रिश्ते की पहचान की जाती है। साहित्य का इतिहासकार इन रिश्तों में आए परिवर्तन को जितनी तीव्रता से अनुभव करेगा, उसका काल-विभाजन उतना ही प्रामाणिक होगा। क्या यही कारण नहीं है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की ओर बार-बार लौटने की आवश्यकता पड़ती है। उनके इतिहास की ओर हम इसलिए लौटते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी प्रखर आलोचनात्मक दृष्टि से इतिहास बोध को अर्जित किया और साहित्य के इतिहास को कार्य-कारण के सम्बन्धों की शृंखला में प्राप्त किया **आचार्य शुक्ल** ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में काल-विभाजन पर लिखा है—"शिक्षित जनता की जिन-जिन प्रवृत्तियों के अनुसार हमारे साहित्य के स्वरूप में जो-जो परिवर्तन होते आए हैं, जिन-जिन प्रभावों की प्रेरणा से काव्यधारा की भिन्न-भिन्न शाखाएँ फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक् निरूपण तथा उनकी दृष्टि से किए हुए सुसंगत काल-विभाग के बिना साहित्य इतिहास का सच्चा अध्ययन कठिन दिखाई पड़ता था।" सारांश यह है कि बिना ठोस इतिहास दृष्टि के सुसंगत काल-विभाजन नहीं किया जा सकता और बिना काल-विभाजन के इतिहास का अध्ययन कठिन है।

किसी भी विषयवस्तु का अध्ययन सुबोध और वैज्ञानिक बनाने के लिए उसे वर्गों या खण्डों में विभाजित करना संगत रहता है। इतिहास में हम देश के स्थान पर कालखण्डों का अध्ययन करते हैं। साहित्य के इतिहास को इसीलिए विद्वानों ने विभिन्न कालखण्डों में विभाजित करके अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के क्षेत्र में सबसे पहले प्रयास करने वालों में **गार्सा द तासी** एवं **शिवसिंह सेंगर** थे, लेकिन इन दोनों ने ही काल विभाजन की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं

दिया। काल-विभाजन की ओर सबसे पहले **जॉर्ज ग्रियर्सन** ने ध्यान दिया। उन्होंने अपने इतिहास ग्रन्थ में ग्यारह कालखण्डों का विभाजन किया है, किन्तु **डॉ० किशोरीलाल गुप्त** के शब्दों में, "यह पूर्णतया समय की दृष्टि से विभक्त नहीं है, बल्कि कवियों के विशेष वर्गों की दृष्टि से बाँटा गया है जो संगत नहीं दिखाई देता।"

मिश्रबन्धुओं द्वारा किया गया काल-विभाजन

'मिश्रबन्धु विनोद' नामक इतिहास में मिश्रबन्धुओं द्वारा किया गया काल-विभाजन पर्याप्त विकसित और प्रौढ़ प्रतीत होता है। उनका वर्गीकरण सम्यक् और स्पष्ट है। उनका विभाजन निम्न प्रकार है—

1. **आरम्भिक काल**—(क) पूर्वारम्भिक काल (700-1343 वि०) (ख) उत्तरारम्भिक काल (1344-1444 वि०)
2. **माध्यमिक काल**—(क) पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 वि०) (ख) प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561-1680 वि०)
3. **अलंकृत काल**—(क) पूर्वालंकृत काल (1681-1790 वि०)(ख) उत्तरालंकृत काल (1791-1889 वि०)
4. **परिवर्तन-काल—(1890-1925 वि०)**
5. **वर्तमान काल—(1923 से अद्यावधि०)**

मिश्रबन्धुओं द्वारा किया गया काल-विभाजन स्पष्टता लिए हुए तो है लेकिन इसमें युक्ति संगतता कम है। परिवर्तन काल में जिस 'परिवर्तन' की ओर इंगित किया गया है, वह तो एक काल के बाद दूसरे कालखण्ड में अवश्यमेव सम्भावित होता है। इसी प्रकार अन्य कालखण्ड के नामकरण आरम्भिक, माध्यमिक, वर्तमान आदि विकास क्रम के द्योतक हैं तो अलंकार काल प्रवृत्ति-सूचक है।

आचार्य शुक्ल द्वारा किया गया काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में जो काल-विभाजन किया, वह बाद के विद्वानों और विद्यार्थियों के बीच सर्वाधिक प्रचलित और मान्य हुआ। शुक्ल जी के अनुसार हिन्दी साहित्य का इतिहास निम्नांकित चार कालों में बाँटा गया है—

1. आदिकाल (वीरगाथाकाल) सं० 1000 से 1375 तक
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सं 1376 से 1700 तक
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सं० 1701 से 1900 तक
4. आधुनिक काल (गद्यकाल) सं० 1901 से

शुक्ल जी के इस काल-विभाजन में 'इतिहास' को समयानुसार आदि, मध्य, आधुनिक में विभाजित करने के साथ वीर, भक्ति, रीति, गद्य आदि उस काल की प्रमुख प्रवृत्ति को भी आधार बनाया गया है। उनके काल-विभाजन में सुस्पष्टता, संक्षिप्तता के साथ सुबोधता और सुसंगति भी है—यही कारण है, बाद के अनेक विद्वानों में उनके द्वारा किए गए काल-विभाजन में त्रुटियों और दोष-दर्शन के बावजूद भी इसी का निर्बाध प्रचलन होता गया।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने 'आलोचनात्मक इतिहास' में शुक्ल जी द्वारा प्रतिपादित चार कालखण्डों के बजाय एक और कालखण्ड 'संधि काल' नाम से जोड़कर संख्या पाँच कर दी और शुकल जी के 'वीरगाथा' नाम के स्थान पर 'चरण काल' नाम दे दिया। शुक्ल जी ने चारणों की मुख्य भूमिका का उल्लेख स्वयं अपने 'इतिहास' में भी कर दिया था। इसी प्रकार **आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र** ने 'रीतिकाल नामकरण के अनौचित्य को प्रतिपादित कर उसे 'शृंगार काल' नाम देना अधिक उपयुक्त समझा था। शुक्ल जी को स्वयं इस नाम पर कोई आपत्ति नहीं थी। सभी शृंगारी कवि 'काव्य रीति' से भी प्रभावित थे, अत: उन्हें 'रीति' के अन्तर्गत लाना अधिक संगतिपूर्ण लगता है। साथ ही भूषण जैसे महत्त्वपूर्ण कवि जो शृंगारी नहीं थे, किन्तु रीति से प्रभावित थे, उन्हें भी सरलता से 'रीति' के अन्तर्गत लाया जा सकता है। स्पष्टत: शुक्ल जी द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन सर्वाधिक मान्य और संगत समझा जाता है।

प्र.3. सिद्ध साहित्य का प्रादुर्भाव कब हुआ? इसके प्रमुख कवियों एवं उनकी भाषा पर प्रकाश डालिए। सिद्ध साहित्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी लिखिए।

उत्तर

सिद्ध साहित्य

भारतीय धर्म साधना में सिद्धों का प्रादुर्भाव 8वीं शती के आसपास माना जाता है। सिद्ध सम्प्रदाय वस्तुत: बौद्ध धर्म की विकृति है। ईसा की प्रथम शताब्दी तक आते-आते बौद्ध धर्म हीनयान और महायान नामक दो शाखाओं में विभक्त हो गया। हीनयान में

सिद्धान्त पक्ष की प्रधानता थी जबकि महायान में व्यावहारिकता पर बल दिया जाता था। हीनयान केवल विरक्तों और संन्यासियों को आश्रय देता था जबकि महायान के द्वार सबके लिए खुले थे। ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गृहस्थ संन्यासी सबको निर्वाण तक पहुँचाने का दावा महायान शाखा का था।

बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार भारत से बाहर भी पर्याप्त हुआ। तिब्बत और नेपाल में यह धर्म शैव मत से प्रभावित हुआ और जन सामान्य को आकर्षित करने के लिए इसमें तन्त्र, मन्त्र एवं अभिचार का समावेश हो गया। परिणामत: इसकी मूल दिशा बदल गई और त्याग, तपस्या एवं संयम का स्थान भोग-विलास ने ले लिया। साधक 'मन्त्र-जप' की ओर उन्मुख हो गए और इस प्रकार महायान ही मन्त्रयान बन गया। आगे चलकर इस मन्त्रयान के दो भाग हुए—वज्रयान और सहजयान इनमें से वज्रयानी ही सिद्ध कहलाए। ये मन्त्र जप से सिद्धि की आकांक्षा करते थे।

सिद्ध कवि एवं उनकी भाषा

सिद्धों की संख्या चौरासी बताई जाती है। इनका समय 797 ई० से 1257 ई० तक माना गया है। ये सिद्ध अपने नाम के पीछे 'पा' जोड़ते थे; जैसे—लुईपा, सरहपा, शबरपा आदि। सिद्ध प्राय: अशिक्षित एवं हीन जातियों में से थे। इन्होंने स्त्री सेवन को अपनी साधना का अंग बना लिया था और इस प्रकार धर्म तथा अध्यात्म की आड़ में नारी भोग किया।

सिद्ध साहित्य अर्द्धमागधी अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है। यह भाषा वस्तुत: हिन्दी और अपभ्रंश का मिला-जुला रूप है। सिद्धों की रचनाएँ मूलत: उपदेशपरक, नीतिपरक एवं रहस्यपरक हैं। इनकी कविता में शान्त और शृंगार रस की प्रधानता है।

कुछ प्रमुख सिद्ध कवि—प्रमुख सिद्ध कवि और उनकी कुछ रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **सरहपा**—राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि माना है। इन्हें राहुल वज्र या सरोज वज्र भी कहते हैं। इनका रचनाकाल 769 ई० माना जाता है। इनकी रचित कृतियों की संख्या 32 कही जाती है जिनमें 'दोहा कोष' अधिक प्रसिद्ध है। इन्होंने गुरुसेवा, पाखण्ड-विरोध आदि का मुख्यत: वर्णन किया है। इनकी रचना का एक नमूना प्रस्तुत है—

   ''जहि मन पवन में संचरइ, णवि ससि नाह पवेस।
   तहि बट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उबेस॥''

2. **शबरपा**—रचनाकाल 780 ई०, 'चर्यापद' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये माया मोह का विरोध करके सहज जीवन पर बल देते हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

   ''हेरि ये मेरि तड़ला बाड़ी खसमे समतुला। सेरे कपासु फुटिला॥''

3. **लुईपा**—इनकी कविता में रहस्य भावना की प्रधानता है। इनकी कविता पहेली जैसी है; यथा—

   ''काआ तरवर पंच विडाल, चंचल चीए पइटो काल।
   दिट करिअ महासुअ परिमाण, लूइ भणइ गुरु पुच्छिड़ जाण॥''

   अर्थात् काया रूपी वृक्ष पर पाँच विकार (आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह) बैठे हैं।

4. **कण्हपा**—इनके लिखे ग्रन्थों की संख्या 74 बताई गई है। इनकी रचनाओं का प्रमुख विषय रहस्यवाद एवं दर्शन है। शास्त्र एवं रूढ़ियों का ये खण्डन करते हैं और सिद्धि हेतु नारी प्रेम को आवश्यक मानते हैं। कण्हपा की बानी का उदाहरण निम्न प्रकार है—

   ''लोण बिलज्जइ पाणिएहि तिमि धरिणी लइ चित्त।
   मरस जड़ तक्खमे जई पुणु ते सम नित्त॥''

सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. सिद्ध साहित्य में शास्त्रीय चिन्तन पक्ष गौण है, साधना पर बल दिया गया है।
2. गुरु के महत्त्व को स्वीकारा गया है।
3. रूढ़ियों, बाह्याडम्बरों का विरोध है तथा शास्त्र के प्रति अवहेलना भाव है।

TOUCH 'n' PASS

4. सिद्ध साहित्य में रहस्यवादी भावना के साथ-साथ योग साधना पर विशेष बल है। ब्रह्माण्ड में जो शिव और शक्ति है; पिण्ड (शरीर) में वही सहस्रार और कुण्डलिनी है।
5. वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है।
6. ब्राह्मणवाद के प्रति अवज्ञा एवं वेदों के प्रति असम्मान व्यक्त किया है।
7. चमत्कार प्रदर्शन की भावना विद्यमान है।
8. प्रतीकों का प्रयोग करते हुए चमत्कार सृष्टि की गई है।
9. सिद्धों की साधना को गुह्य साधना कहा गया, जिसके बहाने उसमें कामशास्त्र का समावेश हुआ।
10. मुक्ति या निर्वाण की तुलना में ये सिद्धियों को प्राप्त करने पर अधिक बल देते हैं।
11. जाति-पाँति के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है तथा वर्णभेद की निन्दा की गई है।

प्र.4. जैन साहित्य के प्रसिद्ध कवियों का नामोल्लेख करते हुए इस साहित्य के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

उत्तर

जैन साहित्य के प्रमुख कवि

जैन साहित्य की भाषा आदिकालीन हिन्दी का रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती है जिस पर अपभ्रंश का प्रभाव है। शान्त रस प्रधान, जैन साहित्य में दोहा, कवित्त एवं रास छन्द का अधिक प्रयोग हुआ है। जैन कवियों में प्रमुख हैं—स्वयंभू, पुष्पदन्त, हरिभद्र सूरि, विनयचन्द्र सूरि, धनपाल, जोइन्दु, देवसेन, शालिभद्र सूर आदि।

1. **स्वयंभू**—ये 8वीं शती के जैन कवि हैं। इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—पउम चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ तथा स्वयंभू छन्द/पउम चरिउ इनके द्वारा रचित रामकाव्य है जो इनकी कीर्ति का अक्षय स्तम्भ है। स्वयंभू को इसी ग्रन्थ के कारण अपभ्रंश का वाल्मीकि कहा जाता है। पउम चरिउ अपूर्ण ग्रन्थ है, फिर भी इसमें राम का चरित्र विस्तार से दिया गया है।
2. **पुष्पदन्त**—ये 10 वीं शती के कवि थे जिन्होंने महापुराण, जसहर चरिउ तथा णयकुमार चरिउ नामक प्रबन्ध काव्य लिखे। इन्हें अपभ्रंश भाषा का व्यास कहा जाता है क्योंकि इन्होंने 63 महापुरुषों के जीवन चरितों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण भी इनके ग्रन्थों में मिलता है।
3. **धनपाल**—10वीं शती के कवि धनपाल द्वारा रचित 'भविसयत्तकहा' एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें एक वणिक की कथा को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।
4. **देवसेन**—प्रसिद्ध जैन आचार्य देवसेन ने 933 ई० में 'श्रावकाचार' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की है जिसे डॉ० नगेन्द्र हिन्दी का पहला काव्यग्रन्थ मानते हैं। श्रावकाचार में 250 दोहों में धर्म का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ में जैन धर्म के अनुकूल गार्हस्थ्य धर्म का विवेचन हुआ है। इसका एक दोहा यहाँ प्रस्तुत है—

   जो जिण सासण भाषियउ, सो मई कहियउ सारु।
   जो पालइ सद् भाउ करि, सो करि पावइ पारु॥

   अर्थात्—जिन (तीर्थंकर) ने जो अनुशासन या उपदेश कहे, उनका सार मैंने कहा है। सद्भावनापूर्वक जो उन (उपदेशों) का पालन करेंगे, वे (संसार को) पार कर पाएँगे।
5. **शालिभद्र सूरि**—इन्होंने 1184 ई० में 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' की रचना की। मुनि जिन विजय इस ग्रन्थ को जैन साहित्य की रास परम्परा का प्रथम ग्रन्थ मानते हैं। वीर, शृंगार एवं शान्त रसों की प्रधानता इस ग्रन्थ में है।
6. **आसगु**—इन्होंने 1200 ई० में 35 छन्दों के लघु खण्डकाव्य 'चन्दनवालारास' की रचना की। इसकी नायिका चन्दनवाला की करुण कथा अत्यन्त मार्मिक एवं भावपूर्ण है। करुण रस की प्रधानता इस खण्डकाव्य में है।
7. **जिनिधर्म सूरि**—इन्होंने 1209 ई० में 'स्थूलिभद्ररास' नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की। कोशा नामक वेश्या के पास भोगलिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। इनकी काव्य भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है।
8. **विजय सेन सूरि**—1231 ई० के आस-पास लिखित रेवन्तगिरिरास में तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवन्तगिरि तीर्थ का वर्णन किया गया है।
9. **सुमति गणि**—इन्होंने 1213 ई० में नेमिनाथ रास की रचना की, जो 58 छन्दों में रचित नेमिनाथ चरित्र है।

10. **सोमप्रभ सूरि**—ये एक जैन पण्डित थे जिन्होंने 1184 ई० में 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक गद्य-पद्यमय काव्य 'प्राकृत' भाषा में लिखा है। अपभ्रंश के कुछ प्राचीन गद्य भी इसमें मिलते हैं। इनमें से एक उद्धृत है—

''पिय हउं थक्किय सयलु दिण तुह विरहग्गि किलन्त।
थोइड़ जल जिमि मच्छलिय तल्लोबिल्ली करन्त॥''

अर्थात् हे प्रिय! तेरी विरहाग्नि में मैं जैसे ही सारे दिन तड़पती रही जैसे थोड़े जल में मछली तड़फड़ाती है।

11. **जैनाचार्य मेरुतुंग**—1304 ई० में इन्होंनें 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया जिसमें पुराने राजाओं के आख्यान संकलित हैं। इन आख्यानों के बीच में अपभ्रंश कुछ पुराने पद्य भी उद्धृत हैं जिनमें से कुछ राजा भोज के चाचा 'मुंज' कवि के हैं। मुंज मृणालवती से कहता है।

''मुंज भणइ मुणालवइ जुब्बण गयं न झूरि।
जइ सक्कर सय खण्ड थिय तो इस मीठा चूरि॥''

हे मृणालवती! यौवन बीत जाने से मत पश्चाताप कर। यदि शर्करा सौ खण्ड हो जावे तो भी वैसी ही मीठी रहती है।

अपभ्रंश में रचित कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं—अब्दुल रहमान का सन्देशरासक, रामसिंह द्वारा रचित पाहुड़ दोहा, जोइन्दु रचित योगसार एवं परमात्म प्रकाश, जिनदत्त सूरि द्वारा रचित 'उपदेश रसायन रास', धर्म सूरि द्वारा रचित जम्बू स्वामी रास तथा हेमचन्द्र द्वारा रचित शब्दानुशासन। इनमें हेमचन्द्र अपभ्रंश के अच्छे ज्ञाता एवं उच्चकोटि के कवि थे। इन्होंने अपने समय से पहले के सुन्दर उदाहरण अपने व्याकरण ग्रन्थ में उद्धृत किए हैं; यथा—

''पिय संगम कउ निछड़ी पिय हो परोक्खहो केंव।
मइँ विन्निबि बिन्नासिया निद्द न ऐंव न तेंव।''

प्रिय के संयोग में नींद कहाँ और प्रिय के परोक्ष (वियोग) में नींद भला क्यों कर आवे? (हे सखी) मैं तो दोनों प्रकार से विनष्ट हुई-न इस प्रकार नींद, न उस प्रकार।''

जैन साहित्य का महत्त्व

उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आदिकालीन जैन साहित्य ने भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के अनुसार—''वस्तुत: छन्द, काव्यगत रूप, वक्तव्य वस्तु, कवि रूढ़ियों और परम्पराओं की दृष्टि से यह साहित्य अपभ्रंश साहित्य का बढ़ावा है।'' जैन साहित्य का प्रभाव भारत के पश्चिमी प्रान्तों विशेषकर गुजरात में अधिक रहा है। जैन साहित्य में उपदेशात्मकता की प्रधानता है। भले ही आचार्य शुक्ल ने जैन साहित्य को धार्मिक साहित्य मानते हुए उतना महत्त्व न दिया हो तथापि यह कहना उचित है कि जैन साहित्य केवल धार्मिक सिद्धान्तों का कथन मात्र नहीं है। उसमें उच्चकोटि की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान हैं जिन्होंने परवर्ती हिन्दी साहित्य को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

प्र.5. रासो साहित्य को उसके विभिन्न रूपों में भिन्नित कीजिए तथा उनका सविस्तार वर्णन कीजिए।

उत्तर

रासो साहित्य के रूप

रासो साहित्य या काव्य को निम्नलिखित दो रूपों में भिन्नित किया जा सकता है—

1. कथात्मक संरचना या प्रबन्ध काव्य
2. वीर गीत

इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है—

1. रासो साहित्य में कथात्मक संरचना

रासो काव्य का ढाँचा मुख्य रूप से प्रबन्धात्मक है। इस दौर में मुक्तक रचनाएँ भी हुईं, परन्तु वे मुख्यधारा का प्रतिनिधित्व नहीं करती। कथानक के धारावाहिक विकास के कारण काव्य में प्रबन्धत्व का विकास विशेष रूप से हुआ है। कथानक का कभी-कभी कई युगों तक विकास होता रहता था। यही कारण है कि आदिकाल की प्रबन्ध कृतियों का किसी एक कवि की रचना होने पर भी सन्देह अभिव्यक्त किया जाता है 'पृथ्वीराज रासो' के विषय में यह प्रचलित है कि कवि चन्द्र अपने पुत्र जल्हण के हाथों में काव्य-कृति को पूरा करने का भार सौंपकर गजनी चला गया था।

''पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज।''

इस प्रकार आदिकाल में रचे गए प्रबन्ध काव्य का ढाँचा लगातार बदलता रहा है। उसमें नए-नए प्रसंगों की उद्भावना होती रही है। कई कवियों द्वारा कई प्रसंगों की उद्भावना एक-साथ प्रबन्ध योजना में ही सम्भव हो सकती है। प्रबन्ध काव्य रचने का दूसरा सबसे बड़ा कारण था—चारणों द्वारा किया गया अतिरंजनापूर्ण वर्णन। किसी भी काव्य-कृति में कथानक को अतिरंजनापूर्ण बनाने के लिए उसमें प्रसंगों की विविधता आवश्यक हो जाती है। प्रसंग की विविधता के क्रम में कथानक में फैलाव आता जाता है, जिसे मुक्तक में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। रासो काव्य के प्रबन्धत्व में लोक-तत्व और कथानक रूढ़ियों का समावेश भी मिलता है।

2. रासो साहित्य में वीर गीत

रासो साहित्य में वीर गीत मौखिक और लिखित, दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। मौखिक रूप में 'परमाल रासो' तथा लिखित रूप में 'बीसलदेव रासो' जैसी रचनाएँ मिलती हैं। 'बीसलदेव रासो' में शृंगारिक मनोभाव का वर्णन है। इस काव्य-कृति में भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा को सरस शैली में प्रस्तुत किया गया है। 'बीसलदेव रासो', 'सन्देशरासक' की तरह सन्देश परम्परा का काव्य है। 'बीसलदेव रासो' में नारी जीवन की करुणा गीतात्मक अनुभूति में प्रकट हुई है। यह काव्य-कृति अपने सरल एवं निष्कपट भाव सौन्दर्य के कारण महत्त्वपूर्ण है। इसमें नारी जीवन के सुख-दुख, माधुर्य एवं करुणा तथा अश्रु और ह्रास का भावपूर्ण चित्रण मिलता है।

काव्य के ये भावपूर्ण चित्र लयात्मक अनुभूति के रूप में प्रकट हुए हैं। भाव-व्यंजना तथा ध्वनि सौन्दर्य की दृष्टि से बीसलदेव रासो महत्त्वपूर्ण काव्य है।

''परणब चाल्यो बीसलराय। चउरास्या सहु लिया बोलाई।
जान तणी साजति कलउ। जीरह रँगावाली पहरज्यो टोप॥''

जगनिक का 'परमाल रासो' लोकगीत के रूप में देश के विभिन्न भागों में प्रसिद्ध है। यह लोक गीत 'आल्हा' के नाम से उत्तर भारत के विविध क्षेत्रों में गाया जाता है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है—'इस प्रकार साहित्यिक रूप न रहने पर भी जनता के कण्ठ में जगनिक के संगीत की वीरदर्पपूर्ण प्रतिध्वनि अनेक बल खाती हुई अब तक चली आ रही है। इस दीर्घ कालयात्रा में उसका बहुत कुछ कलेवर बदल गया है। वस्तुत: आल्हा लोकगाथा और लोकगीत है। लोकगीत स्वत:स्फूर्त काव्य का अंग होता है। लोकगीतों में उनके रचयिता अथवा रचनाकाल का प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं होता, उसका महत्त्व तो उसके सरल सौन्दर्य में होता है। उसमें एक व्यक्ति की अनुभूति की अपेक्षा लोक हृदय की अनुभूति ही प्रधान होती है। ये गीत व्यक्ति-विशेष की भावनाओं का प्रतिनिधित्व न होकर समुदाय की भावना के सच्चे प्रतीक होते हैं। काल और स्थान की सीमा को लाँघकर, लोक गायकों के अधरों पर जीवित रहने वाले ये लोकगीत वर्तमान में भी जीवित हैं। समय के व्यवधान से उसमें कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं, परन्तु मूल भाव सुरक्षित हैं। आल्हा की लोकगाथा में एक मुख्य कथा-सूत्र है—

महोबा के राजा परमार देव पर पृथ्वीराज का आक्रमण होता है। आल्हा और ऊदल वीरतापूर्वक लड़कर जन्मभूमि के लिए प्राण अर्पित कर देते हैं। इसी मुख्य कथासूत्र का विकास क्रमश: स्थल-स्थल पर अनेक पात्रों और धाराओं के योग से होता है। आल्हा की प्रवाहमयी शैली में स्वत:स्फूर्त गीत फूट पड़ते हैं—

''बारह बरस लै कूकर जीवै, अरु तेरह लौ जियै सियार।
बरस अठारह क्षत्री जीवै, आगे जीवन को धिक्कार॥''

प्र.6. नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित नाथ साहित्य के विषय में लिखिए। नाथ साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

नाथ साहित्य

नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं। सिद्ध सम्प्रदाय में जिस भोग की प्रधानता आ गई थी उसका तिरस्कार करते हुए नाथपन्थियों ने संयम और त्याग की वृत्ति को अपनाया। वज्रयान से जिस प्रकार सिद्ध सम्प्रदाय का विकास हुआ, उसी प्रकार सहजयान से नाथ सम्प्रदाय विकसित हुआ। इस प्रकार नाथ पन्थ का मूल भी बौद्धों की यही 'सहजयान' शाखा है। गोरखनाथ ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया। वज्रयानी सिद्धों का प्रभाव क्षेत्र पूर्वी भारत था जबकि नाथ पन्थियों ने अपने मत का प्रचार पश्चिमी भारत अर्थात् राजपूताना एवं पंजाब में किया। पंजाब में बालनाथ योगी का स्थान बहुत प्रसिद्ध रहा है जिसका उल्लेख जायसी के पद्मावत में 'बालनाथ का टीला' रूप में है।

गोरखनाथ के समय का ठीक पता नहीं है। राहुल सांकृत्यायन जी ने नाथों का समय विक्रम की 10वीं शती माना है। नाथ पन्थ की दार्शनिकता सिद्धान्त रूप से शैव मत के अन्तर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से हठयोग से सम्बन्धित है। ईश्वर को ये 'शून्य' रूप में मानते हैं जिसे वे 'अलख निरंजन' कहते हैं। नाथ पन्थियों ने वैराग्य से मुक्ति सम्भव मानी है। वैराग्य गुरु की कृपा से मिलता है, इसलिए गुरु दीक्षा एवं गुरु मन्त्र का नाथ सम्प्रदाय में विशेष महत्त्व है। वे इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल देते हैं और नारी से दूर रहने की शिक्षा देते हैं। मन की स्वाभाविक वृत्ति को बाह्य जगत से पलटकर अन्तर्जगत की ओर करना ही सबसे बड़ी साधना है। यह कार्य कुण्डलिनी योग द्वारा किया जा सकता है। नाथ साहित्य में कुण्डलिनी योग तथा उससे जुड़े पारिभाषिक शब्दों—ब्रह्मरन्ध्र, षटचक्र, अनहद नाद, इड़ा-पिंगला का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है।

नाथ साहित्य का महत्त्व

गोरखनाथ की रचनाओं में परवर्ती सन्त काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कबीर के काव्य में उपलब्ध गुरु की महत्ता, नारी निन्दा, सदाचरण, इन्द्रिय निग्रह और उलटबाँसियों के विचित्र रूपक नाथ साहित्य के प्रभाव का बोध कराते हैं। कबीर द्वारा प्रयुक्त हठयोग की शब्दावली भी नाथ पन्थ से ली गई है। **डॉ० रामकुमार वर्मा** ने नाथ सम्प्रदाय के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है—"गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई है, वहीं दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर आघात किया है।" नाथ सम्प्रदाय ने परवर्ती सन्त साहित्य के लिए धार्मिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी। सन्तों ने जिस आचरण शुद्धि की बात कही उसका मूलाधार नाथ सम्प्रदाय ही है। नाथ सम्प्रदाय की सबसे बड़ी कमजोरी पर प्रकाश डालते हुए **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** कहते हैं—"इस मार्ग की सबसे बड़ी कमजोरी इनका रूखापन और गृहस्थ धर्म के प्रति अनादर भाव है।" नाथ सम्प्रदाय के सिद्धान्त ग्रन्थों में ईश्वर उपासना के बाह्य विधानों के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हुए घर के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर बल दिया गया तथा वेदशास्त्र के अध्ययन को व्यर्थ ठहराते हुए, तीर्थाटन को निष्फल बताया गया और विद्वानों के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई। नाथ पन्थी जोगियों ने परम्परागत ब्रजभाषा या नागर अपभ्रंश के स्थान पर 'सधुक्कड़ी' भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा खड़ी बोली जैसा है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने नाथ पन्थियों के सन्त साहित्य पर प्रभाव की विवेचना करते हुए लिखा है—"कबीर आदि सन्तों को नाथ पन्थियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले उसी प्रकार साखी और बानी के लिए बहुत सामग्री और सधुक्कड़ी भाषा भी।" निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नाथ सम्प्रदाय ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है।

नाथ पन्थियों ने पाखण्ड एवं बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया और नीति, सदाचार, संयम, योग आदि पर बल देते हुए इन्हें मुक्ति के लिए आवश्यक माना। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के अनुसार, "इस मार्ग में कठोर ब्रह्मचार्य, वाक् संयम, शारीरिक शौच, मानसिक शुद्धता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आचरणों के प्रति अनादर, आन्तरिक शुद्धि और मद्य-मांस आदि के पूर्ण बहिष्कार पर जोर दिया गया है।" नाथ पन्थियों ने रूढ़ियों का खण्डन किया तथा समाज में व्याप्त धार्मिक विकृति एवं व्यभिचार का खण्डन करते हुए उसे भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल बनाया। नाथ परम्परा में मत्स्येन्द्र नाथ के गुरु जलन्धरनाथ माने जाते हैं। कहा जाता है कि जलन्धरनाथ पहले सिद्ध थे, बाद में वे सिद्ध सम्प्रदाय से अलग हो गए और पंजाब की ओर चले गए। भोट के ग्रन्थों में भी जलन्धरनाथ को 'आदिनाथ' (अर्थात् सबसे पहले वाले नाथ) कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार पंजाब का जलन्धर शहर उन्हीं के नाम से बसा है। उन्हें ही बालनाथ कहा गया है। नाथों में नौ नाथ प्रसिद्ध हैं जिनके नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस प्रकार बताए हैं—

1. मत्स्येन्द्रनाथ, 2. गाहनिनाथ, 3. ज्वालेन्द्रनाथ, 4. करणिपानाथ, 5. नागनाथ, 6. चर्पटनाथ, 7. रेवानाथ, 8. भर्तृनाथ और 9. गोपीचन्द्रनाथ।

इस सूची में गोरखनाथ का नाम न आने का कारण यह बताया गया है कि गोरख-पन्थियों के अनुसार गोरखनाथ ही भिन्न-भिन्न समय में अलग-अलग नामों से अवतरित हुए हैं। गोरखनाथ के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"गोरखनाथ अपने युग के सबसे महान धर्म नेता थे। उनकी संगठन शक्ति अपूर्व थी। उनका व्यक्तित्व समर्थ धर्मगुरु का व्यक्तित्व था। उनका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल, बुद्धि भावावेश से एकदम अनाविल और कुशाग्र तीव्र थी।" वस्तुत: वे एक ऐसे अक्खड़ नेता थे जिन्होंने रूढ़ि पर चोट करते समय न तो रंचमात्र दुर्बलता दिखाई और न किसी से समझौता किया। भावुकता से वे कोसों दूर थे। यही कारण था कि वे भक्ति और प्रेम से नितान्त अछूते रहे।

गोरखनाथ के ग्रन्थों की संख्या 40 मानी जाती है, किन्तु डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने उनकी केवल 14 रचनाएँ ही मानी हैं। उनकी रचनाओं का संकलन बड़थ्वालजी ने 'गोरखबानी' के नाम से प्रकाशित कराया है। उनकी रचना का एक नमूना उद्धृत है—

तुंबी में तिरलोक समाया त्रिवेणी रिब चन्दा।
बूझो रे ब्रह्म गियानी अनहद नाद अभंगा।

अर्थात्—माया की तूंबी में तीनों लोक—त्रिकुटी और सूर्य-चन्द्र समाए हुए हैं; इसलिए हे ब्रह्मज्ञानियों! अखण्ड अनहद नाद को समझो। इसी प्रकार वह धीर उसे मानते हैं जिसका चित्त विकारों के साधन उपस्थित होने पर भी विचलित नहीं होता—

नौ लख पातरि आगे नाचें, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन में लै जोगी खेलै, तब अन्तर बसै भण्डारा॥

प्र.7. भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा को किन भागों में विभाजित किया गया है? इनमें से रामभक्ति काव्यधारा के विभिन्न कवियों तथा उनके काव्य का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

सगुण भक्तिधारा के कवि और उनका काव्य

हिन्दी-साहित्य में सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत वैष्णवी भक्ति पर आधारित साहित्य की रचना की गई। वैष्णवी भक्ति के अन्तर्गत भगवान् विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों का वर्णन किया गया। 'रामायण' तथा 'महाभारत' काल में इस भक्ति की प्रतिष्ठा हुई, परन्तु बौद्ध धर्म ने उसके विकास को अवरुद्ध कर दिया। बौद्ध धर्म के बढ़ते प्रभाव एवं विकृतियों के फलस्वरूप **शंकराचार्य** के अद्वैतवाद का उदय हुआ। इस वाद के विरोध में **रामानुजाचार्य** द्वारा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की गई। इन्होंने विष्णु-भक्ति का सन्देश दिया। यह भक्ति-भावना दो रूपों में प्रस्फुटित हुई—राम और कृष्ण। **रामानन्द** ने विष्णु के अवतारी रूप **राम की भक्ति** का प्रचार किया और **वल्लाभाचार्य** ने **कृष्णभक्ति** का प्रचार। इस तरह सगुण भक्तिधारा दो काव्यधाराओं—**रामभक्ति काव्यधारा** तथा **कृष्णभक्ति काव्यधारा** में विभक्त हो गई।

रामभक्ति काव्यधारा के मुख्य कवि और उनका काव्य

रामभक्ति काव्यधारा के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को जाता है। इनके उपरान्त आगे अनेक भक्त-कवियों ने इस धारा का समुचित विकास किया। इस धारा के प्रमुख कवियों और उनके काव्य का परिचय निम्न प्रकार है—

1. **स्वामी रामानन्द**—स्वामी रामानन्द का जन्म सन् 1450 से 1525 ई० के आस-पास काशी में हुआ था। इन्होंने सर्वप्रथम समस्त देश में घूमकर रामभक्ति का प्रचार किया। रामानन्द ने श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के **आचार्य राघवानन्द** से दीक्षा ग्रहण की और कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि भक्त-कवियों को शिष्यत्व प्रदान करके प्रभुभक्ति को विविध रूपों में जन्म दिया। ये संस्कृत के महापण्डित थे। इनके दो ग्रन्थ—**'वैष्णव मताब्ज भास्कर'** तथा **'रामार्चन पद्धति'** उपलब्ध होते हैं। हिन्दी में भी इनके कुछ पद उपलब्ध होते हैं। इन पदों के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है, लेकिन परम्परागत ख्याति के कारण ही इन्हें उनके द्वारा रचित मानना उचित है। हनुमानजी की स्तुति का यह पद दृष्टव्य है—

आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
जाके बल भरते महि काँपै। रोग सोग जाकी सिया न ज्यांपै॥

2. **तुलसीदास**—इनके जन्म के समय को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं, परन्तु निश्चित है कि मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण इनके माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया और **बाबा नरहरिदास** ने इनका पालन-पोषण किया। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, अन्त:साक्ष्य के आधार पर सन् 1532 ई० में जन्मे रामभक्ति काव्यधारा के कवियों में तुलसीदास सर्वप्रमुख हैं। बाबा नरहरिदास ने ही इन्हें ज्ञान-भक्ति की शिक्षा-दीक्षा दी। **'श्रीरामचरितमानस', 'दोहावली', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका', 'रामाज्ञा-प्रश्न', 'कवित्त रामायण', 'रामललानहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल', 'बरवै रामायण', 'वैराग्य सन्दीपनी'** और **'कृष्ण-गीतावली'** आदि इनके ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। तुलसी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता समन्वय की भावना है। इन्होंने जीवन में व्याप्त नैराश्य को दूर करने के लिए शील-शक्ति एवं सौन्दर्य से युक्त श्रीराम के चरित्र का बखान किया। इन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं की वन्दना करने पर भी सियाराम को ही सर्वोपरि माना। इस प्रकार का एक उदाहरण निम्नवत् है—

सियाराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

3. **अग्रदास**—स्वामी रामानन्द की शिष्य-परम्परा में सन् 1556 ई० के लगभग विद्यमान रामभक्त कवि अग्रदास की गणना की जाती है। इन्होंने स्वामी **कृष्णदास पचहरी** से दीक्षा लेकर रामभक्ति का प्रचार किया। अग्रदास, '**अग्रअली**' नाम से स्वयं को जानकीजी की सखी मानकर काव्य-रचना करते थे। इनके मुख्य ग्रन्थ '**ध्यानमंजरी**', '**अष्टयाम**', '**रामभजन मंजरी**', '**उपासना बावनी**' और '**पदावली**' हैं।
4. **केशवदास**—रामभक्ति काव्य-परम्परा में सन् 1555 ई० में जन्मे केशवदास की भी गणना की जाती है। यद्यपि इन्हें रीतिकाल का प्रवर्तक कवि माना जाता है, तथापि '**रामचन्द्रिका**' महाकाव्य के प्रणयन से इन्हें रामभक्ति काव्य में भी विशिष्ट स्थान दिया जाता है। '**कविप्रिया**', '**रसिकप्रिया**', '**विज्ञान-गीता**', '**रतन-बावनी**', '**वीरसिंह देव चरित**' और '**जहाँगीर जसचन्द्रिका**' आदि इनके अन्य ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है। 'रामचन्द्रिका' में कवि ने रामकथा का विस्तार से वर्णन करते हुए विविध छन्दों एवं अलंकारों का प्रयोग किया है। फलस्वरूप भाव-पक्ष की अपेक्षा इनका कला-पक्ष अधिक समृद्ध दृष्टिगत होता है। अलंकारों की भरमार के कारण कुछ विद्वानों ने इसे '**अलंकार ग्रन्थ**' की भी संज्ञा प्रदान की। भाषा संस्कृतनिष्ठ, शुद्ध एवं परिष्कृत होने के कारण इनके काव्य में दुरूहता आ गई है, इसलिए इन्हें '**कठिन काव्य का प्रेत**' अथवा '**हृदयहीन कवि**' आदि कहा गया।
5. **नाभादास**—रामभक्ति काव्यधारा के कवियों में नाभादास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका प्रमुख ग्रन्थ '**भक्तमाल**' है। इसकी रचना के आधार पर इनका जन्मकाल सन् 1570 ई० के आस-पास ठहरता है। इसमें साम्प्रदायिकता के संकीर्ण भाव का त्यागकर समास शैली में अनेक भक्तों, महात्माओं की जीवनी एवं कीर्ति का वर्णन किया गया है। रामभक्ति से सम्बन्धित इनकी '**अष्टयाम**' नामक कृति भी उपलब्ध होती है। रामभक्ति में रसिक भावना का समावेश करने का श्रेय अग्रदास एवं उनके शिष्य नाभादास को ही जाता है। इनकी शैली भावपूर्ण, परिमार्जित एवं प्रभावशाली रही है।
6. **सेनापति**—इनका जन्मकाल सन् 1589 ई० के लगभग माना जाता है। यद्यपि सेनापति रीतिकाल के कवि हैं, परन्तु '**कवित्त रत्नाकर**' नामक ग्रन्थ की चतुर्थ तरंग से रामकथा और पंचम तरंग में 'रामभक्ति' का परिचय देने के कारण इन्हें रामभक्त कवियों में भी स्थान दिया जाता है।
7. **अन्य कवि**—उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवियों ने भी इस धारा के विकास में सहयोग दिया। **प्राणचन्द्र चौहानकृत** 'रामायण महानाटक', **हृदयरामकृत** 'हनुमन्नाटक', **माधवदासकृत** 'रामरासो' और 'अध्यात्म रामायण', **लालदासकृत** 'अवधविलास', **नरहरि बारहटकृत** 'पौरुषेय रामायण', **ईश्वरदासकृत** 'भरत-मिलाप' और **कपूरचन्द त्रिखा** द्वारा गुरुमुखी लिपि में लिखित 'रामायण' आदि भी उल्लेखनीय हैं। कुछ कृष्णभक्त कवियों ने भी रामकथा-विषयक पदों की रचना की। **विद्यापति** के काव्य में रामभक्ति-विषयक कुछ पद उपलब्ध होते हैं। **मीराबाई** के भी अनेक पद इस प्रकार के मिलते हैं, परन्तु उनके राम दशरथसुत न होकर कबीर आदि कवियोंवाले निर्गुण राम हैं। **सूरदासकृत** 'सूरसागर' के प्रथम एवं नवम स्कन्धों में राम की वन्दना के साथ-साथ उनकी विविध लीलाओं का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार **नन्ददास, परशुराम देव, हितहरिवंश नन्ददास, परमानन्ददास, गोविन्दस्वामी,** और **माधवदास जगन्नाथी** द्वारा रचित भी बहुत-से पद प्राप्त होते हैं।

प्र.8. कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवियों तथा उनके काव्य का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर

कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि और उनका काव्य

भगवान की कृपा अथवा अनुग्रह को **पुष्टि** कहा जाता है। यह कृपा लौकिक एवं अलौकिक विषयों के सम्पूर्ण त्याग से युक्त भावों के साथ देह आदि के भगवान को समर्पित करने से प्राप्त होती है एवं भक्ति का यह मार्ग **पुष्टिमार्ग** कहलाता है। कृष्णभक्त कवियों के शिरमौर वल्लभाचार्य ने पुष्टि-सम्प्रदाय की स्थापना की। इनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने इसे और अधिक उत्तम रूप प्रदान करके **अष्टछाप** का गठन किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ आठ कृष्णभक्त कवियों को श्रीनाथ की सेवा में गायन हेतु नियुक्त किया। इन श्रेष्ठ कवियों और उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

1. **कुम्भनदास**—सन् 1468 ई० में जन्मे कुम्भनदास को अष्टछाप के कवियों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। कहा जाता है कि एक बार सम्राट अकबर ने इन्हें फतेहपुर सीकरी बुलाया। वहाँ इनका बहुत सम्मान हुआ, लेकिन श्रीनाथजी के दर्शन न होने के कारण ये बहुत दुःखी हुए। ये तब अनासक्त भाव से कहने लगे—

भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम॥
जाको देखे दुख लागै ताकौ करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठो धाम॥

कुम्भनदास का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। कुछ पद **'वर्षोत्सव कीर्तन'**, **'वसन्त धमार कीर्तन'** **'रागकल्पद्रुम'**, **'रागरत्नाकर'**, आदि में संकलित हैं।

2. **सूरदास**—सूरदास का नाम अष्टछाप के कवियों में मूर्धन्य है। इनका जन्मकाल सन् 1478 ई० स्थिर किया जाता है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इन्होंने भगवान कृष्ण की बाललीला के साथ रासलीला तथा गोपीविरह आदि का उत्कृष्ट बखान किया है। **'सूरसागर'** और **'साहित्यलहरी'** इनकी सर्वाधिक प्रख्यात रचनाएँ हैं। **'सूरसारावली'** को कुछ विद्वान् अप्रामाणिक और कुछ 'सूरसागर' का सार अथवा उसकी विषय-सूची मानते हैं।
3. **परमानन्ददास**—**'परमानन्द-सागर'** परमानन्ददास का ग्रन्थ प्राप्त होता है। इनका जन्मकाल सन् 1943 ई० स्थिर होता है। इन्होंने सर्वाधिक कृष्ण बाललीला विषयक पदों की रचना की। इन्होंने कृष्ण के ईश्वरीय पक्ष का वर्णन न करके केवल माधुर्य पक्ष की लीलाओं का ही गान किया। रसवती भावात्मक लीलाओं के चित्रण में इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इनके पदों में पूर्वराग अवस्था की वियोग-वेदना और मिलन की उत्कृष्ट कामना स्पष्ट परिलक्षित होती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जब ते प्रीति श्याम तै कीनी।
ता दिन तै मेरे इन नैननि नेंकहू नींद न लीनी।

4. **कृष्णदास**—इनका जन्म गुजरात में राजनगर राज्य (अहमदाबाद) के चिलोतरा गाँव में सन् 1946 ई० में हुआ था। निम्न-जाति से सम्बन्ध होने पर भी ये अपनी योग्यता के बल पर मन्दिर के अधिकारी बन गए थे। **'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता'** में इनकी प्रतिभा एवं कठोर शासन-कुशलता का परिचय मिलता है। **'जुगल मान चरित्र'**, **'भ्रमरगीत'**, **'प्रेमतत्त्व निरूपण'** आदि इनके ग्रन्थ हैं। इन्होंने कृष्ण बाललीला, राधा-कृष्ण प्रेम प्रसंग तथा रूप-सौन्दर्य आदि का विविध रूपों में वर्णन किया।
5. **गोविन्द स्वामी**—गोविन्द स्वामी का जन्म सन् 1505 ई० में राजस्थान के भरतपुर के अन्तर्गत आँतरी गाँव में एक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। ये गृहस्थ थे। बाद में संसार से वैराग्य होने पर ब्रजमण्डल के महावन नामक स्थान में आकर रहने लगे और वहाँ भजन-कीर्तन करने लगे। इन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ से विधिवत् पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण की और अष्टछाप में सम्मिलित हो गए। कवि होने के साथ ये श्रेष्ठ गायक भी थे। इन्होंने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नहीं की, वरन् कुछ पदों का ही प्रणयन किया। इनके पदों को **'गोविन्द स्वामी के पद'** नाम से संकलित किया गया। इन्होंने बाललीला विषयक पद कम और राधा-कृष्ण की शृंगारलीला विषयक पदों की अधिकांश रूप में रचना की।
6. **छीतस्वामी**—छीतस्वामी का जन्म सन् 1515 ई० में हुआ था। यह मथुरा के एक धनी पण्डे थे। यौवनावस्था में ये बहुत उद्दण्ड थे। कहते हैं कि एक बार ये गोस्वामी विट्ठलनाथ को चिढ़ाने के लिए खोटा रुपया और थोथा नारियल लेकर भेंट करने पहुँचे। गोस्वामीजी ने अपनी दिव्य शक्ति से खोटे रुपये और थोथे नारियल को शुद्ध तथा परिपूर्ण बना दिया। यह देखकर छीत चौबे को बहुत आत्मग्लानि हुई। इन्होंने गोस्वामीजी से क्षमा-याचना की और ये भी पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गए। छीतस्वामी अत्यन्त स्वाभिमानी भी थे। ये बीरबल के पुरोहित थे। एक बार बीरबल के मुख से गोस्वामीजी के देवत्व के विषय में सन्देह की बात सुनकर रुष्ट होकर बीरबल के दरबार से उठ आए थे और उसकी ओर से प्राप्त होने वाली पुरोहिताई की वृत्ति भी ठुकरा दी। कीर्तन के लिए इन्होंने जो स्फुट पद रचे, उन्हें **'पदावली'** के नाम से संकलित किया गया। इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता। यद्यपि इनके पद साधारण कोटि के हैं, फिर भी अत्यधिक प्रभावशाली हैं—

अहो विधना! तो पै अँचरा पसार माँगौं।
जनम-जनम दीजो मोही याही ब्रज बसिनौ॥

7. **चतुर्भुजदास**—इनका जन्म सन् 1530 ई० में गोवर्धन के समीप जमुनावती गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम कुम्भनदास था। इन्होंने कृष्ण के जन्म से लेकर गोपी विरह तक की ब्रजलीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है। इनका कोई

स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इनके स्फुट पदों को ही **'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह'**, **'कीर्तनावली'** और **'दानलीला'** शीर्षकों से प्रकाशित किया गया। **डॉ० विजयेन्द्र स्नातक** के अनुसार—" 'द्वादशयश', 'मधुमालती' और 'भक्तिप्रताप' नाम से इनके जो अन्य ग्रन्थ बताए जाते हैं, वे इनके न होकर राधावल्लभीय तथा अन्य चतुर्भुजदास के हैं।"

8. **नन्ददास**—सन् 1533 ई० में उत्तर प्रदेश के सूकर क्षेत्र (सोरों) के रामपुर गाँव में जन्मे विट्ठलनाथ के शिष्यों में नन्ददास का प्रमुख स्थान है। कहते हैं कि आरम्भ में नन्ददास वासनाओं के शिकार रहे, परन्तु विट्ठलनाथ के पास आने पर ये कृष्णभक्त बन गए। **'पंचाध्यायी'**, **'रूपमंजरी'**, **'रास पंचाध्यायी'**, **'सिद्धान्त पंचाध्यायी'**, **'अनेकार्थ मंजरी'**, **'विरह मंजरी'**, **'रस मंजरी'**, **'सुदामाचरित''भ्रमरगीत'**, आदि इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन्होंने भ्रमरगीत के द्वारा ज्ञानमार्ग का खण्डन और सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया। ये उच्चकोटि के कवि थे। इनकी प्रशंसा में किसी कवि ने लिखा—

और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया।

प्र.9. रीतिकालीन साहित्य का वर्गीकरण कीजिए। रीतिकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों के विषय में लिखिए।

उत्तर

रीतिकालीन साहित्य का वर्गीकरण

रीतिकाल का वर्गीकरण 'रीति' को आधार बनाकर निम्न प्रकार किया जा सकता है—

1. **रीतिबद्ध**—इस वर्ग में वे कवि आते हैं जो 'रीति' के बन्धन में बँधे हुए हैं, अर्थात् जिन्होंने रीति ग्रन्थों की रचना की। लक्षण ग्रन्थ लिखने वाले इन कवियों में प्रमुख हैं—चिन्तामणि, मतिराम, देव, जसवन्तसिंह, कुलपति मिश्र, मण्डन, सूरति मिश्र, सोमनाथ, भिखारीदास, दूलह, रघुनाथ, रसिकगोविन्द, प्रतापसिंह, ग्वाल आदि।
2. **रीतिमुक्त**—इस वर्ग में वे कवि आते हैं जो 'रीति' के बन्धन से पूर्णत: मुक्त अर्थात् इन्होंने काव्यांग निरूपण करने वाले ग्रन्थों, लक्षण ग्रन्थों की रचना नहीं की तथा हृदय की स्वतन्त्र वृत्तियों के आधार पर काव्य रचना की। इन कवियों में प्रमुख हैं—घनानन्द, बोधा, आलम और ठाकुर।
3. **रीतिसिद्ध**—तीसरे वर्ग में वे कवि आते हैं जिन्होंने रीति ग्रन्थ नहीं लिखे, किन्तु 'रीति' की उन्हें भली-भाँति जानकारी थी। वे रीति में पारंगत थे। इन्होंने इस जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग अपने काव्य ग्रन्थों में किया। इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं—बिहारी। उनके एकमात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' में रीति की जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग कवि ने किया है। अनेक प्रकार की नायिकाओं का उसमें समावेश है तथा विशिष्ट अलंकारों की कसौटी पर भी उनके अनेक दोहे खरे उतरते हैं। जब तक किसी पाठक को रीति की जानकारी नहीं होगी तब तक वह 'बिहारी सतसई' के अनेक दोहों का अर्थ हृदयंगम नहीं कर सकता।

रीतिकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **शृंगारिकता**—शृंगारिकता को रीतिकालीन कविता का प्राण कहा जाता है। इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य शृंगार वर्णन ही है। यद्यपि कवियों ने वीरता, नीति, भक्ति-सम्बन्धी काव्य भी लिखा, परन्तु प्रधानता शृंगार की ही रही है। इन कवियों ने मुख्यत: नायिकाभेद, नख-शिख, अलंकार आदि के लक्षण प्रस्तुत किए हैं, परन्तु उनके माध्यम से शृंगार का ही उद्घाटन किया है। **डॉ० नगेन्द्र** द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में सत्य लिखा गया है—"साँचा चाहे कोई भी हो, उसमें ढली शृंगारिकता ही है।"

   रीतिकाल के रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त सभी कवियों ने शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है। मुख्यत: रीतिबद्ध कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की घोर शृंगारिक मनोवृत्तियों के अनुकूल शृंगारिक वर्णन किया है। ये कवि वियोग पक्ष के चित्रण में अधिक सफल नहीं रहे हैं। रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त दोनों कवियों नें शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सशक्त रूप में चित्रण किया है। राधाकृष्ण जो भक्तिकाल में आराध्य रहे, रीतिकाल में नायक-नायिका रूप में चित्रित किए गए। बिहारी का दोहा द्रष्टव्य है—

   बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
   सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहे नटि जाय॥

   संयोग पक्ष के रूप-चित्रण में ये कवि विशेष सफल रहे हैं। नयनों के कटाक्ष, चंचलता आदि का भव्य रूप इनके काव्य में मिलता है।

2. **रीति-निरूपण**—रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर रीति-ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में उन्होंने रस, छन्द, अलंकार, नायक-नायिकाभेद, गुण एवं दोष आदि का विवेचन किया है तथा उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। इस काल के अधिकांश कवियों ने लक्षण-ग्रन्थों की रचना की। इस काल में कवि-कर्म और आचार्य-कर्म एक-साथ चलते रहे। अर्थात् इस काल के कवियों ने काव्य-सृजन करने के साथ-साथ काव्य के अंगों—रस, छन्द, अलंकार, गुण तथा शब्दशक्ति आदि का निरूपण भी किया।
3. **आलंकारिकता**—इस काल के कवियों की प्रवृत्ति पाण्डित्य प्रदर्शन की ओर अधिक रही; अत: इन्होंने काव्य में अलंकारों का बहुत अधिक प्रयोग किया। इस प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण रहा—चमत्कार उत्पत्ति द्वारा पाठक और श्रोता के मन को आकृष्ट करना तथा अलंकारशास्त्र के अनुसार कविता-कामिनी का शृंगार करना। इन कवियों ने अलंकारों को काव्य का साध्य माना, साधन नहीं। कहीं-कहीं अलंकारों के आधिक्य के कारण भाव भी दब गए हैं। परिणामस्वरूप काव्य में कृत्रिमता के दर्शन होते हैं।
4. **भक्ति और नीति**—यद्यपि रीतिकाल में शृंगार की प्रधानता रही, फिर भी भक्ति और नीति-सम्बन्धी दोहों के साथ-साथ सूक्तियाँ भी यत्र-तत्र परिलक्षित होती हैं। भक्ति के विषय में उनका मत है—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई, न तौ
राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

रीतिकालीन कवि का मुख्य लक्ष्य अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना था। इन कवियों ने आश्रयदाता के रीझने पर ही अपने काव्य को सफल माना। यदि कभी भी वे इस कार्य में सफल न हो सके तो बाद में उन्हें यह सन्तोष रहता कि चलो राधा-कृष्ण का स्मरण तो हो ही गया। भक्ति और नीति-सम्बन्धी रचनाएँ यद्यपि संख्या में बहुत कम हैं, तथापि इनसे उन कवियों की धर्म के प्रति आस्था और नैतिकता में विश्वास तो प्रकट होता ही है।

रीति-ग्रन्थों में मंगलाचरणों, ग्रन्थ की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति और शान्त रसों, निर्वेदादि संचारियों तथा अलंकार-सम्बन्धी ग्रन्थों में दिए गए उदाहरणों में भक्ति की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार नीति-सम्बन्धी सूक्तियाँ भी दृष्टिगत होती हैं। इस काल के कवियों ने संस्कृत के पंचतन्त्र, हितोपदेश और सुभाषितों के आधार पर नीति-सम्बन्धी दोहे एवं सूक्तियाँ लिखी हैं। इस क्षेत्र में वृन्द, वैताल, गिरिधर कविराय, दीनदयाल गिरि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

5. **वीर रस की कविता**—रीतिकाल में एक ओर शृंगार रस की प्रधानता रही तो दूसरी ओर **भूषण, लाल** तथा **सूदन** जैसे कवियों ने वीर रस में काव्य-सृजन कर राष्ट्रीय भावना को जन्म दिया तथा समाज व साहित्य को नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया। इन कवियों का मुख्य उद्देश्य—आश्रयदाता को दानवीरता एवं युद्धवीरता का वर्णन करना रहा है। ये चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण सत्य से दूर झूठी प्रशस्ति ही प्रतीत होते हैं।
6. **प्रकृति-चित्रण**—रीतिकालीन कवियों को प्रकृति के स्वच्छन्द रूपों का अवलोकन करने का अवकाश नहीं था, फिर भी उन्होंने प्रकृति के मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। इस युग में प्रकृति का आलम्बन रूप में अधिक चित्रण किया गया है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण नायक-नायिका की मन:स्थिति के अनुकूल हुआ है। इसके अतिरिक्त आलंकारिक तथा उपदेशात्मक रूप भी उपलब्ध होता है।
7. **अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन**—रीतिकालीन कवियों ने आश्रयदाताओं को रिझाने हेतु सर्वत्र अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किए हैं। इसके अतिरिक्त काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए भी उन्होंने इस पद्धति का आश्रय लिया है। एक ओर राजाओं की दानवीरता, युद्धवीरता आदि गुणों के अतिशयोक्तिपूर्ण चित्र अंकित किए गए हैं तो दूसरी ओर नायिका के सौन्दर्य-चित्रण, विरह-वर्णन आदि में भी इसी पद्धति को अपनाया गया है।
8. **जनता की भावनाओं की उपेक्षा**—रीतिकालीन काव्य में जनता की भावनाओं की प्राय: उपेक्षा की गई। इसका मुख्य कारण यही है कि कवि राज्याश्रित थे, जो राजा को प्रसन्न करने हेतु ही काव्य-रचना करते थे और राजा से धन व मान प्राप्त कर सन्तुष्ट हो जाते थे। घोर शृंगारिकता अथवा विलासिता के इस युग में जनता की भावनाओं को समझने का किसी के पास अवकाश ही नहीं था; अत: काव्य में जनभावनाओं की उपेक्षा की गई।

9. **मुक्तक काव्य की प्रधानता**—रीतिकाल में प्रबन्धकाव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य की रचना अधिक की गई। कविगण आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए उनके मनोनुकूल एक-दो दोहा अथवा मुक्तक सुनाकर बहुत-सा धन व मान प्राप्त कर लेते थे। इसलिए इस युग में मुक्तक काव्य की प्रधानता रही।
10. **ब्रजभाषा का प्रयोग**—रीतिकाल में ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। इस युग की भाषा सरस, सरल, परिष्कृत, परिमार्जित, शुद्ध, साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा में सर्वत्र कोमलकान्त पदावली का आधिक्य है। इन कवियों में भाषा को विशेष रूप से सजाया, सँवारा और निखारा है। वर्णमैत्री, अनुप्रासत्व, ध्वन्यात्मकता, अनेकार्थता व व्यंग्य आदि सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। भाषा की दृष्टि से ये कवि बहुत सफल रहे हैं।
11. **छन्द-योजना**—रीतिकालीन कवियों ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा, कवित्त तथा सवैया इनके प्रिय छन्द रहे हैं। कहीं-कहीं छप्पय, बरवै, हरिपद आदि छन्दों का भी प्रयोग किया गया है, परन्तु दोहा, सवैया और कवित्त ब्रजभाषा की प्रकृति के विशेष अनुकूल रहे हैं; अत: अधिकांशत: इन्हीं का प्रयोग किया गया।
12. **हिन्दी गद्य-साहित्य की रचना**—रीतिकाल में गद्य-लेखन का कार्य भी हुआ। इस काल में ब्रज, राजस्थानी और खड़ीबोली गद्य का समृद्ध रूप दृष्टिगत होता है। खड़ीबोली गद्य के प्रारम्भिक प्रणेता **इंशाअल्ला खाँ, मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल** और **सदल मिश्र** इसी युग की देन हैं; अत: गद्य-साहित्य की दृष्टि से भी रीतिकाल का विशेष महत्त्व है। **डॉ० शिवकुमार शर्मा** के शब्दों में—"रीतियुग को आधुनिक हिन्दी गद्य के विविध-रूपों का प्रस्फुटनकाल कहा जा सकता है।"

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि रीतिकाल में शृंगार की प्रधानता होने पर भी काव्य में विविधता विद्यमान है। इसमें भक्ति-नीति के साथ वीर रस का काव्य भी उपलब्ध होता है। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होने पर भी काव्य में चमत्कार एवं प्रभाव बना रहता है। नारी-विषयक दृष्टिकोण स्वस्थ न होने पर भी मनोवैज्ञानिकता की प्रधानता है। भाषा, छन्द, अलंकार एवं काव्य रूप की दृष्टि से भी ये कवि सफल रहे हैं; अत: भाव एवं कला दोनों दृष्टियों से यह काव्य सबल रहा है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-II

आधुनिककालीन काव्य का इतिहास

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. द्विवेदी युग अथवा जागरण-सुधारकाल का आरम्भ कब से माना जाता है?

उत्तर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जागरण सुधारकाल में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अत: द्विवेदी युग अथवा जागरण-सुधारकाल का आरम्भ सन् 1900 ई० में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से माना जाता है। भारतेन्दुकाल में कविता में आधुनिकता का स्वर मुखरित अवश्य होने लगा था, परन्तु वह रीतिकाल के प्रभाव से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो पाई थी। इस काल में गद्य-लेखन खड़ीबोली में प्रारम्भ हेा गया था। लेकिन काव्य की भाषा अभी भी ब्रजभाषा ही थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त जैसे कितने ही कवियों को खड़ीबोली में कविता करने के लिए न केवल प्रेरित किया, अपितु 'सरस्वती' में उनका प्रकाशन करके साहित्य-जगत में एक जागरण-अभियान-सा छेड़ दिया। यही कारण था कि हिन्दी साहित्य में द्विवेदीकाल को जागरण-सुधारकाल का नाम भी दिया गया।

प्र.2. भारतेन्दु युग में काव्य के साथ-साथ गद्य साहित्य का भी सर्वाधिक विकास हुआ, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर भारतेन्दु युग में काव्य साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ, इसके साथ-साथ गद्य के विकास में भी सर्वाधिक प्रगति हुई। यद्यपि खड़ीबोली गद्य का प्रचलन भारतेन्दु से पूर्व ही हो चुका था, फिर भी उसका वास्तविक विकास इसी युग में हुआ। भारतेन्दु जी एक ओर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द एवं राजा लक्ष्मणसिंह की हिन्दी-उर्दूमिश्रित तथा संस्कृतनिष्ठ भाषा में समन्वय करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर गद्य-साहित्य के विभिन्न अंगों—कहानी, निबन्ध, नाटक आदि का भी मौलिक रूप में प्रवर्त्तन किया। भारतेन्दुजी ने न केवल स्वयं गद्य में रचनाएँ कीं, अपितु अपने सहयोगियों को भी इसके लिए प्रेरित किया।

प्र.3. भारतेन्दुजी के प्रमुख सहयोगी नाम लिखिए।

उत्तर भारतेन्दुजी के अनेक सहयोगी लेखक थे। उनके इस समूह को हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-मण्डल के नाम से जाना जाता है। इस मण्डल में भारतेन्दु जी के प्रमुख सहयोगी—बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीराधाचरण गोस्वामी और राधाकृष्णदास—सम्मिलित हैं।

प्र.4. भारतेन्दु युगीन कविता की विशेषताएँ बताइए। **(2021)**

उत्तर इस युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश-द्वार माना जाता है। इसे पुनर्जागरण काल भी कहते हैं। हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं का विकास इस युग में दिखाई देता है। इस युग में ब्रज भाषा के साथ खड़ीबोली का प्रचलन शुरू हो गया था। इस युग के कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से देशप्रेम के बीच रोपे थे। इस समय के कवियों ने अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के प्रति अपना विरोध कविताओं में प्रकट किया है। भारतेन्दु युगीन कविता सामाजिक चेतना की कविता है। इस युग में स्त्री शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा तथा छुआछूत को सोच दूर करने हेतु समाज को जगाने का प्रयास किया गया, कवियों ने समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के लिए कविताएँ लिखी हैं। इस युग में मौलिक काव्य लेखन के साथ-साथ संस्कृत तथा अंग्रेजी का हिन्दी में अनुवाद किया है; जैसे—श्रीधर पाठक का 'गोल्स्मिथ' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं। भारतेन्दु युगीन कविताओं में हास्य-व्यंग्य पूर्ण रचनाओं का विशेष रूप मिलता है। हास्य-व्यंग्य शैली के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों पर करारे व्यंग्य किए गए हैं। इस युग में कवियों ने समस्या पूर्ति की अनोखी कविता विकसित की है। इसमें कवियों की प्रतिभा की परीक्षा लेने के लिए कठिन विषय उन्हें दिए जाते थे। कवि गोष्ठियों में इसका विशेष प्रचलन था। इस युग की कविताओं में काव्य के विविध रूपों का प्रयोग मिलता है। कहीं पर मुक्तक काव्य तो कहीं प्रबंध काव्य शैली तो कहीं गीति काव्य शैली का रूप मिलता है। इस काल की कविता में अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार का सहज प्रयोग हुआ है। इस युग की कविताओं में कवियों ने दोहा, सोरठा, चौपाई, रोला, सवैया, कवित्त आदि छन्दों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग खूब किया है।

प्र.5. हिन्दी-भाषा के उत्थान में महावीरप्रसाद द्विवेदी का क्या योगदान रहा?

उत्तर हिन्दी-भाषा के उत्थान हेतु महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सन् 1903 ई० में सरस्वती पत्रिका के सम्पादन का भार ग्रहण किया गया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी की व्यावहारिक अव्यवस्था में सुधार किया और उसे नई दिशा प्रदान की। वे सरस्वती में लेखों और टिप्पणियों के द्वारा निरन्तर हिन्दी-भाषा-साहित्य की उन्नति का प्रयास करते रहे। अंग्रेजों के द्वारा अपनाई गई भाषा-सम्बन्धी भेद-नीति को वे अच्छी प्रकार समझते थे, अत: उर्दू-हिन्दी के विवाद को जड़ से समाप्त करने के उद्देश्य से निरन्तर लेख लिखते रहते। सन् 1903 ई० में सरस्वती के सितम्बर-अक्टूबर अंक में उन्होंने 'देश व्यापक भाषा' लेख लिखकर उर्दू को हिन्दी का अभिन्न अंग प्रमाणित किया। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी भाषा को सुदृढ़ और परिमार्जित रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

प्र.6. छायावाद पर किन प्रमुख वादों का प्रभाव परिलक्षित होता है?

उत्तर छायावाद पर यूरोपीय काव्य-क्षेत्र के आध्यात्मिक प्रतीकवाद तथा ईसाई सन्तों के छायाभास का अत्यन्त प्रभाव रहा। हिन्दी के रहस्यवाद को तो उसने सब प्रकार से आत्मसात् ही कर लिया। इस परिपेक्ष्य में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने कहा है—"छायावाद जहाँ तक आध्यात्मिक प्रेम लेकर चला है, वहाँ तक तो रहस्यवाद के अन्तर्गत ही रहा है। इसके आगे प्रतीकवाद तथा चित्रभाषावाद नाम की काव्य-शैली के रूप में गृहीत होकर भी वह अधिकतर प्रेमगान करता रहा।"

प्र.7. पन्तजी प्रकृति के सुकुमार कवि क्यों कहे जाते हैं? संक्षेप में बताइए।

उत्तर प्रकृति पन्त जी के लिए काव्य की वस्तु और उसकी साज-सज्जा का साधन ही नहीं, अपितु काव्य-प्रेरणा का स्रोत भी रही है, उन्हें 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है, इसलिए उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार करते हुए कहा है—"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"

प्र.8. महादेवी वर्मा के काव्य के सर्वप्रमुख तत्त्व के विषय में संक्षेप में लिखिए।

उत्तर महादेवी वर्मा के काव्य का सर्वप्रमुख तत्त्व वेदना है, इसी की प्रधानता के कारण उन्हें आधुनिक युग की 'मीरा' कहा जाता है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने इस सन्दर्भ में उचित ही कहा है—"उनके काव्य का सर्वप्रमुख तत्त्व वेदना, वेदना का आनन्द, वेदना का सौन्दर्य, वेदना के लिए ही आत्मसमर्पण है। वह तो वेदना के साम्राज्य की एकच्छत्र सम्राज्ञी हैं और कोई सुख उन्हें आत्मविस्मृत या आत्मतन्मय होने को नहीं चाहिए। सुख तो क्षणजीवी है, वेदना चिरस्थायी एवं चिरव्यापी है।"

प्र.9. प्रगतिवादी साहित्य के विकास में किन पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया?

उत्तर प्रगतिवादी साहित्य के विकास में 'रूपाभ', 'हंस', 'अवन्तिका', 'नया पथ', 'समालोचक' तथा 'नया साहित्य' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई; क्योंकि इनके माध्यम से अनेक प्रगतिवादी कविताएँ प्रकाश में आईं।

प्र.10. प्रगतिवाद के प्रवर्त्तक कौन माने जाते हैं?

उत्तर प्रगतिवाद का प्रवर्त्तक सुमित्रानन्दन पन्त को माना जाता है; क्योंकि उनकी 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' नामक कृतियों में प्रगतिवादी कविता के लक्षण विद्यमान हैं। उनकी इन कृतियों में पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के दुष्परिणामों के साथ ही किसानों तथा मजदूरों की दयनीय दशा के चित्र सर्वत्र परिलक्षित होते हैं।

प्र.11. प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति अतिबौद्धिकता के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर प्रयोगवादी कविता में भावुकता का स्थान जिस अतिबौद्धिकता ने ले लिया है, उसके विषय में **डॉ० शिवकुमार शर्मा** ने कहा हैं—"नया कवि पाठक के हृदय को तरंगित तथा उद्वेलित न कर उसकी बुद्धि को अपनी पहेली बुझौवल के चक्रव्यूह में आबद्ध करके उसे परेशान करना चाहता है।" **धर्मवीर भारती** प्रत्येक भवना के साथ एक प्रश्नचिह्न लगाकर उसे सन्देहास्पद बना देने को अतिबौद्धिकता की श्रेणी में रखते हुए कहते हैं—"प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्नचिह्न लगा है। इसी प्रश्नचिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।"

प्र.12. नई कविता का परिचय दीजिए।

उत्तर इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है कि प्रयोगवादी कविता से ही नई कविता का विकास हुआ है। नई कविता की पृष्ठभूमि में क्योंकि प्रयोगवादी कविता है; अत: उसका प्रतिबिम्ब नई कविता में झलकना भी स्वाभाविक है। बस, यही एक कारण है, जो नई

कविता में प्रयोगवादी कविता के होने का भ्रम उत्पन्न करता है। यह भ्रम भी उन्हीं लोगों को भ्रमित करता है, जो नई कविता और प्रयोगवादी कविता के आत्मतत्त्व को नहीं पहचान पाते हैं।

प्र.13. नई कविता के कुछ सर्वप्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उत्तर नई कविता के सर्वप्रमुख कवि—जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश सहाय वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि हैं। नई कविता के कुछ ऐसे भी कवि थे, जिन्होंने अपने काव्य-सृजन का सम्बन्ध अज्ञेय और उनके प्रयोगवाद से जोड़ा तथा मार्क्सवाद एवं प्रगतिवाद का डटकर विरोध किया। गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, कुँवरनारायण, रघुवीर सहाय, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह और श्रीकान्त वर्मा आदि नई कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

प्र.14. समकालीन कविता के अन्तर्गत किस कालखण्ड के काव्य को सम्मिलित किया जाता है?

उत्तर सन् 1960 ई० के पश्चात् के काव्य को समकालीन कविता के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। सन् 1960 ई० को आधार वर्ष मानने के कारण समकालीन कविता को **साठोत्तरी कविता** के नाम से भी जाना जाता है। साठोत्तरी कविता का फलक क्योंकि अत्यन्त विस्तृत है; इसएिल इसे विभिन्न काव्य-आन्दोलनों के रूप में विभाजित कर लिया गया है।

प्र.15. साठोत्तरी अथवा समकालीन कविता के अन्तर्गत विकसित कविता के प्रमुख प्रारूपों (आन्दोलनों) के नाम लिखिए।

उत्तर साठोत्तरी अथवा समकालीन कविता में कविता के अनेक रूप विकसित हुए। इनमें से प्रत्येक प्रारूप एक निश्चित समयावधि में अत्यधिक प्रचलित रहा अर्थात् उस समयावधि में नये प्रारूप पर आधारित कविता का सृजन व्यापक स्तर पर हुआ; इसलिए समयावधि की उस काव्य-प्रवृत्ति को एक आन्दोलन का नाम दे दिया गया। **युयुत्सावादी कविता, नूतन कविता, नाटकीय कविता, नवगीत, अकविता, सनातन सूर्योदयी कविता, सीमान्त कविता, एण्टी कविता, विद्रोही कविता, शुद्ध कविता** आदि ऐसे कितने ही आन्दोलन साठोत्तरी कविता के अन्तर्गत हुए।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हिन्दी साहित्य की आधुनिककालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

आधुनिककालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गतिविधियों ने प्रभावित किया है। यह हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है। इसमें पद्य के साथ-साथ गद्य, नाटक, समालोचना, कहानी व पत्रकारिता का भी विकास हुआ। वि०सं० 1800 के पश्चात् भारत में अनेक यूरोपीय जातियाँ व्यापार हेतु आईं। उनके सम्पर्क से यहाँ पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ। विदेशियों ने यहाँ के देशी राजाओं की पारस्परिक फूट से लाभ उठाकर अपने पैर जमाने में सफलता प्राप्त की। जिसके फलस्वरूप यहाँ पर ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। अंग्रेजों ने यहाँ अपने शासन कार्य को सुचारु रूप से चलाने और अपने धर्म-प्रचार हेतु जन-साधारण की भाषा को अपनाया। इस कार्य के लिए गद्य ही अधिक उपयुक्त होता है। इस कारण आधुनिक युग की मुख्य विशेषता गद्य की प्रधानता रही। आधुनिक काल में होने वाले मुद्रण कला के आविष्कार ने भाषा-विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी आर्य समाज के ग्रन्थों की रचना राष्ट्रभाषा हिन्दी में की और अंग्रेज मिशनरियों ने भी अपनी प्रचार पुस्तकें हिन्दी गद्य में ही छपवाईं। इस तरह विभिन्न मतों के प्रचार कार्य से भी हिन्दी गद्य का समुचित विकास हुआ।

आधुनिक काल में राष्ट्रीय भावना का भी समुचित विकास हुआ। इसके लिए शृंगारी ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली उपयुक्त मानी गई। समय की प्रगति के साथ गद्य और पद्य दोनों रूपों में खड़ी बोली का पर्याप्त विकास हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली के दोनों रूपों को सुधारने के लिए अत्यधिक प्रयास किए। उन्होंने अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा द्वारा हिन्दी साहित्य की सम्यक संवर्धना की।

इस काल के प्रारम्भ में जगन्नाथ दास रत्नाकर, श्रीधर पाठक, राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। इनके बाद भारतेन्दु जी ने गद्य का समुचित विकास किया और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी गद्य को प्रांजल रूप प्रदान किया। इसकी सत्प्रेरणाओं से अन्य लेखकों और कवियों ने भी अनेक भाँति की काव्य रचना की। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा शंकर, ला० भगवान दीन, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, गोपाल शरण सिंह, माखन चतुर्वेदी, अनूप शर्मा, रामकुमार वर्मा, श्याम नारायण पाण्डेय आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल में गद्य-निबन्ध, समालोचना, तुलनात्मक आलोचना, नाटक-उपन्यास, कहानी, साहित्य आदि सभी रूपों का समुचित विकास हुआ।

प्र.2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हिन्दी भाषा के उत्थान में किए गए प्रयास के रूप में उनकी कृतियों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (1850-1885)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 1850 ई० में तथा मृत्यु 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई० में हुई थी। इस अल्पावधि में ही इस महान साधक ने माँ भारती के साहित्य भण्डार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। उनके सम्पूर्ण कृतित्व का विवरण निम्नवत् है—

मौलिक नाटक—1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, 2. नीलदेवी, 3. चंद्रावली नाटिका, 4. अन्धेर नगरी, 5. विषस्य विषमौषधम्, 6. प्रेम जोगिनी, 7. भारत दुर्दशा, 8. सती प्रताप (अधूरा)।

अनूदित नाटक—1. पाखण्ड विडम्बना, 2. सत्य हरिश्चन्द्र, 3. धनंजय विजय, 4. भारत जननी, 5. कर्पूर मंजरी, 6. दुर्लभ बन्धु, 7. मुद्राराक्षस, 8. रत्नावली।

उपन्यास—1. हमीर हठ, 2. रामलीला, 3. सुलोचना, 4. शीलवती, 5. सावित्री चरित्र।

निबन्ध—1. सबै जाति गोपाल की, 2. मित्रता, 3. सूर्योदय, 4. आप बीती कुछ जग बीती, 5. जयदेव, 6. बंग भाषा की कविता।

काव्य कृतियाँ—1. प्रेमाश्रुवर्णन, 2. प्रेम माधुरी, 3. प्रेम तरंग, 4. उत्तरार्द्ध भक्तमाल, 5. प्रेम-प्रलाप, 6. गीत गोविन्दानन्द, 7. सतसई सिंगार, 8. होली, 9. मधुमुकुल, 10. रामसंग्रह, 11. वर्षा विनोद, 12. प्रेम पचासा, 13. फूलों का गुच्छा, 14. प्रेम फुलवारी, 15. चरित, 16. तन्मय लीला, 17. दान, 18. प्रबोधिनी, 19. प्रातसमीरन, 20. बकरी विलाप, 21. रामलीला।

इतिहास ग्रन्थ—1. कश्मीर कुसुम, 2. बादशाह दर्पण।

भारतेन्दु जी के पिता गोपालचन्द्र भी अच्छे कवि थे जो 'गिरधरदास' नाम से कविता करते थे। पं० लोकनाथ भारतेन्दु जी के काव्य गुरु थे। भारतेन्दु जी के नाटकों, निबन्धों में विषय वैविध्य चन्द्रावली नाटिका के प्रेम के आदर्श का निरूपण है तो 'नीलदेवी' ऐतिहासिक नाटक है। 'भारत-दुर्दशा' में देश की दशा और धार्मिक पाखण्ड है तो 'विषस्य विषमौषधम्' में देशी रजवाड़ों के षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया गया है। 'प्रेम जोगिनी' धार्मिक पाखण्ड का चित्रण है। उनकी कविता में भक्ति भावना, शृंगारिकता के साथ-साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम है। भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त मिथ्याचारों, कुरीतियों, अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया। भारतेन्दु के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का अंकन किया गया है तो दूसरी ओर वर्तमान अधोगति का चित्रण है। प्रतापनारायण मिश्र की 'बुढ़ापा', 'हरगंगा', हिन्दी की हिमायत' आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं। बदरीनारायण चौधरी की कविताओं में भी समकालीन विषय का उद्घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है।

प्र.3. छायावाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

छायावाद

द्विवेदीयुगीन कविता के उपरान्त छायावाद का विकास हिन्दी में हुआ। मोटे तौर पर छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई० से 1936 ई० तक मानी जा सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारम्भ 1918 ई० से माना है, क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों निराला, पन्त, प्रसाद ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी प्रारम्भ की थीं। 1918 ई० में प्रसाद का 'झरना' प्रकाशित हो चुका था एवं निराला की प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' 1916 ई० में प्रकाशित हुई थी। जबकि पन्त के 'पल्लव' की कुछ कविताएँ भी 1918 में प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसाद की 'कामायनी' 1935 ई० में प्रकाशित हुई तथा प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 ई० में हुई। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर छायावाद की अन्तिम सीमा 1936 ई० मानना सर्वोचित है।

द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी काव्य का जन्म हुआ, क्योंकि द्विवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी, जबकि छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पनाप्रधान एवं सूक्ष्म है। प्रारम्भ में 'छायावाद' का प्रयोग व्यंग्य रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थीं, जिनकी 'छाया' (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किन्तु कालान्तर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी।

प्र.4. छायावाद के चार स्तम्भ किन्हें माना जाता है? उनकी प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर

छायावाद के चार स्तम्भ एवं उनकी प्रमुख रचनाएँ

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, जयशंकरप्रसाद और महादेवी वर्मा को छायावाद के चार स्तम्भ माना जाता है। इनकी प्रमुख रचनाएँ अग्रलिखित हैं—

1. **सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'**—राम की शक्तिपूजा, सरोज-स्मृति, कुकुरमुत्ता, परिमल, गीतिका, अनामिका, अणिमा, आराधना, अर्चना, अपरा, बेला, नए पत्ते आदि इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, काले कारनामे आदि (उपन्यास); सखी, लिली, चतुरी चमार, शुकुल की बीवी, देवी (कहानी-संग्रह); बाहर-भीतर, प्रबन्ध प्रतिमा, चाबुक, चयन आदि (निबन्ध-संग्रह); कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा (संस्मरण/कथात्मक रेखाचित्र); रवीन्द्र कविता-कानन, पन्तजी और पल्लव आदि (आलोचना); आनन्द मठ, दुर्गेश नन्दिनी, राजसिंह, रजनी (अनूदित) आदि इनकी प्रमुख गद्य रचनाएँ हैं।
2. **सुमित्रानन्दन पन्त**—मौन-निमन्त्रण, गुंजन, युगान्त, वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, युगवाणी, स्वर्ण-किरण, ग्राम्या, गीत-विहग, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, अतिमा, लोकायतन आदि पन्तजी की प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं।
3. **जयशंकरप्रसाद**—चित्राधार, लहर, कामायनी, आँसू, झरना इनके प्रमुख काव्य हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, कामना, एक घूँट, राज्यश्री, जन्मेजय का नागयज्ञ, कल्याणी, अजातशत्रु आदि (नाटक); कंकाल, तितली, इरावती (उपन्यास); आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि, छाया (कहानी-संग्रह); काव्य और कला (निबन्ध-संग्रह) इनकी प्रमुख गद्य-रचनाएँ हैं।
4. **महादेवी वर्मा**—यामा, सन्धिनी, सान्ध्यगीत, नीहार, रश्मि, नीरजा, दीपशिखा आदि महादेवी वर्मा की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त, अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, शृंखला की कड़ियाँ आदि महादेवी वर्मा की प्रमुख गद्य-कृतियाँ हैं।

प्र.5. उत्तर छायावाद की विभिन्न वैचारिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए प्रगतिवादी हिन्दी साहित्य के उद्भव एवं विकास को संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

उत्तर छायावाद की विभिन्न वैचारिक प्रवृत्तियाँ

छायावाद के पश्चात् देश का परिदृश्य तेजी से परिवर्तित हुआ। छायावाद के पश्चात् के काव्य-खण्ड या काव्य-काल को उत्तर छायावाद, छायावादोत्तर, साठोत्तर, स्वातन्त्र्योत्तर काव्य आदि नामों से अभिहित किया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए देश के युवाओं में मर-मिटने की भावना जाग्रत हुई, एक लम्बे संघर्ष और आन्दोलन के पश्चात् देश को स्वतन्त्रता-प्राप्ति हुई, विकास की नई योजनाएँ बनीं, देश के किसानों-मजदूरों की समस्याओं का विश्लेषण, औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और उनके समाधान हेतु वैचारिक सहमति बनी, शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया गया। इस तरह देश और समाज में एक बड़ा वैचारिक परिवर्तन हुआ। जनसामान्य अपने अधिकारों के प्रति थोड़ा सचेत होने लगा। इन सब वैचारिक प्रवृत्तियों का साहित्य पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा; क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है।

साहित्य, विशेषकर काव्य के क्षेत्र में जिन विविध वैचारिक प्रवृत्तियों ने अपना स्थान बनाया, उनमें प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता और समकालीन कविता प्रमुख हैं। यद्यपि इनके पूर्व राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का काव्य और इनके पश्चात् नवगीत, अकविता तथा उत्तर आधुनिकतावाद की अनेक अवधारणाएँ अस्तित्व में आईं। मगर हम यहाँ इनमें से प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और समकालीन कविता का ही विवेचन करेंगे, जो निम्न प्रकार है—

प्रगतिवादी हिन्दी-साहित्य का उद्भव एवं विकास

सन् 1936 ई० के लगभग हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवादी चेतना का उदय हुआ। इस समय **मुल्कराज आनन्द** और **सज्जाद जहीर** के प्रयत्नों के फलस्वरूप 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रगतिवादी कविताएँ प्रकाश में आईं। 'रूपाभ', 'नया पथ', 'समालोचक', 'हंस', 'अवन्तिका' तथा 'नया साहित्य' आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रगतिवादी साहित्य का विकास हुआ।

वास्तविक अर्थों में **पन्तजी** ने प्रगतिवाद का प्रवर्तन किया। उनकी **'युगान्त', 'युगवाणी'** और **'ग्राम्या'** कृतियों में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के दुष्परिणाम के साथ ही कृषक और श्रमिकों की शोचनीय स्थिति का विशद् चित्रण मिलता है।

निरालाजी की 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि कविताओं में प्रगतिवाद का स्वर मुखरित हुआ है। इसके अतिरिक्त 'कुकुरमुत्ता' तथा 'खजोहरा' कविताओं में उन्होंने सामाजिक परम्पराओं पर तीखे व्यंग्य किए हैं। प्रगतिवाद को मुक्त छन्द प्रदान करने का श्रेय निराला को ही है।

दिनकर की कृतियों—'हुँकार', 'रसवन्ती', 'रेणुका', 'कुरुक्षेत्र' आदि—में प्रगतिवादी विचारधारा परिलक्षित होती है।

प्रगतिवाद के प्रमुख कवि और उनकी मुख्य रचनाएँ—पन्त, निराला और दिनकर प्रगतिवाद के मूर्धन्य कवि हैं, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त नरेन्द्र शर्मा—'पलाश-वन'; माखनलाल चतुर्वेदी—'मानव'; बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'रश्मि-रेखा', 'अपलक'; केदारनाथ अग्रवाल—'नींद के बादल', नागार्जुन—'युगधारा', 'सतरंगे पंखोंवाली'; त्रिलोचन—'धरती' इस युग के मूर्धन्य कवि हैं।

प्र.6. कुछ प्रमुख प्रगतिवादी कवियों, उनकी रचनाओं एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रमुख प्रगतिवादी कवि

1. **शिवमंगल सिंह 'सुमन'**—1. हिल्लोल, 2. जीवन के गान, 3. प्रलय सृजन, 4. विश्वास बढ़ता ही गया, 5. पर आँखें नहीं भरीं, 6. विन्ध्य हिमाचल, 7. एशिया जाग उठा है, 8. मिट्टी की बारात, 9. वाणी की व्यथा।
   विशेषताएँ—1. 'हिल्लोल' में प्रणयानुभूति के चित्र हैं। जीवन के गान में कवि की रोमानी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 2. शोषण एवं अन्याय का विरोध उनकी रचनाओं में है। 3. गाँधी की अपेक्षा मार्क्स के समर्थक हैं। 4. सुमन जी के काव्य में भाव विचार एवं शिल्प का सुन्दर समन्वय है।
2. **त्रिलोचन**—1. धरती, 2. मिट्टी की बारात, 3. मैं उस जनपद का कवि हूँ।
   विशेषताएँ—1. इनकी कविताओं में धरती की सोंधी गन्ध है। 2. त्रिलोचन की कविताओं में तटस्थता एवं भावुकता का समावेश है।
3. **नागार्जुन**—कविता संग्रह : 1. युगधारा (1956 ई०), 2. सतरंगे पंखों वाली (1959 ई०), 3. प्यासी पथराई आँखें (1962 ई०), 4. भस्मांकुर, 5. तुमने कहा था।
   प्रसिद्ध कविताएँ—1. प्रेत बयान, 2. कालीमाई, 3. अकाल और उसके बाद, 4. आओ रानी हम ढोएँ पालकी, 5. वे और तुम, 6. पाषाणजी, 7. सिन्दूर तिलांकित झील, 8. रबीन्द्र के पति।
   उपन्यास—1. रतिनाथ की चाची, 2. बलचनमा, 3. वरुण के बेटे, 4. दु:ख मोचन, 5. कुम्भीपाक। अनुवाद:—1. मेघदूत, 2. गीत गोविन्द, 3. विद्यापति पदावली।
   विशेषताएँ—1. इनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है। 2. मैथिली में ये यात्री के नाम से लिखते रहते तथा हिन्दी में इन्हें बाबा नागार्जुन के नाम से जाना जाता है। 3. दीपक पत्रिका के सम्पादक रहे। 4. बौद्ध धर्म में दीक्षा लेकर नागार्जुन नाम ग्रहण किया। 5. प्रगतिवादी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। 6. अन्याय, शोषण एवं अत्याचार के विरोधी एवं मजदूरों के हिमायती। 7. व्यंग्यपरक रचनाओं के कुशल शिल्पी।
4. **केदारनाथ अग्रवाल**—1. युग की गंगा, 2. नींद के बादल, 3. फूल नहीं रंग बोलते हैं, 4. आग का आईना, 5. समय-समय पर, 6. अपूर्वा।
   विशेषताएँ—1. सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता तथा साहित्य अकादमी अवार्ड विजेता एवं साम्यवाद के प्रति दृढ़ आस्था।
5. **रांगेय राघव**—1. अजेय खण्डहर, 2. मेधावी, 3. पांचाली, 4. राह के दीपक
   विशेषताएँ—1. प्रकृति छवि का चित्रण राह के दीपक में है। 2. समाजवादी चिन्तन से अनुप्राणित का सर्जक।

प्र.7. प्रयोगवादी काव्य का प्रादुर्भाव कब से माना जाता है? इसकी प्रमुख रचनाओं और कवियों के नाम दीजिए।

उत्तर सन् 1943 में **'तार सप्तक'** का प्रकाशन **'अज्ञेय'** के सम्पादकत्व में हुआ। इस संग्रह से प्रयोगवादी काव्य का प्रारम्भ माना जाता है। इसमें प्रमुख सात कवि जिनकी रचनाएँ संकलित थीं, उनके नाम हैं—**नेमिचन्द्र जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'।**

'अज्ञेय' के सम्पादकत्व में **दूसरा सप्तक** सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। इस सप्तक के प्रमुख सात कवि जिनकी रचनाएँ संकलित हैं, उनके नाम हैं—**भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुरसिंह, नरेश मेहता, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती।**

तीसरा सप्तक—अज्ञेय के सम्पादकत्व में ही सन् 1959 ई० में प्रकाशित हुआ। तीसरे सप्तक में जिन सात कवियों की रचनाएँ संकलित की गईं उनके नाम हैं—**1. प्रयाग नारायण त्रिपाठी, 2. कीर्ति चौधरी, 3. केदारनाथ सिंह, 4. कुँवर नारायण, 5. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, 6. मदन वात्स्यायन, 7. विजयदेव नारायण साही।**

चौथा सप्तक—सन् 1979 ई० में (20 वर्ष बाद) **चौथा सप्तक** प्रकाशित हुआ। इसके भी **सात कवि** हैं—अवधेश कुमार, नन्दकिशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम वर्मा, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती और राजेन्द्र किशोर।

सन् 1943 से 1950 ई० तक की कविता के लिए प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया। इसके बाद की कविता को 'नई कविता' की संज्ञा दी गई। सन् 1954 ई० में **डॉ० जगदीश गुप्त** ने 'नई कविता' के नाम से प्रयोगवादी कविताओं का अर्द्धवार्षिक संग्रह प्रकाशित किया। इसी समय से प्रयोगवादी कविता को नई कविता के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा।

प्रयोगवाद के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ—प्रयोगवादी काव्य के प्रवर्त्तक अज्ञेय हैं। इनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं—'हरी घास पर क्षण भर', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्' आदि। इनके अतिरिक्त तीनों सप्तकों के कवि, जिनमें **भवानीप्रसाद मिश्रकृत** 'गीतफरोश'; **धर्मवीर भारतीकृत** 'ठण्डा लोहा', 'सात गीत वर्ष', 'अन्धा युग' आदि; **गिरिजाकुमार माथुरकृत** 'मंजीर', 'धूप के धान', 'नाश और निर्माण' आदि; **मुक्तिबोधकृत** 'चाँद का मुँह टेढ़ा'; **नरेश मेहताकृत** 'संशय की एक रात', 'बन पाखी सुनो' **जगदीश गुप्तकृत** 'नाव के पाँव, 'शब्द देश' और 'हिमविद्ध' आदि प्रमुख हैं।

प्र.8. साठोत्तरी या समकालीन हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर साठोत्तरी कविता की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. साठोत्तरी कविता में असन्तोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर अत्यधिक स्पष्ट रूप में उभरा है। यह स्वर कहीं व्यंग्य रूप में है तो कहीं खुले रूप में है।
2. समकालीन कविता रोमानी छायावादी संस्कारों से पूर्ण रूप से मुक्त है।
3. समकालीन कविता समाज की मान्यताओं, परम्पराओं के मोह से परे है।
4. समकालीन कविता जिन अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देती है वे जीवन की निर्भय वास्तविकताओं से मन में उभरती हैं।
5. जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन परिवेश में अभिव्यक्त किया गया है।
6. इस कविता में जीवन से सीधा साक्षात्कार है। उसमें जीवन की खीझ, असन्तोष, निराशा, कुण्ठा, कड़वाहट के स्वर अधिक हैं।
7. समकालीन कविता साक्षात्कृत परिवेश के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रस्तुत करती है।
8. भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता, विसंगति, आक्रोश, विडम्बना की पूर्ण अभिव्यक्ति समकालीन काव्य में हुई है।
9. मानव की स्वार्थपरता, अधिकार लोलुपता, भ्रष्टाचारिता को समकालीन कविता का विषय बनाया गया है।
10. समकालीन कविता में राजनीतिक सन्दर्भों से साक्षात्कार किया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. आधुनिककालीन काव्य के नामकरण पर प्रकाश डालिए तथा इसकी सामान्य प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

उत्तर

नामकरण एवं प्रवृत्तियाँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास के चतुर्थ कालखण्ड को गद्य की प्रमुखता के कारण गद्यकाल नाम दिया है और इसकी समय सीमा संवत् 1900 वि० से 1980 वि० अर्थात् सन् 1843 ई० से 1923 ई० स्वीकार की है। आधुनिक काल के लिए जो विभिन्न नाम दिए गए हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. गद्य काल—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. वर्तमान काल—मिश्रबन्धु
3. आधुनिक काल—डॉ० रामकुमार वर्मा
4. आधुनिक काल—डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त

आचार्य शुक्ल ने इस काल का नाम गद्यकाल इसलिए रखा, क्योंकि इस काल में गद्य की प्रधानता रही है तथापि गद्यकाल कहने से इस काल का प्रचुर परिमाण में लिखा गया पद्य साहित्य उपेक्षित-सा हो जाता है, अत: इस काल को आधुनिक काल कहना अधिक उपयुक्त है। इस नामकरण में गद्य और पद्य दोनों प्रवृत्तियों का समावेश तो हो ही जाता है, साथ ही यह नाम यह भी बताता है कि इस काल की प्रवृत्तियाँ पुरानी परम्परा से हटकर नवीन एवं आधुनिक हो गई हैं। निश्चय ही आधुनिक युगबोध ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जनजीवन के निकट ला दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का उदय मोटे तौर पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1900 वि० (सन् 1843 ई०) से माना है। प्रत्येक काल के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का योगदान रहता है। सन् 1857 में हुए भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने देश में एक नई चेतना को जन्म दिया। भले ही इस 'स्वतन्त्रता संग्राम' को

अंग्रेजों ने 'विद्रोह' कहकर कुचल दिया, किन्तु इससे देश में नवचेतना जाग्रत हुई। अंग्रेज सरकार के दमनात्मक रवैये ने देश की मनीषा को झकझोर दिया और कवियों को यह आवश्यकता अनुभव होने लगी कि वे देश की जनता को अंग्रेजी शासन की अच्छाई-बुराई के बारे में बताएँ। भारतेन्दु जी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा—

अंग्रेज राज सुख साज सज सब भारी। पै धन दिवस चलि जात यहै अति ख्वारी।।

कांग्रेस पार्टी की स्थापना, गांधी जी का भारतीय राजनीति में पर्दापण एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतीय जनता द्वारा दिए गए विविध संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में ही आधुनिक काल के साहित्य को देखा-परखा जाना चाहिए।

अंग्रेजों ने 1849 ई० में सिक्खों को पराजित किया तथा 1856 ई० में अवध को अपने अधिकार में ले लिया। उनकी नीतियों से असन्तुष्ट होकर देशी राजाओं ने 1857 ई० में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। जिसे भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कहा गया। परिणामस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी समाप्त कर दी गई और भारत अंग्रेजों का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया जिससे लोगों को लगा कि अंग्रेज हमारे हित के बारे में सोच रहे हैं। भारतेन्दु युग के कवियों ने इसी कारण राजभक्ति एवं देशहित का मिला-जुला रूप प्रस्तुत किया। भारतेन्दु भी यह कहने को बाध्य हुए कि अंग्रेजों के राज में सुख के साज हैं, किन्तु भारत का धन विदेशों में जा रहा है। इतना तो अवश्य हुआ कि साहित्य मानव के सुख-दुख से जुड़ा जिसका अभाव रीतिकाल में था। मुगलों एवं अंग्रेजों में एक मौलिक अन्तर था। मुस्लिम शासक सामन्ती व्यवस्था के पक्षधर थे; जबकि अंग्रेज विशुद्ध पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक थे। वे व्यापारी पहले थे, शासक बाद में। उनकी नीतियाँ भी इसी प्राथमिकता को ध्यान में रखकर बनाई गईं।

चार्ल्स मेटकॉफ के अनुसार, भारतीय गाँव छोटे-छोटे गणतन्त्र थे। उनकी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जाती थीं, बाहरी दुनिया से उनका कोई सम्बन्ध ही न था। हर गाँव में लुहार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, धोबी, तेली आदि सेवक जातियाँ थीं। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का पेशा नहीं कर सकता था। भारत के नगर तीन प्रकार के थे—राजनीतिक महत्त्व के नगर, धार्मिक महत्त्व के नगर और व्यापारिक नगर। नगरों में रत्नजटित आभूषणों, सूती-रेशमी वस्त्र, बनने वाली वस्तुओं—हाथी दाँत की मीनाकारी आदि से ग्रामीण जनता को कुछ लेना-देना न था। राजा, सामन्त, श्रेष्ठियों में इन वस्तुओं की खपत होती थी। गाँव का कुटीर उद्योग अलग ढंग का था जो ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। अंग्रेज व्यापारियों ने भारत को अपना बाजार बनाने के लिए यहाँ के उद्योग-धन्धों एवं कुटीर उद्योगों को चौपट कर दिया। गांधीजी का 'चरखा आन्दोलन' बहुत कुछ ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं कुटीर उद्योग को पुनर्स्थापित करने का एक प्रयास था।

लॉर्ड कार्नवालिस ने भारत के पूर्वी प्रान्तों-बंगाल, बिहार और उड़ीसा (ओडिशा) में जमींदारी प्रथा प्रारम्भ की जिसे बाद में बम्बई (मुम्बई), उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में भी लागू किया गया। सन् 1820 में टॉमस रो ने जमीन को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बदल दिया, जिससे जमींदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय-विक्रय कर सकते थे। खेत व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गए थे। अत: खेतों का व्यवसायीकरण होना स्वाभाविक था। किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। वे सरकारी मालगुजारी अदा करने तथा ऋण चुकाने की चिन्ताओं से कभी मुक्त नहीं हो पाते थे। परिणामत: महाजनी चंगुल में फँसते जा रहे थे। नई अर्थव्यवस्था ने पारस्परिक सम्बन्धों को जटिल बना दिया। पंचायतों का स्थान अब कचहरियों ने ले लिया। गाँवों की जड़ता टूटी, जाति प्रथा के बन्धन एक सीमा तक शिथिल हुए, राष्ट्रीयता के भाव जाग्रत हुए। नए आर्थिक वर्गों का उदय हुआ। पूँजीपति एवं श्रमिक के बीच में एक नए मध्य वर्ग का उदय हुआ। आधुनिक काल का साहित्य उनकी इस दुर्दशा का चित्रण करने की ओर प्रवृत्त हुआ। प्रेमचन्द का 'गोदान' इसी पृष्ठभूमि में रचा गया है।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारत की शिक्षा व्यवस्था, यातायात व्यवस्था, अर्थनीति, शासन व्यवस्था में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए। भारतीय पुनर्जागरण के लिए 'प्रेस' की स्वतन्त्रता वरदान सिद्ध हुई। पुनर्जागरण के लिए कार्यरत सामाजिक नेताओं ने इसका भरपूर लाभ उठाया। भारतेन्दु के समय में प्राय: सभी प्रमुख साहित्यकार किसी-न-किसी साहित्यिक पत्र-पत्रिका से जुड़े थे। वे इनमें अपनी साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ सामयिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालने वाले लेख लिखते थे। जनतान्त्रिक मूल्यों का पोषण, सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार, राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 'मुद्रण' ने साहित्यकार और समाज को एक-दूसरे से वैचारिक स्तर पर जुड़ने का माध्यम प्रदान किया।

प्र.2. आधुनिककाल को कितने उपविभागों में विभाजित किया गया है? इस वर्गीकरण को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों के विषय में संक्षेप में बताइए।

उत्तर

आधुनिककाल का वर्गीकरण

आधुनिककाल को कई उपविभागों में विभक्त किया गया है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार ये उपविभाग निम्नवत हैं—

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग) 1857 ई० 1900 ई०

2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग) 1900 ई० 1918 ई०
3. छायावादी युग 1918 ई० 1938 ई०
4. छायावादोत्तर काल
   (अ) प्रगति प्रयोग काल (1938-1953) (ब) नवलेखन काल (1953)

उक्त वर्गीकरण काव्य की दृष्टि से है। गद्य में हुए विकास को अलग ढंग से समझा जा सकता है।

भारतेन्दु युग

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि वह नामकरण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमामण्डित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु जी का रचना काल सन् 1850 ई० से 1885 ई० तक रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती पत्रिका' का सम्पादन 1903 ई० में सँभाला था। सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई० से प्रारम्भ हुआ था। 1850 ई० से 1900 ई० तक की अवधि को 'भारतेन्दु युग' कहना समीचीन है।

भारतेन्दु जी सही अर्थों में हिन्दी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पण्डिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य विन्यास में भी व्याप्त था तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध एवं मधुर होते हुए भी आगरा की बोली का पुट लिए हुए थी। भारतेन्दु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथासम्भव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार अपितु पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेन्दु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाज की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेन्दु जी की साहित्यिक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—**''हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चन्द्र हुए।''** भारतेन्दु जी मँजी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाए; जो हिन्दी भाषा जनता की बोली थी। अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था वह बहुत कुछ सुलझ गया।

भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकार

भारतेन्दु जी ने यद्यपि 35 वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की किन्तु इस अल्पकाल में ही लेखकों का एक अच्छा-खासा मण्डल तैयार हो गया था। जिसमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहन सिंह और बालकृष्ण भट्ट के नाम लिए जा सकते हैं।

भारतेन्दु जी की शैली के दो रूप हैं—1. भावावेश शैली, 2. तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गए वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल एवं बोलचाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अन्तर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे, अत: उनकी भाषा में स्वच्छन्दता एवं बोलचाल की चपलता एवं भावभंगिमा दिखाई पड़ती है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के लेखों में गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है।

पं० बालकृष्ण भट्ट की भाषा वैसी है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है।

ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा-शैली शब्द-शोधन और आनुप्रासिकता से युक्त है।

भारतेन्दु जी के समकालीन सभी लेखकों में एक सामान्य गुण है, और वह है सजीवता और जिन्दादिली। सभी लेखकों में हास्य-विनोद का पुट है। भारतीय संस्कृति का उद्घोष इन सब लेखकों की कृतियों में है।

भारतेन्दु युग में गद्य का प्रारम्भ भी नाटकों से हुआ। भारतेन्दु जी ने बंगला के नाटक 'विद्यासुन्दर' का हिन्दी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उद्योग भी पहले पहल भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने किया। यही नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। पं० शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत 'जानकी मंगल' नाटक में भारतेन्दु जी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने काशी नरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए मूँछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी।

इस काल में अनेक निबन्धकार भी हुए, जिन्होंने विविध विषयों पर निबन्ध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व-त्योहार, जीवन-चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबन्ध लिखे गए।

बंगभाषा के अनुकरण पर हिन्दी में उपन्यासों की ओर झुकाव बढ़ रहा था। हिन्दी का पहला उपन्यास 'लाला श्रीनिवास दास' द्वारा लिखा गया। जिसका नाम है 'परीक्षा गुरु'। इसके उपरान्त राधाकृष्णदास ने 'निस्सहाय हिन्दू' और पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सो अजान एक सुजान' नामक उपन्यासों की रचना की। इस काल में उपन्यासों के अनुवाद की परम्परा भी चल रही थी। पं० प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बंगला उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में किए। यद्यपि इन अनुदित उपन्यासों की भाषा परिष्कृत नहीं थी तथापि हिन्दी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।

प्र.3. भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रवृत्तियों पर विस्तृत लेख लिखिए।

उत्तर

भारतेन्दुयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अपने कर्त्तव्य का भली-भाँति निर्वाह करने हेतु जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पहलुओं का उद्घाटन अपनी कविता में किया। भाव, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से परिष्कार की प्रवृत्ति इस काल के साहित्यकारों में विद्यमान थी। उनकी काव्य प्रवृत्तियों का उद्घाटन निम्नांकित शीर्षकों में किया जा सकता है—

1. **राष्ट्रीयता की भावना**—विदेशी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने का प्रयास युगीन विधियों ने किया है। राधाचरण गोस्वामी की कविता 'उत्तम भारत देस', राधाकृष्णदास की कविता 'भारत बारहमासा' और बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमपन' की कविता 'धन्य भारत सब रतननि की उपजावनि' इसी भावना से ओतप्रोत हैं। भारतेन्दु जी ने निम्न पंक्तियों में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण का चित्र अंकित किया है—

   भीतर-भीतर सब रस चूसे, हँसि-हँसि के तन मन धन मूसे।
   जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।

2. **समाज की दुर्दशा का चित्रण**—रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आँखें बन्द कर ली थीं, किन्तु भारतेन्दुयुगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई है। आर्यसमाज एवं ब्रह्मसमाज जैसे—सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से इस काल में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ और विधवा विवाह, नारी शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाली कविताएँ लिखी गईं। सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछूत को काव्य विषय बनाया गया और सामाजिक कुरीतियों, छल-कपट एवं पाखण्ड का खण्डन करने में नए कवियों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया। भारतेन्दु जी ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया—

   रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाई। हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

   बाल विधवाओं की दुर्दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा—

   'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि बिपति बाल विधवन की।

   राधाचरण गोस्वामी ने भी भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है—

   मैं हाय-हाय दे धाय पुकारों रोई। भारत की डूबी नाव उबारों कोई॥

3. **शृंगारिकता**—भारतेन्दु युग के कवियों ने शृंगार की मर्यादित अभिव्यक्ति की है। रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन एवं नायिका भेद का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही है, साथ ही कृष्ण को नायक मानकर तथा राधा को नायिका मानकर उनकी प्रेमलीलाओं का चित्रण भी किया है। भारतेन्दु जी की रचनाओं—प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वयसन्धि को प्राप्त नायिका का सुन्दर चित्र दृष्टव्य है—

   सिसुताई अजु न गई तन तें, तऊ जीवन जोति बटोरें लगीं।
   सुनि के चरचा हरिचन्द की कानन, कूक दै भौंह भरोरें लगीं।
   बचि सासु जेठानिन सों पियतें, दुरि घूँघट में दृग जोरें जगीं।
   दुलही उलही सब अंगन लै, दिन द्वैवे ते पीयूष निचोरें लगीं॥

   हालाँकि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास जैसे कवियों ने शृंगार को अपना काव्य विषय नहीं बनाया।

4. **भक्ति भावना**—भारतेन्दु जी को भक्ति भावना पैतृक विरासत में मिली। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में प्रमुख हैं—भक्ति सर्वस्व, वैशाख माहात्म्य एवं कार्तिक स्नान। भारतेन्दु जी पुष्टिमार्गीय भक्त थे और बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इसीलिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में समर्थ हो सके—

"मेरे तो साधन एक ही हैं, जग नन्दलला वृषभानु दुलारी।"

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास के काव्य में भक्तिभावना का वह स्वरूप दिखाई पड़ता है, जो निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में विद्यमान था। उन्होंने संसार की नश्वरता, माया-मोह के बन्धन और विषय-वासना की निस्सारता आदि का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है; यथा—

जो विषया सन्तन तजी, ताहि मूढ़ लपटात।
जो नर डारत वमन करि, स्वान स्वाद सौं खात॥

ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए भारतेन्दु जी ने अपनी दीनता का उल्लेख किया है और उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना की है—

उधारी दीनबन्धु महाराज। जैसे हैं तैसे तुम्हारे ही नहीं और सौं काज॥

5. **प्रकृति चित्रण**—भारतेन्दुयुगीन कवियों ने प्रकृति का स्वच्छन्द रूप में चित्रण किया, यद्यपि कहीं-कहीं परम्परा निर्वाह करते भी प्रकृति निरूपण किया गया है। एक ओर तो वसन्त, वर्षा आदि ऋतुओं के मनोहारी चित्रांकित किए तो दूसरी ओर गंगा, यमुना, चाँदनी आदि का सुन्दर चित्रण किया है। भारतेन्दु कृत 'वसन्त होली' में 'वसन्त' का वर्णन है तथा चन्द्रावली नाटिका में 'यमुना' वर्णन किया गया है। प्रकृति के माध्यम से नायक-नायिका की शृंगार चेष्टाओं का निरूपण भी किया गया है। भारतेन्दु जी द्वारा किया गया यमुना वर्णन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है; यथा—

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए। झुके कूल सौं जल परसन हित मनहुँ सुहाए।

6. **हास्य-व्यंग्य की प्रधानता**—इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके माध्यम से अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट की। भारतेन्दु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया है। 'अंधेर नगरी' में चूरन वाला कहता है—

चूरन साहब लोग जो खाता। सारा 'हिन्द' हजम कर जाता।

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के सम्बन्ध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए—

मुँह जब लागे तब नहिं छूटे, जाति मान धन सब कुछ लूटे।
पागल करि मोहि करे खराब, क्यों सखि साजन नहीं सराब॥

7. **समस्या पूर्ति**—भारतेन्दु काल के कवि समस्या पूर्ति के रूप में भी काव्य रचना करते थे। कोई एक पंक्ति या पद्यांश 'समस्या' के रूप में दिया जाता था और कविजन विलक्षण कल्पनाएँ करते हुए उस समस्या की पूर्ति हेतु काव्य रचना करते थे। समस्या पूर्ति का प्रमुख नियम यह था कि दी गई पंक्ति छन्द या कविता के अन्त में ही आनी चाहिए। समस्या पूर्ति की यह परम्परा कवियों की प्रतिभा को परखने एवं उनके रचना कौशल की थाह पाने की कसौटी समझी जाती थी। समस्या पूर्ति के लिए जो विषय दिए जाते थे, वे प्राय: शृंगार से सम्बन्धित होते थे। कानुपर की एक संस्था 'रसिक समाज' में एक बार समस्या पूर्ति के लिए एक पंक्ति दी गई—"पपीहा जब पूछि हैं पीव कहाँ" इस समस्या की पूर्ति पण्डित प्रताप नारायण मिश्र ने निम्न प्रकार की—

बन बैठि है मान की मूरति सी, मुख खोलत बोले न नाहीं न हाँ।
तुम ही मनुहारि के हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ।
बरखा है प्रतापजू धीर धरौ, अबलौ मन की समझायौ जहाँ।
वह ब्यारि तब बदलेगी कछू, पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ॥

8. **ब्रजभाषा का प्रयोग**—भारतेन्दु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में प्रारम्भ हो गया था। इन कवियों की भाषा पद्माकर एवं घनानन्द जैसी परिष्कृत भाषा तो नहीं है, किन्तु उसमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। पण्डित प्रतापनारायण की ब्रजभाषा में कन्नौजी का प्रभाव तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग

साफ झलकता है। भारतेन्दु जी ने यद्यपि साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया तथापि उनकी रचना 'फूलों का गुच्छा' में उर्दू के पर्याप्त शब्द हैं। इस काल के कुछ कवियों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ लिखीं, पर वे कला एवं भाव की दृष्टि से उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं।

भारतेन्दु युग में मुक्तक काव्य की प्रधानता रही। सामयिक विषयों पर उपदेशपरक फुटकर पद्य लिखे गए जिनमें भाव की गहनता एवं कला का उत्कर्ष दिखाई नहीं पड़ता। कुछ रचनाएँ तो तुकबन्दियाँ मात्र प्रतीत होती हैं। अधिकांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबन्ध काव्य भी लिखे गए। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुण्डलियाँ, रोला, सवैया, हरिगीतिका कवित्त जैसे परम्परित छन्दों में काव्य रचना की।

प्र.4. द्विवेदी युग के नामकरण को संक्षेप में लिखिए तथा इस युग की काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए। साथ ही इसके महत्त्व का भी संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

उत्तर

द्विवेदी युग का नामकरण

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के गरिमामण्डित व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में हिन्दी जगत को समृद्ध किया और हिन्दी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती पत्रिका के सम्पादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी, काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिसमें गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने 'कवि कर्तव्य' जैसे निबन्धों द्वारा कवियों को उनके कर्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा-निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छन्द योजना आदि अनेक दृष्टियों में काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विराम चिह्नों के प्रयोग द्वारा हिन्दी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिन्तक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिन्दी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए भारतेन्दुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिन्दी कविता को मुक्त किया तो दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह उल्लेखनीय है।

द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ

द्विवेदीयुग की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

1. **राष्ट्रीयता की भावना देशप्रेम**—अतीत गौरव, स्वदेशाभिमान की अभिव्यक्ति हुई है।
2. **इतिवृत्तात्मकता**—प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति है। खण्डकाव्य एवं महाकाव्य अधिक लिखे गए, मुक्तक रचना की प्रवृत्ति कम है। प्रियप्रवास एवं साकेत इस युग के प्रमुख महाकाव्य हैं।
3. **नैतिकता एवं आदर्शवाद**—इस युग में नैतिकता एवं आदर्शवाद को महत्त्व दिया गया है तथा शृंगार भावना का विरोध हुआ। नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया। द्विवेदी युग का काव्य आदर्शवाद से अनुप्राणित है।
4. **प्रकृति चित्रण**—श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों ने प्रकृति के रम्य रूप का चित्रण अपनी रचनाओं में किया।
5. **सामाजिक समस्याओं का चित्रण**—छुआछूत, दहेज प्रथा, बाल विवाह, नारी की दयनीय स्थिति को काव्य का विषय बनाया गया।
6. **अनूदित रचनाएँ**—इस काल में मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अनूदित रचनाएँ भी लिखी गईं। विशेषत: संस्कृत, बंगला एवं अंग्रेजी की श्रेष्ठ रचनाओं के अनुवाद कवियों ने प्रस्तुत किए।
7. **काव्य रूपों की विविधता**—एक ओर तो महाकाव्य लिखे गए, दूसरी ओर खण्डकाव्य लिखकर प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति का परिचय दिया गया। प्रगीत मुक्तकों का प्रारम्भ भी इस काल में हो गया था।
8. **काव्य भाषा** के रूप में खड़ी बोली का प्रयोग द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग ब्रजभाषा के स्थान पर भाषा के रूप में किया गया।
9. **छन्दों की विविधता**—काव्य में प्राचीन छन्दों—दोहा, चौपाई, रोला, सवैया, कुण्डलिया—के साथ-साथ संस्कृत वर्णवृत्तों, हरिगीतिका, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, शार्दूल विक्रीड़ित, तांटक आदि का प्रयोग भी किया गया।

द्विवेदी युग का महत्त्व

हिन्दी कविता को प्राचीन युग की रूढ़िबद्धता से पृथक करने में द्विवेदी के कवियों का विशेष योगदान है। काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी को प्रतिष्ठित किया गया तथा गद्य क्षेत्र में भाषा का तिरस्कार कर उसे व्याकरण सम्मत बनाया गया। हिन्दी कविता को शृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति और रूढ़िवादिता से स्वच्छन्दता की ओर ले जाने में इन कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। द्विवेदी युग की महती उपलब्धि है—मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' महाकाव्य और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरऔध' कृत 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य। ब्रजभाषा के सुकवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का 'उद्धव शतक' भी इस युग की एक महत्त्वपूर्ण काव्य कृति मानी जा सकती है।

प्र.5. हिन्दी कविता में प्रगतिवाद को संक्षेप में स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

हिन्दी कविता में प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सन् 1936 ई० में हुआ। 1936 ई० से 1943 ई० की कविता प्रगतिवादी कविता है। हिन्दी साहित्य के वे कवि जिन्होंने साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर काव्य रचना की, प्रगतिवादी कवि कहलाए। इनमें प्रमुख हैं—केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ० रांगेय राघव और त्रिलोचन शास्त्री। इनके अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, रामधारी सिंह 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा आदि की रचनाओं में भी प्रगतिवादी तत्व उपलब्ध होते हैं।

प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

1. **शोषितों की दीनता का चित्रण**—प्रगतिवादी कविता का मूल केन्द्र शोषण की चक्की में पिसने वाले किसानों, मजदूरों एवं पीड़ितों की दशा का प्रगतिवादी कवि ने सहानुभूतिपूर्ण कारुणिक चित्रण किया है। प्रगतिवादी कवि ने शोषित और शोषक का तुलनात्मक चित्र उपस्थित करके सामाजिक विषमता का उद्घाटन किया है। दिनकर के शब्दों में—

   श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
   माँ की छाती से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।

2. **शोषक वर्ग के प्रति घृणा**—प्रगतिवादी काव्य में शोषक वर्ग स्वार्थी, अन्यायी, निर्दयी एवं कपटी कहा गया है। शोषक वर्ग के अन्तर्गत व्यापारियों, जमींदारों, उद्योगपतियों को लिया गया है। ये लोग स्वार्थ सिद्धि के लिए पूँजीवादी व्यवस्था बनाए रखना चाहते हैं और जब तक पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी तब तक शोषण का अन्त असम्भव है। प्रगतिवादी इस व्यवस्था को भंग कर देना चाहता है और कह उठता है—

   हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े, शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।

3. **धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था**—प्रगतिवादी कवि धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता। वह इन्हें शोषण का हथियार मानता है। दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' में लिखा है—

   भाग्यवाद आवरण पाप और शस्त्र शोषण का, जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का॥

   इसीलिए प्रगतिवादी कवि ने धार्मिक विश्वासों एवं रूढ़ियों को तोड़कर विप्लव के गीत गाए हैं। वह चाहता है कि क्रान्ति की चिनगारी उन रूढ़ियों को जलाकर राख कर दे—

   कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।
   एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए॥

4. **क्रान्ति की भावना**—सामाजिक समता के लिए मार्क्सवाद में क्रान्ति का समर्थन किया गया है। प्रगतिवादी कवियों ने भी प्राचीन परम्पराओं का समूल विनाश क्रान्ति के द्वारा ही सम्भव माना है, वह चाहता है कि पूँजीपतियों के गगनचुम्बी महल भूमिसात हो जाएँ और सबको न्याय मिल सके, प्रगतिवादी कवि ने हिंसा को उचित ठहराया है—

   ''काटो-काटो काटो कर लो, साइत और कुसाइत क्या है।
   मारो-मारो मारो हँसिया, हिंसा और अहिंसा क्या है?''

5. **नारी चित्रण**—प्रगतिवादी कवि ने नारी का यथार्थ चित्रण किया है। वह न तो कल्पना लोक की परी है और न सौन्दर्य एवं उदात्त वृत्तियों की पराकाष्ठा, अपितु वह इसी लोक की मानवी है, जो रात-दिन पुरुष के साथ आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को झेलती है। निराला ने पत्थर तोड़ती हुई नारी का चित्रण किया है—

''वह तौड़ती पत्थर, देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।
गुरु हथौड़ हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मलिका अट्टालिका प्राकार॥''

6. **सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण**—प्रगतिवादी कवियों की एक प्रमुख विशेषता, यथार्थ के धारातल पर उतरकर काव्य की रचना करना है। उनकी रचनाओं में कल्पना रंचमात्र भी नहीं है। प्रगतिवादी कवियों ने काव्य में निम्न वर्ग का चित्रण किया है। जीवन में व्याप्त, विषाद, भूख, गरीबी, बेरोजगारी और कठिनाइयों का यथार्थ चित्रण प्रगतिवादी साहित्य में ही उपलब्ध होता है।
7. **शैलीगत विशेषताएँ**—प्रगतिवादी कवि की भाषा सरल है। शैली अलंकार विहीन है और मुक्त छन्द का प्रयोग भी इन्होंने किया है। उसमें कहीं बनावट नहीं। वह आम आदमी की भाषा है। पन्त जी लिखते हैं—

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार॥

यद्यपि प्रगतिवादी काव्य में सामाजिक विषमता को उजागर करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया तथापि गांधी और बुद्ध के देश में हिंसा और क्रान्ति की बात किसी के गले से नीचे नहीं उतरती; इसीलिए प्रगतिवादी काव्य की आयु कम रही। फिर भी इन कवियों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

प्र.6. प्रयोगवाद क्या है? प्रयोगवादी कवियों द्वारा प्रगतिवादी कवियों पर क्या आरोप लगाए गए तथा इनका क्या निष्कर्ष निकला? प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

उत्तर

प्रयोगवाद

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का जन्म छायावाद की अतिशय अशरीरी कल्पना, सूक्ष्मतावादी सौन्दर्य-बोध और एकांगिता के विरोध में हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रयोगवाद का आरम्भ अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले काव्य संग्रह 'तार सप्तक' से हुआ। 'तार सप्तक' में विविध विचारधाराओं के कवि एक साथ एकत्रित हुए जिनमें अज्ञेय को छोड़कर ज्यादातर कवि प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। किन्तु प्रयोगवाद नाम इस काव्य-प्रवृत्ति के विरोधियों द्वारा दिया गया है।

प्रयोगवाद के कवियों के प्रगतिवाद पर आरोप

प्रयोगवादी कवियों द्वारा प्रगतिवाद पर निम्न दो आरोप लगाए गए—

1. प्रगतिवाद, साहित्य का संकीर्णतावादी आन्दोलन है जिसमें रचनाकार की स्वतन्त्रता का अपहरण किया जाता है और प्रगतिवाद, विषय-वस्तु पर अत्यधिक बल देकर विचारधारा की नारेबाजी का फॉर्मूला अपनाता है।
2. इसमें साहित्य की कलात्मकता और रूप-विधान की भयंकर उपेक्षा होती है। अज्ञेय ने 'प्रगतिवाद', से असन्तुष्ट होकर 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य सिद्धान्त' की स्थापना का अभियान प्रयोगवाद में चलाया। प्रगतिशील साहित्य में साहित्येतर मूल्यों को स्थान मिला था—किन्तु 'प्रयोगवाद' साहित्यिक मूल्यों को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ा। फलतः 'प्रयोगवाद' के अतिवाद से बचने के चक्कर में 'प्रयोगवाद' स्वयं अपने ही अन्तर्विरोधों-अतिवादों का शिकार होकर रूपवाद (फॉर्मलिज्म) के जाल में फँसता गया जिससे उसे मुक्ति नई कविता आन्दोलन में मिली।

प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख कृतियाँ

प्रयोगवादी अथवा नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

1. **वैयक्तिकता एवं अहं की प्रधानता**—प्रयोगवादी कविता व्यक्ति-केन्द्रित है। यह व्यक्ति छायावादी व्यक्ति के समान वायवी और रहस्यात्मक नहीं है, वरन् जटिल, कुण्ठित और अहंभाव से युक्त है। प्रयोगवादी कवि आत्म-विज्ञापन का समर्थक है।

प्रयोगवादी कवियों की वैयक्तिकता कहीं आत्मरति और कहीं अहंभाव के रूप में मुखर हुई है। इन कवियों ने व्यक्ति की इकाई और विशिष्टता ऐसे ही मानी, जैसे नदी की धारा में नदी के द्वीप—

द्वीप हैं हम, यह नहीं है शाप
यह अपनी नियति है?

2. **अतिनग्न यथार्थवाद**—इन कवियों ने अपने परिवेश, दूषित मनोवृत्तियों, दमित वासनाओं और कुण्ठाओं का यथार्थ चित्रण किया है, जो कहीं-कहीं अश्लीलता और नग्नता तक पहुँच गया है। यद्यपि कामवासना जीवन का अंग है, परन्तु जब वह साधन न रहकर साध्य बन जाती है, तब भयंकर रूप धारण कर लेती है। प्रयोगवादी कवियों ने ऐसे ही चित्र प्रस्तुत किए हैं।
3. **अतिबौद्धिकता**—प्रयोगवादी कविता में भावुकता का स्थान अतिबौद्धिकता ने ले लिया। **डॉ० शिवकुमार शर्मा** लिखते हैं—"नया कवि पाठक के हृदय को तरंगित तथा उद्वेलित न कर उसकी बुद्धि को अपनी पहेली बुझौवल के चक्रव्यूह में आबद्ध करके उसे परेशान करना चाहता है।" अतिबौद्धिकता के कारण इस काव्य में नीरसता, शुष्कता तथा दुरूहता का आभास होता है; यथा—

चलो उठैं अब, अब तक हम थे, बन्धु सैर को आए।
और रहे बैठे तो लोग कहेंगे धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं।

धर्मवीर भारती का कथन है—"प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्नचिह्न लगा है। इसी प्रश्नचिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं।"

4. **निराशा की प्रधानता**—प्रयोगवादी काव्य में निराशा की प्रधानता दृष्टिगत होती है। इन कवियों को समस्त संसार निराशामय दिखाई देता है। इसलिए इन्हें जीवन में सुख और आशा की सम्भावना नहीं दिखाई देती। इन कवियों की दृष्टि अतीत और भविष्य से हटकर वर्तमान पर ही टिकी रही। इनका दृष्टिकोण संसार के प्रति क्षणवादी और निराशावादी रहा है; यथा—

आओ हम उस अतीत को भूलें,
और आज की अपनी रग-रग के अन्तर को छू लें।
छू लें इसी क्षण,
क्योंकि कल के वे नहीं रहे,
क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।

5. **उपमानों की नवीनता**—प्रयोगवादी कवियों ने नवीन उपमानों का प्रयोग किया है। रूपकों के विधान और उपमानों के प्रयोग में ये बहुत सफल रहे हैं; यथा—

प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया।
बिजली के स्टोव-सी जो एकदम सुर्ख हो जाती है।
मेरे सपने इस तरह टूट गए जैसे भुना हुआ पापड़।

6. **भाषा एवं छन्द-विधान**—प्रयोगवादी कवियों ने स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति के कारण कहीं-कहीं भाषा के व्याकरणसम्मत रूप की भी अवहेलना की है; यथा—

शक्ति दो बल दो हे पिता।
जब दुःख के भार से मन थकने आय
पैरों में कुली की-सी लपकती चाल छटपटाय।

यहाँ 'थकने आय' व्याकरणसम्मत नहीं है।

छन्द की दृष्टि से प्रयोगवादी कवियों ने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। तात्पर्य यह है कि छन्द के क्षेत्र में इन्होंने किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं किया। कहीं-कहीं लोकगीतों के आधार पर गीतों की रचना भी की गई है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कविता में नए प्रयोगों के नाम पर बहुत-सी निरर्थक रचनाओं का सृजन हुआ है, साथ ही उसमें बौद्धिकता का प्राधान्य है, जिससे साधारठीकरण में बाधा उपस्थित होती है। इसमें नूतनता का सर्वग्राही मोह स्पष्ट परिलक्षित होता है तथा अतियथार्थ के कारण इसमें यत्र-तत्र अश्लीलता के भी दर्शन होते हैं, परन्तु इन सबका यह अर्थ नहीं कि प्रयोगवादी कविता का हिन्दी-साहित्य में कुछ भी महत्त्व नहीं। हिन्दी कविता में नवीनता का श्रेय प्रयोगवादी कविता को ही है।

प्र.7. नई कविता एवं समकालीन कविता का प्रादुर्भाव कब हुआ? इन दोनों के प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

नई कविता

'प्रयोगवाद' का विकास ही कालान्तर में 'नई कविता' (1953) के रूप में हुआ। **डॉ० शिवकुमार शर्मा** के अनुसार—"ये दोनों एक ही धारा के विकास की दो अवस्थाएँ हैं। सन् 1943 ई० तक कविता में जो नवीन प्रयोग हुए, नई कविता उन्हीं का परिणाम है। प्रयोगवाद उस काव्यधारा की आरम्भिक अवस्था है और नई कविता उसकी विकसित अवस्था।" वस्तुत: 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' में कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती। बहुत-से कवि जो पहले प्रयोगवादी रहे, बाद में नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर बन गए। इस प्रकार ये दोनों एक ही काव्यधारा के विकास की दो अवस्थाएँ हैं। सन् 1943 ई० से 1953 ई० तक की कविताओं में जो नवीन प्रयोग हुए, नई कविता उन्हीं का परिणाम है। निष्कर्ष रूप में 1943 से 1953 तक की कविता को प्रयोगवाद एवं 1953 के बाद की कविता को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है।

हिन्दी की नई कविता का कथ्य परम्परा से भिन्न है। नवीन विषयों की नवीन शैली में अभिव्यक्ति होने के कारण 'नवीनता' को इसकी प्रमुख विशेषता माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणिकता और मुक्त यथार्थवाद को भी नई कविता की विशेषताओं में समाविष्ट किया जाता है।

प्रमुख कवि और उनकी कृतियाँ

नई कविता के कुछ प्रमुख हस्ताक्षर हैं—**कुँवर नारायण, दुष्यन्त कुमार, अजित कुमार, प्रभाकर माचवे, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कीर्ति चौधरी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, विजयदेव नारायण साही, बालकृष्णराव** आदि। नई कविता के प्रचार-प्रसार का श्रेय कुछ पत्रिकाओं को भी दिया जा सकता है, जिनमें प्रमुख हैं—**'प्रतीक'** जो अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई तथा डॉ० जगदीश गुप्त के सम्पादन में सन् 1954 में प्रारम्भ **'नई कविता'** नामक पत्रिका। **निकष, पाटल, कल्पना, दृष्टिकोण** आदि वे पत्रिकाएँ हैं जिन्होंने नई कविता को बढ़ावा दिया है।

प्रयोगवादी एवं नई कविता की प्रमुख कृतियों में तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक के अतिरिक्त 'हरि घास पर क्षण भर' इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, इत्यलम (अज्ञेय); चाँद का मुँह टेढ़ा है (मुक्तिबोध), ठण्डा लोहा (धर्मवीर भारती), मन्जीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिला पंख चमकीले (गिरिजा कुमार माथुर); स्वप्न भंग, अनुक्षण (प्रभाकर माचवे); चक्रव्यूह (कुँवर नारायण), ओ अप्रस्तुत मन (भारत भूषण अग्रवाल), सूर्य का स्वागत (दुष्यन्त), बन पाँखी (नरेश मेहता) आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

समकालीन हिन्दी कविता

सन् 1960 के बाद कविता को अनेक नाम दिए गए जिनमें प्रमुख हैं—साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता, अकविता, अभिनव कविता, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता, अस्वीकृत कविता, अति कविता, सहज कविता, निर्दिशायामी कविता आदि। इन अनेक साइन बोर्डों का केवल एक ही अभिप्राय है कि साठोत्तरी कविता नई कविता से कुछ अलग और हटकर है।

प्रमुख कवि और उनकी कृतियाँ

समकालीन कवियों में से कुछ प्रमुख कवि हैं—विश्वनाथ तिवारी, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, दूधनाथ सिंह, 'धूमिल', लीलाधर जगूड़ी, वेणु गोपाल, मत्स्येन्द्र शुक्ल, विष्णु खरे, देवेन्द्र कुमार, श्याम विमल, विजय कुमार, परमानन्द श्रीवास्तव, आलोक धन्वा, अमरजीत, प्रताप सहगल, अरुण कमल, अनिल जोशी।

वर्तमान कविता भाव जगत से विच्छिन्न होकर एक विचार मात्र बन गई है। आवश्यकता इस बात की है उसे भाव से जोड़ा जाए। सन् 1975 से लेकर अब तक की कविता संख्यात्मक दृष्टि से अधिक समृद्ध है क्योंकि अनेक संकलन प्रकाश में आए हैं। यहाँ कुछ प्रमुख कवियों के संकलनों के नाम दिए जा रहे हैं, जो सन् 1975 के बाद प्रकाशित हुए हैं—

1. **अज्ञेय**—नदी की बाँक पर छाया, महावृक्ष नीचे।
2. **मुक्तिबोध**—भूरी-भूरी खाक धूल।
3. **नागार्जुन**—आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, रत्नगर्भ, पुरानी जूतियों का कोरस, तुमने कहा था, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, हजार-हजार बाहों वाली।
4. **शमशेर बहादुरसिंह**—चुका भी नहीं हूँ मैं, इतने पास अपने।

❑

UNIT-III

आदिकालीन कवि

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विद्यापति के नख-शिख वर्णन का सामान्य परिचय दीजिए।

उत्तर विद्यापति द्वारा किया गया नख-शिख वर्णन अद्वितीय है। उनके नख-शिख वर्णन की सर्वप्रमुख विशेषता है कि उन्होंने नायक तथा नायिका दोनों के नख-शिख वर्णन में एकसमान सफलता प्राप्त की है, जबकि अन्य कवियों ने प्राय: केवल नायिका का नख-शिख वर्णन किया है।

प्र.2. विद्यापति ने अपनी पदावली में प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण किन रूपों में किया है?

उत्तर प्रकृति-चित्रण चार रूपों में देखने को मिलता है—आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, सहचरी रूप में और उपदेशिका के रूप में। विद्यापति ने अपनी पदावली में प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन इन दो रूपों में ही विशिष्ट रूप से किया है। उन्होंने आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण के समय प्रकृति के मानवीकरण का सहारा लिया है।

प्र.3. ''विद्यापति ने राधा और कृष्ण के प्रेम का आधार उनके रूप-सौन्दर्य को बनाया है।'' कैसे?

उत्तर महाकवि विद्यापति द्वारा राधा और कृष्ण दोनों के प्रेम का आधार उनके रूप-सौन्दर्य को बनाया गया है। जहाँ कृष्ण का हृदय राधा के कुटिल कटाक्ष से बिंध गया है—

जहाँ-जहाँ कुटिल कटाख। ततहिं मदन-सर लाख।

वहीं राधा कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को देखकर उन पर मोहित हो जाती हैं—

ए सखि रंगिनि कहल निसान। हेरइत पुनि मोर हरल गेआन।

प्र.4. विद्यापति राधा के किस रूप की वन्दना करने के इच्छुक हैं? राधा की वन्दना के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर विद्यापति उस अपूर्व सुन्दरी राधा के चरणों को अपनी गोदी में रखकर उनकी दिन-रात वन्दना करना चाहते हैं, जिस रूप-सौन्दर्य को देखकर करोड़ों कामदेवों को अपने सौन्दर्य से तिरोहित करने वाले श्रीकृष्ण पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

प्र.5. वेदों में 'नाथ' शब्द का प्रयोग किस अर्थ में किया गया है?

उत्तर वेदों में 'नाथ' शब्द का प्रयोग 'रक्षक' या 'शरणदाता' के अर्थ में किया गया है। महाकाव्य 'महाभारत' में 'स्वामी' या 'पति' के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है। जैन एवं वैष्णव ग्रन्थों में इसका प्रयोग सबसे बड़े देवता के अर्थ में हुआ है। शैवमत के विकास के पश्चात् 'नाथ' शब्द 'शिव' के लिए प्रयोग होने लगा। नाथ सम्प्रदाय की व्याख्या के अनुसार 'ना' का अर्थ है-अनादिरूप तथा 'थ' का अर्थ है—स्थापित होना।

प्र.6. 'नाथ' शब्द का प्रयोग मुक्तिदाता के अर्थ में कैसे हुआ है?

उत्तर मुक्तिदाता के अर्थ में 'नाथ' शब्द का प्रयोग इस रूप में हुआ है—ना = नाथ ब्रह्म (जो मोक्ष प्रदान करता है) + थ = स्थापित करना (अज्ञान के सामर्थ्य को स्थापित करना) = नाथ = जो अज्ञान को दूर कर मोक्ष प्रदान करता है।

प्र.7. सिद्धों तथा नाथों की कितनी संख्या सर्वमान्य है?

उत्तर सिद्धों की संख्या 84 और नाथों की संख्या 9 सर्वमान्य है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के मतानुसार, अब भी लोग नवनाथ और चौरासी सिद्ध कहते सुने जाते हैं। इन नौ नाथों में आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ आदि प्रमुख हैं। इन सभी की ऐतिहासिकता के विषय में मतभेद है।

TOUCH 'n PASS

प्र.8. गोरखनाथ ने विभिन्न प्रचलित पन्थों को संगठित करके उन्हें कितनी शाखाओं में बाँटा?

उत्तर गोरखनाथ ने इन्हें निम्नलिखित बारह शाखाओं में बाँटा है—

1. सत्यनाथी (सत्यनाथ), 2. धर्मनाथी (धर्मराज, युधिष्ठिर), 3. रामपन्थी (श्री रामचन्द्र), 4. नाटेश्वरी (लक्ष्मण), 5. कन्हढ़ (गणेश), 6. कपिलानी (कपिल मुनि), 7. बैराग पन्थ (भर्तृहरि), 8. माननाथी (गोपीचन्द), 9. आई पन्थ (भगवती विमला), 10. पागलपन्थ (चौरंगीनाथ, पूरन भगत), 11. धजपन्थ (हनुमानजी), 12. गंगानाथी (भीष्म पितामह)।

उपर्युक्त शाखाओं में प्रत्येक शाखा (पन्थ) किसी पौराणिक महात्मा अथवा देवता को अपना आदिप्रवर्तक मानती है। यद्यपि इन आदिप्रवर्तकों के नाम पर विद्वान् एकमत नहीं हैं।

प्र.9. नाथों की शिष्य-परम्परा में आदिनाथ किसे कहा जाता है? उनके प्रथम मानव शिष्य कौन थे?

उत्तर नाथों की शिष्य-परम्परा में शिव को ही आदिनाथ कहा जाता है। इनके प्रथम मानव शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ थे। इनकी ज्ञान-प्राप्ति के सम्बन्ध में यह जनश्रुति प्रचलित है कि एक बार भगवान शिव माता पार्वती को ज्ञान का उपदेश दे रहे थे, तब मत्स्येन्द्रनाथ ने मत्स्य का रूप धारण करके वह ज्ञान प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् उन्होंने यह ज्ञान गोरखनाथ को प्रदान किया।

प्र.10. हिन्दी के किन ऐतिहासिक ग्रन्थों में अमीर खुसरो की हिन्दी-रचनाओं का वर्णन किया गया है?

उत्तर शिवसिंह सेंगरकृत हिन्दी-साहित्य के इतिहास की प्रथम पुस्तक 'शिवसिंह सरोज', बाबू बालमुकुन्द गुप्तकृत 'हिन्दी भाषा' तथा 'मिश्रबन्धु विनोद' में खुसरो की हिन्दी-रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

प्र.11. खुसरो पर कौन-सी पहली हिन्दी-पुस्तक लिखी गई है?

उत्तर **ब्रजरत्नदास** ने खुसरो पर पहली हिन्दी-पुस्तक लिखी, जिसका नाम था—'अमीर खुसरो की हिन्दी कविता'। इसके अतिरिक्त डॉ० श्रीराम शर्मा ने खुसरो की विश्वप्रसिद्ध कृति 'खालिकबारी' का सर्वप्रथम हिन्दी में सम्पादन किया था।

प्र.12. अमीर खुसरो का वास्तविक नाम क्या था? उनका 'अमीर खुसरो' नाम कैसे पड़ा?

उत्तर अमीर खुसरो का वास्तविक नाम 'अबुलहसन यमीनुद्दीन' था। जलालुद्दीन खिलजी ने इन्हें इनकी कविता से खुश होकर 'अमीर' की उपाधि प्रदान की। 'खुसरो' इनका उपनाम था। इस प्रकार इनका नाम मूलनाम के स्थान पर 'अमीर खुसरो' प्रचलित हो गया। आगे चलकर इन्होंने इसी नाम से कविता लिखना आरम्भ कर दिया।

प्र.13. अमीर खुसरो के कलापक्ष का सार लिखिए।

उत्तर अमीर खुसरो की भाषा जनसाधारण की व्यावहारिक ब्रज और खड़ीबोली है। इसका परिमार्जित रूप उनके काव्य में स्पष्ट झलकता है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। शब्दों का उन्होंने इतना सार्थक प्रयोग किया है कि उनकी कविता सहज एवं सिद्ध कवि की रसोक्तियों से भर उठी है। भाषा क्षेत्र में वे समन्वय के पक्षधर थे। उनकी यह विशेषता बहुत महत्त्वपूर्ण है। फारसी और हिन्दी का एक साथ विलक्षण प्रयोग करना सहज कार्य नहीं है, यह उनकी शक्ति और सामर्थ्य का ही परिचायक है।

प्र.14. अमीर खुसरो की कौन-सी रचना इतिहास-ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है? इसमें किन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है?

उत्तर अमीर खुसरो की गद्य रचना 'तारीख-ए-अलाई' (खजाइन-उल-फतूह) इतिहास-ग्रन्थ के रूप में बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में खुसरो ने तत्कालीन शासक और अपने आश्रयदाता अलाउद्दीन खिलजी के युद्धों आदि से सम्बन्धित घटनाओं का आँखों देखा वर्णन किया है।

प्र.15. कव्वाली से क्या अभिप्राय है?

उत्तर 'कव्वाली' शब्द की उत्पत्ति 'कौल' शब्द से हुई है। इस तराने में हजरत मुहम्मद साहब का कौल नहीं है; अत: इस तराने या गीत को प्राय: मजारों आदि पर इबादत के रूप में गाया जाता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गीतिकाव्य की कसौटी पर विद्यापति का मूल्यांकन कीजिए

उत्तर

गीतिकाव्य की कसौटी पर विद्यापति

महाकवि विद्यापति द्वारा रचित समस्त गीतिकाव्य गेयपदों में हैं। इनके अधिकांश पद लघु आकार के हैं। इस प्रकार संक्षिप्तता नामक लक्षण का उनमें पूर्ण निर्वाह किया गया है। कुछ पद अवश्य बड़े हैं, लेकिन वे अत्यधिक विरल हैं। अधिकांश पद सम हैं,

तो कुछ विषम भी हैं। विषम पदों में स्थायी की प्रथम पंक्ति अन्तरा के उत्तरार्द्ध के समकक्ष होती है एवं शेष पंक्तियाँ अन्तरा जैसी ही होती हैं। दो-दो पंक्तियाँ मिलकर एक पद बनाती हैं एवं उसमें अन्तिम तुक की एकरूपता रहती है। कुछ पदों में स्थायी और अन्तरा तीसरी-चौथी पंक्ति में आते हैं। इस प्रकार के पदों की लय की भंगिमा देखते ही बनती है। नीचे दिए पद को देखिए—

गगन अब घन मेह दारुन, सघन दामिनि झलकई।
कुलिस-पातन सबद झनझन, पवन खरतर बलगई।
सजनी आजु दुरदिन भेल।
कन्त हमर नितान्त अमुसरि, संकेत-कुंजहि गेल।

महाकवि विद्यापति बहुश्रुत विद्वान् थे। वे प्राय: समस्त पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों से प्रभावित थे, परन्तु सर्वाधिक प्रभाव गीतगोविन्दकार जयदेव का पड़ा था। उन्होंने **जयदेव** की शैली ही नहीं, उनके भावों तक को ग्रहण किया। विद्यापति की 'पदावली' की लोकभाषा में जयदेव की भाषा की-सी सानुप्रासिकता अपेक्षाकृत कम है, परन्तु सामासिक पदावली और संयुक्ताक्षरों के अभाव से मधुरता आ गई है। उनकी शिव-सम्बन्धी स्तुतियाँ मिथिला में शिवरात्रि एवं अन्य पर्वों पर गाई जाती हैं। उनके राधाकृष्ण-सम्बन्धी पद बंगाली वैष्णवों की भक्ति-साधना के स्वर्ण-सोपान हैं। विद्यापति के पदों के भावपक्ष एवं काव्यकला पर दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि उनकी कला गेयपदों के सर्वथा अनुकूल थी। **डॉ० मनोहरलाल गौड़** के अनुसार—"विद्यापति के पदों में शृंगार के कोमल भाव हैं। उनमें यौवनोद्दीप्त सौन्दर्य, उसकी प्रेमाह्लादित चेष्टाएँ, मिलन, अभिसार, सुख, विरह आदि का बिम्बात्मक चित्रण किया गया है। जैसे कोमल सरस भाव हैं, वैसी ही कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हुआ है; अत: विद्यापति के पदों में अनुभूति और अभिव्यक्ति में पार्थक्य नहीं है। वे एक-दूसरे के पोषक और प्रेरक हैं। विद्यापति ने लोकभाषा द्वारा लोकगीतों में प्रेम-शृंगार की प्रौढ़ अभिव्यक्ति देकर गेयपदों को बड़ी पुष्ट परम्परा प्रारम्भ कर दी।"

प्र.2. गोरखनाथ की कविता का भावपक्ष स्पष्ट कीजिए।

उत्तर गोरखनाथ हठयोगी थे; इसलिए उनकी कविता में सर्वत्र बिन्दु, वायु, मन, सहस्रार, कुण्डलिनी, अनहदनाद, नाद, षट्चक्र आदि उपकरणों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उनका भावपक्ष महर्षि पतंजलि से अभिप्रेत है। इस विषय में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है—"गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया।" यह सत्य है कि गोरखनाथ के भावपक्ष पर हठयोग का आधिपत्य है, लेकिन इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि जनसामान्य के क्रिया-कलापों या उनके व्यवहारों से वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दुओं एवं मुसलमानों दोनों के ही तीर्थाटन, पूजा, हज, नमाज आदि का वर्णन किया है। इस विषय में उनकी 'काफिरबोध' पुस्तक विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गोरखनाथ ने अपनी कविता में रूढ़ि खण्डन किया, लेकिन उनका रूढ़ि शब्द का अभिप्राय बहुत अधिक सीमित है। उनकी दृष्टि में योगसाधना के अतिरिक्त व्यक्ति के समस्त व्यापार-लिखना-पढ़ना, चिकित्सा, परोपकार आदि सभी रूढ़िगत व्यापार हैं। इसीलिए तो वे इन सबको त्यागने पर बल देते हैं। इन सब क्रिया-व्यापारों का विरोध करते हुए वे योग-साधकों से इन्हें त्यागने का आह्वान करते हुए कहते हैं—"हे योग-साधना करनेवालो! रोगियों की चिकित्सा और व्यापार त्याग दो। यह योग-साधक का काम नहीं है। पढ़ना और मनन करना भी छोड़ दो। ये सारे काम लोकाचार हैं। जड़ी-बूटी खोजने और उसके प्रचार करने के चक्कर में कोई भी न पड़े; क्योंकि सबसे पहले वैद्य की पत्नी ही विधवा होती है। यदि धन से सारे कार्य सिद्ध होते हैं तो राजा राज्य क्यों छोड़ता, वह क्यों नहीं सोना-चाँदी देकर मृत्यु को टाल देता।" गोरखनाथ ने जप-तप एवं पूजा-पाठ का भी विरोध किया है, इसीलिए वे कहते हैं कि "पूजा-पाठ मत करो और मन्त्रों का जाप भी त्याग दो, इनसे कोई लाभ नहीं। आत्म-साक्षात्कार केवल योग-साधना से सम्भव है, पूजा-पाठ और जाप से नहीं। इसी प्रकार मौन व्रत भी व्यर्थ है। कुछ लोग पशुओं के समान मौन रहते हैं और जाप करते हैं। यदि मौन रहकर जाप करने से अमरता प्राप्त हो सकती है तो फिर पशु क्यों मरते हैं।"

गोरखनाथ नारी को साधना-मार्ग की सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि गोरखनाथ की कविता का भावपक्ष बहुत प्रबल नहीं है।

प्र.3. अमीर खुसरो का एक महान् संगीतकार के रूप में मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर

महान् संगीतकार : अमीर खुसरो

अमीर खुसरो बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। वे एक उच्चकोटि के वीर तथा सहृदय कवि होने के साथ-साथ महान् संगीतकार भी थे। उन्होंने कितने ही नए राग-रागनियों की रचना की। इससे भी सिद्ध होता है कि अमीर खुसरो एक महान् संगीतज्ञ थे। अमीर

खुसरो भारतीय संगीत के तो विशेषज्ञ थे ही, ईरानी संगीत पर भी उनका अच्छा अधिकार था, इसलिए उन्होंने भारतीय और ईरानी संगीत का समावेश कर अनेक नए रागों का आविष्कार किया। संगीत के क्षेत्र में न केवल गायन को लेकर उन्होंने नए-नए प्रयोग किए, अपितु ढोलक और तबला जैसे वाद्यों का आविष्कार भी उन्होंने किया। अनेक परम्परागत वाद्यों में सुधार करके उन्होंने उन्हें नया रूप भी प्रदान किया; जैसे—वीणा भारत का परम्परागत वाद्य था, जिसमें नया प्रयोग करके खुसरो ने **सितार** का आविष्कार किया। इसी तरह परम्परागत 'पखावज' वाद्य को दो भागों में बाँटकर उन्होंने तबला बनाया।

अमीर खुसरो ने गुल, कल्बाना, कौल, तराना, नक्श, बसीत और सुहेला आदि नई धुनों का भी परिचय संगीत से कराया। उन्होंने जिन नई रागनियों की रचना की, उनमें राग मुजीर, फरगाना, सर पर्दाह, साजगिरी, ऐमन, मुवाफिक, गनम, बाखर्ज, मुनअम (सगम) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'खयाल', 'कव्वाली' और 'कल्बाना' को भी अमीर खुसरो की देन माना जाता है।

अमीर खुसरो के महान् संगीतकार होने का एक प्रमाण यह भी है कि अकबर के दरबारी गायक तानसेन ने अमीर खुसरो की प्रशंसा में एक पूरा ध्रुपद ही रच डाला, उन्हें 'नायक' के रूप में अभिहित किया—

तानसेन के तुम भू नायक खुसरो, करत स्तुति गुण गायो रे।

उस समय संगीत के क्षेत्र में 'नायक' सबसे बड़ी उपाधि (पदवी) थी। इस प्रकार अमीर खुसरो उच्चकोटि के संगीतकार भी थे, इसलिए वे एक-से-बढ़कर-एक गीत, गजल, कव्वाली, वसन्त (होली) आदि लिखने में सफल रहे।

***प्र.4.* भाषाशास्त्री के रूप में अमीर खुसरो का मूल्यांकन कीजिए।**

उत्तर

खुसरो का भाषाशास्त्री रूप

अमीर खुसरो कई भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके काव्य से यह ज्ञात होता है कि वे भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में भी सर्वोत्तम थे। उन्होंने अरबी भाषा की वैज्ञानिक विशेषताओं की ओर भी संकेत किया है, साथ ही कुछ भाषाओं की उत्पत्ति और प्रसार के विषय में भी लिखा है। भारत की विभिन्न भाषाओं का सर्वेक्षण करते हुए उन्होंने लिखा है—

सिंदीयो-लाहौरियो-कश्मीरीओ कबर।
घोर समुन्दरीओ-तिलंगीओ गुजर।
मअबरीओ-गौरीओ बंगाली अबद।
दिहलीओ पेरामनश अवद हमद अद।।
ईन हमद हिंद वोस्त कि जिं अयामे कुहन।
आम्मह ब-कार अस्त ब-हर गुनह सखुन।

अर्थात् सिन्दी, लाहौरी, कश्मीरी, कबर, घोर समुन्दरी (कन्नड़), तिलंगी (तेलुगू), गुजर (गुजराती), मअबरी (तमिल), गौरी, बंगाल, अबद (अवधी), दिल्ली और उसके परवर्ती सब भाषाएँ हिन्दुई हैं।

अमीर खुसरो ने संस्कृत, अरबी, फारसी की तुलना भी की—"दरी भाषा-रत्न के समान ही यह एक भाषा (संस्कृत) बनी हुई है। यह अरबी से कम और दरी से श्रेष्ठतर है।"

खालिकबारी सिरजनहार।
वाहिद एक बिदा कर्तार।
मुश्क काफर अस्त कस्तूरी कपूर।
हिन्दवी आनन्द शादी और सऊर।
मूश चूहा गुर्बः बिल्ली मार नाग।
सोजनो रिश्तः वाहिदी सुई ताग।।
गन्दुम गेहूँम खुद चना शाली है धान।
जरत जोहरी अदस मसूर वग है पान।।

अमीर खुसरो ने बेमेल भाषाओं को जिस प्रकार मिलाने का प्रथम बार हौसला किया, वह उनकी शक्ति एवं सामर्थ्य का अदभुत उदाहरण है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. आदिकालीन कवि विद्यापति के जन्मकाल निर्धारण पर प्रकाश डालते हुए इनका जीवन-परिचय लिखिए।

उत्तर

विद्यापति का जीवन-परिचय

जन्मस्थान—मैथिल-कोकिल विद्यापति का जन्म **बिहार** राज्य के अन्तर्गत ग्राम **बिस्पी,** जिला **मधुबनी** (पुराना जिला **दरभंगा**) में हुआ था। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में यहाँ किसी राजा का गढ़ था और ब्रिटिशकाल में इसके कुछ तथाकथित स्मृति-चिह्न यहाँ उपलब्ध थे। वर्तमान में यहाँ इसका कोई स्मृति-अवशेष नहीं है। विस्फी में विद्यापति से सम्बन्धित मात्र-एक मिट्टी का टीला है, जिसे **'विद्यापति डीह'** के नाम से जाना जाता है। यह डीह वर्तमान विस्फी ग्राम से कुछ किलोमीटर दूर स्थित है और ऐसा कोई विश्वस्त प्रमाण प्राप्त नहीं है कि इसका विद्यापति से कोई वास्तविक सम्बन्ध है भी या नहीं। कहा जाता है कि इनके गीतों से प्रभावित होकर **राजा शिवसिंह** ने इन्हें विस्फी ग्राम पुरस्कारस्वरूप प्रदान किया था और इनका निवास-स्थान इसी डीह पर था। इसके विपरीत कुछ लोगों का मत है कि विद्यापति के पूर्वज गढ़-विस्फी के राज्याधिकारी थे तथा इनकी हवेली इसी डीह पर थी।

जन्मकाल—विद्यापति के कुल की ही भाँति इनका जन्मकाल भी विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य के विभिन्न विद्वानों के मध्य अत्यधिक मतभेद है। प्रसिद्ध साहित्यकार **रामवृक्ष बेनीपुरी** ने इनका जन्मकाल सन् 1350 ई० को माना है, जबकि ख्यातिप्राप्त विद्वान् **नागेन्द्रनाथ गुप्त** इनका जन्म सन् 1358 ई० में हुआ मानते हैं। इसी प्रकार **पं० हरिप्रसाद शास्त्री** ने इनके जन्म का समय सन् 1357 ई० एवं **रामनाथ झा, डॉ० उमेश मिश्र, डॉ० सुभद्र झा** आदि विद्वानों ने सन् 1360 ई० को माना है। कुछ अन्य विद्वान् इनका जन्म सन् 1343 ई० में हुआ मानते हैं।

विद्यापति के जन्म से सम्बन्धित उपर्युक्त मतों में से किसी का भी कोई ठोस आधार नहीं है। इसका निर्धारण विद्वानों ने विभिन्न अस्पष्ट तथ्यों के आधार पर किया है, इसलिए इनमें से किसी को भी प्रामाणिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता। विद्यापति की रचनाओं में जिन तिथियों का उल्लेख मिलता है, वे 'लक्ष्मण संवत्' की हैं। लक्ष्मण संवत् का प्रारम्भ सन् 1109 ई० से माना जाता है। अब तक प्राप्त सभी मतों में सर्वाधिक तर्कपूर्ण मत यही समझा जाता है। इसके अनुसार विद्यापति का जन्मकाल **सन् 1350 ई०** निर्धारित होता है।

साहित्यिक व्यक्तित्व—विद्यापति मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान और **पं० जयदेव मिश्र** के बालसखा थे। कुछ विद्वानों का मत है कि **पं० जयदेव मिश्र** और विद्यापति एक ही व्यक्ति के दो नाम थे, किन्तु इस बात के समर्थन में कोई स्पष्ट तथ्य प्राप्त नहीं है। इन्होंने **पं० हरि मिश्र** से संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् इन्होंने धर्म, नीति, राजनीति आदि विषयों का गहन अध्ययन किया।

विद्यापति ने संस्कृत, अवहट्ट (अवहट्ठ) एवं मैथिली तीन भाषाओं में काव्य-रचना की है। इनके संस्कृत-ग्रन्थ जहाँ इनके पाण्डित्य के द्योतक हैं, वहीं अवहट्ट की रचनाएँ इनकी कवि-प्रतिभा को प्रकाशित करती हैं। विद्यापति को सर्वाधिक लोकप्रियता इनकी मैथिली रचनाओं से प्राप्त हुई। मैथिली ने इन्होंने सैकड़ों पदों की रचनाएँ कीं, जिनका भाव-माधुर्य इतना प्रबल है कि चैतन्य महाप्रभु जैसे सन्त भी इन्हें गाते-गाते भाव-विह्वल होकर रोने लगते थे। मैथिली में रचे गए विद्यापति के ये गीत आज भी बिहार एवं बंगाल के एक वृहद् क्षेत्र में घर-घर गूँजते सुनाई देते हैं। इनके भाव-चित्रण, शब्द-योजना एवं छन्द-योजना का माधुर्य अद्भुत रूप से मर्मस्पर्शी है। इनमें शृंगार रस की प्रधानता है, किन्तु उसमें भक्ति-भाव की स्निग्धता भी विद्यमान है। इनकी विद्वत्ता एवं कवि-प्रतिभा के कारण इन्हें **राजपण्डित, अभिनव जयदेव, खेलन कवि, मैथिल-कोकिल, सुकवि-कण्ठहार** आदि विभूषणों से विभूषित किया जाता है।

निधन—विद्यापति का निधनकाल भी अज्ञात है। विद्वानों ने इसका निर्धारण भी अनुमानों के आधार पर किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार विद्यापति की मृत्यु महाराज **भैरवसिंह** के राज्यकाल में ही हो गई थी। कुछ अन्य विद्वान इनकी मृत्यु भैरवसिंह के परवर्ती राजा **रूपनारायण** के राज्यकाल में हुई मानते हैं। पहले मत के माननेवाले विद्वानों ने इनका निधनकाल **सन् 1436 ई०** से पूर्व माना है। दूसरे मत के मानने वाले विद्वानों के अनुसार इनका जन्म **सन् 1360 ई०** में हुआ और आयु पूर्ण करके **सन् 1450 ई०** में स्वर्गवासी हुए।

रचनाएँ—विद्यापति ने संस्कृत, अवधी एवं मैथिली में जो काव्य-रचनाएँ की हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(क) संस्कृत रचनाएँ—1. पुरुष-परीक्षा, 2. भू-परिक्रमा, 3. लिखनावली, 4. दान-वाक्यावली, 5. जयपत्तलक, 6. विभाग-सार, 7. वर्षकृत्य, 8. शैव-सर्वस्व-सारद्ध 9. गंगा-वाक्यावली, 10. दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी, 11. प्रमाणभूत-सार-संग्रह।

(ख) अवहट्ट रचनाएँ—1. कीर्तिलता, 2. कीर्तिपताका।

(ग) मैथिली रचनाएँ—पदावली (पद-संग्रह)।

इन काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त विद्यापति द्वारा रचित **'गौरक्षविजय'** नामक एक नाटक भी है, जिसके संवाद संस्कृत एवं प्राकृत में हैं। इसमें कई मैथिली-गीतों का समावेश किया गया है।

विद्यापति के जीवन से सम्बन्धित उपर्युक्त तथ्यों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि इनके जन्मकाल एवं मृत्युकाल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, तथापि यह कहा जा सकता है कि इनका आविर्भाव आदिकाल एवं भक्तिकाल के सन्धि-युग में हुआ था। ये बहुभाषाविद् थे एवं धर्म, नीति, राजनीति, दर्शन आदि के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कवि थे। इनकी काव्य-प्रतिभा का भावपक्ष एवं कलापक्ष अद्वितीय रूप से विलक्षण था, जिसमें ढलकर इनकी काव्य-रचनाएँ भावात्मक एवं कलात्मक माधुर्य की ऐसी सरिताओं के रूप में प्रकट हुई हैं, जो जब भी प्रवाहित होती हैं, जनमानस के हृदय को अपने साथ बहा ले जाती हैं।

प्र.2. विद्यापति पदावली को कलापक्षीय विशेषताओं का विवेचन कीजिए। (2021)

उत्तर

'विद्यापति पदावली' की कलापक्षीय विशेषताएँ

विद्यापति के पदों के कलापक्ष की उत्कृष्टता शब्द-योजना, भाषा-शिल्प, गुणयोजना, अन्योक्ति, छन्द-योजना, अलंकार-योजना, बिम्ब-विधान, प्रतीक-विधान आदि सभी क्षेत्रों में परिलक्षित होती है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **भाषा-शिल्प**—कविश्रेष्ठ विद्यापति ने अपने पदों की भाषा का चयन भी अत्यन्त विवेक के साथ किया है। वे संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के भी विद्वान् थे। उन्होंने अपनी शास्त्रीय रचनाएँ संस्कृत में कीं। उन्होंने कीर्तिसिंह की प्रशस्ति में लिखे गए काव्य में संस्कृत का प्रयोग किया है, किन्तु अपने सभी गीतों की रचना मैथिली में की। उन्होंने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के लिए संस्कृत, वीर रस तथा ओजगुण के लिए अवहट्ट एवं गीतों के लिए मैथिली भाषा को अपनाया।

   विद्यापति के पदों की भाषा-सम्बन्धी विशेषता का एक अन्य पक्ष यह भी है कि इसका शब्द-चयन, पद-विन्यास, वर्णमैत्री आदि पदों के भावों को तीव्र करने में अद्‌भुत रूप से सहायक है। इसमें नाद-सौन्दर्य की मधुरता स्थापित करने के लिए अनुप्रास आदि की भी सहायता ली गई है। कवि ने चमत्कार, व्यंग्य आदि का सृजन करने हेतु लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी यथास्थान प्रयोग किया है—

   माधव की कहब सुन्दरि रूपे।
   कतेक जतन बिहि आनि समारल देखल नयन सरूपे॥
   पल्लबराज चरन-जुग सोभित गति गजराज क भाने।
   कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने॥
   मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
   मनिमय हार धार रहु सुरसरि तओनहिं कमल सुखाई॥
   अधर बिंबसन दसन दाड़िम-बिजु रबि ससि उग थिंक पासे।
   राहु दूर बस नियरो न आवथि तै नहिं करथि गरासे॥

2. **गुण-योजना**—अपने काव्य की प्रकृति के अनुसार विद्यापति ने अपनी भाषा में ओज, प्रसाद तथा माधुर्य गुणों का समावेश किया है। काव्य के भाव के साथ भाषा का विलक्षण समन्वय यहाँ भी दृष्टिगत होता है। 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' में वीर तथा रौद्र रस की प्रधानता है, इसलिए उनमें ओज गुण की प्रधानता है, लेकिन अपने पदों में उन्होंने मधुर गुण को प्रमुख स्थान दिया है, जो शृंगार रस के माधुर्य भाव के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है। मधुर गुण की प्रधानता के कारण उनके पदों में सरसता तथा मधुरता की धारा प्रवाहित होती दिखाई देती है—

   ससन परस खसु अम्बर रे, देखल धनि देह।
   नव जलधर-तर संचर रे, जनि-बिजुरि-रेह॥
   आज देखल धनि जाइत रे, मोहि उपजल रंग।
   कनकलता जनि संचर रे, महि निर अवलंब॥

3. **अन्योक्ति**—इनके पदों में उनके भावों के अनुरूप अन्योक्ति का भी प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है, जिसका अवलोकन करने के उपरान्त स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अन्योक्ति के प्रयोग में भी सिद्धहस्त थे। अन्योक्ति के अन्तर्गत प्रस्तुत व्यापार का अप्रस्तुत व्यापार से साम्य प्रदर्शित करने में कवि ने अपनी काव्यात्मकता का अनुपम हृदयस्वर्शी प्रदर्शन किया है—

हरि हरि के यह दैब दुरासा।
सिन्धु निकट जदि कंठ सुखाएब के दुर करब पियासा॥
चन्दन तन जब सौरभ छोड़ब ससधर बरखब आगी।
चिन्तामनि जब निज गुन छोड़ब कि मोर करन अभागी॥

4. **छन्द-योजना**—कविवर विद्यापति ने अपने पदों में गेय छन्दों को अत्यधिक प्राथमिकता दी है और उनमें माधुर्य भाव को प्रदीप्त करनेवाले छन्दों का भी प्रयोग किया है। पदों में लयात्मकता का पूर्ण ध्यान रखा गया है और समस्त छन्द-योजना का समायोजन इसी के अनुरूप किया गया है—

माधव, बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसीतिल देह समर्पिनु दया जिन छाड़िब मोय॥
गनइत दोसर गुन लेस न पाओ विजब तुहुँ करबि बिचार।
तुहु जगत जगनाथ कहाओसि जग बाहिर नइ छार॥

5. **अलंकार-योजना**—इनके गेय पदों में सामान्यतया उपमा तथा रूपक जैसे सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्राथमिक रूप से समावेश किया गया है। तथा इनका चयन भी भावाभिव्यक्ति को प्रदीप्त करने के उद्देश्य से किया गया है। विद्यापति के पदों में उत्प्रेक्षा अलंकारों के माध्यम से अत्यन्त सारगर्भित कल्पनाएँ की गई हैं। इन्होंने पदों के सौन्दर्य-चित्रण तथा शृंगारिक भाव को समृद्ध करने में सहायता की है। इनका प्रयोग प्रत्येक सरस तथा सजीव कल्पनाओं की अभिव्यक्ति हेतु किया गया है—

सुधा मुख के विहि निरमलि बाला।
अपरुब रूप मनोभव मंगल त्रिभुवन विजयी माला॥
सुन्दर बदन चारु करु लोचन काजर रंजित भेला।
कनक कमल माझ कल भुजंगिनी स्त्रीयत खंजन खेला॥

6. **बिम्ब-विधान**—किसी काव्य, विषय, भाव, व्यापार (क्रियाकलाप), अनुभूति आदि के सम्मिलित स्वरूप की जो मूर्त अनुभूति प्रकट होती है, उसे काव्य का बिम्ब कहा जाता है। काव्यशास्त्र के अनुसार अनुभूति के मूर्त स्वरूप का यह बिम्ब ही रस की सृष्टि का सर्वप्रमुख आधार होता है, इसलिए काव्य के शिल्प में इसको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इनके पदों में बिम्बों की प्रभावपूर्ण सजीवता दिखाई देती है। इसमें इसके दो रूप हैं—स्थूल एवं सूक्ष्म। सौन्दर्य-चित्रण में जिन बिम्बों के दर्शन होते हैं वे स्थूल बिम्ब हैं तथा भाव, अनुभूति, मनोविकार, कामना आदि के बिम्ब सूक्ष्म हैं। कवि ने इन दोनों प्रकार के बिम्बों में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का अद्‌भुत परिचय दिया है और ये पद के भावों का जीवन्त भावात्मक चित्र प्रस्तुत करने में पूर्णरूपेण समर्थ हैं—

(क) **साँझ क बेरि उगल नब सरधर भरम विदित सविताहु।**
कुण्डल चक्र तरास नुकाएल दूर भेलि हेरथि राहु॥

(ख) **जनु बइससि रे बदन हाथ लाई।**
तुअ मुख चंगिम अधिक चपल भेल कतिखन धरब नुकाई॥
रक्तोपल जनि कमल बइसाओल नील नलिन दल तहु।
तिलक कुसुम तह माझु देखि कहु भर आबथि लहु लहु॥
पानि-पलब गत अधर-बिम्ब रत दसन दाड़िम बिंज तोरे।
कीर दूर भेल पास न आबाए भौंह धनुहिं के भोरे॥

7. **प्रतीक-विधान**—विद्यापति के पदों में शृंगार सम्बन्धी विविध क्षेत्रों का वर्णन करने हेतु प्रतीकों का आकर्षक प्रयोग किया गया है। विद्यापति के समकालीन एवं परवर्ती सन्त-कवियों ने भी प्रतीकों का प्रयोग किया है, लेकिन उनकी प्रतीक-योजना

रहस्यवाद से प्रभावित है, जबकि कवि विद्यापति की प्रतीक-योजना शृंगारिक भावनाओं को प्रकाशित करने के उद्देश्य से की गई है—

बड़ कौसलि तुअ राधे। किनल कन्हाई लोचन आधे॥
ऋतुपति-हटबए नहिं परमादी। मनमथ-मधथ उचित मूलबादी॥
द्विज-पिक लेखक मसि मकरन्दा। काँप भमर-पद साखी चन्दा॥

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विद्यापति के पदों में जहाँ सौन्दर्य-माधुर्य, रस-माधुर्य, चित्रण-माधुर्य का भाव प्रवाहित होता परिलक्षित होता है, वहीं भावों के प्रवाह के अनुरूप भाषा, छन्द, अलंकार, बिम्ब आदि के समायोजन की कलात्मक कुशलता भी स्पष्ट झलकती है। इनके काव्य का भावपक्ष जितना सशक्त एवं प्रवाहमय है, उतना ही इनका कलापक्ष भी उत्कृष्ट और भावोत्पादक है। इन्होंने इन दोनों का समन्वय जितनी निपुणता से किया है, उसका अन्यत्र उदाहरण प्राप्त करना कठिन है। इन्होंने कला के लिए भाव का नहीं, भाव के लिए कला का प्रयोग किया है एवं उसके प्रत्येक पक्ष को भाव के अनुरूप इस प्रकार व्यवस्थित किया है कि इनके गीतों की रसानुभूति अलौकिक हो उठी है। विद्यापति के गीतिकाव्य की इस उत्कृष्टता ने ही कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास जैसे महाकवियों तक की चेतना को प्रभावित कर दिया और फिर उन्होंने इनकी गीतिकाव्य की परम्परा को अपनाकर अपने-अपने गीतिकाव्यों की रचना की।

प्र.3. विद्यापति की 'पदावली' के भावपक्ष पर प्रकाश डालिए। (2021)

उत्तर

'विद्यापति पदावली' की भावपक्षीय विशेषताएँ

हिन्दी काव्य-साहित्य में विद्यापति की पदावली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी मुख्य भावपक्षीय विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **वस्तु-वर्णन की स्वाभाविकता**—विद्यापति ने अपने पदों में कृष्ण और राधा के माध्यम से युवक-युवतियों के प्रणय तथा कामभाव से युक्त चित्रों में नारी के अंग-सौन्दर्य एवं उसकी विभिन्न मुद्राओं का अत्यन्त सजीव अंकन किया है। प्रणय के समय नायक-नायिका के मन में उठने वाले भावों के अनुरूप जिन हाव-भाव, मुद्राओं, चेष्टाओं आदि का चित्रण इनके काव्य में मिलता है, वह इतना सजीव और प्रभावी है कि सहज ही हृदय में उन भावों को प्रस्फुटित कर देता है—

खने खन नयन कोन अनुसरई। खने खन बसन धूलि तनु भरई॥
खने खन दसन-छटा छुट हास। खने खन अधर आगे गहु बास॥
चउँकि चलए खने खन चलु मन्द। मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध॥
हिरदय मृकुल हेरि-हेरि थोर। खने आँचर दए खने होय भोर॥
बाला सैसव तारुन भेंट। लखए न पारिअ जेठ कनेठ॥
विद्यापति कह सुनु बर कान। तरुनिम सैसव चिन्हइ न जान॥

विद्यापति की 'पदावली' में इस प्रकार के चित्रों की भरमार है। इन्होंने नारी की विभिन्न अवस्थाओं, क्रियाओं, चेष्टाओं और नायक-नायिका में परस्पर होने वाले प्रणय-व्यापार के विभिन्न दृश्यों को स्वाभाविक रूप से चित्रितकर अपनी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके वय:सन्धि-वर्णन का यह मोहक चित्रण देखिए—

सैसव जौबन दरसन भेल। दुह दल-बले दंद परिगेल॥
कबहुँ बाँधय कच बिथारि। कबहुँ झाँपय अंग कभहुँ उघारि॥
अति थिर नयन अथिर किछु भेल। उरज-उदय-थल लालिम देल॥
चंचल चरन चित चंचल भान। जागल मनसिज मुदित नयान॥
विद्यापति कह सुन बर कान। धैरज धरह मिलायब आन॥

आशय यह है कि शैशवावस्था एवं युवावस्था का सन्धिकाल शारीरिक एवं मानसिक बदलाव के संक्रमण का काल होता है। शैशव और यौवन की इस वय:सन्धि पर स्थित नायिका कभी बाल्यावस्था के भोलेपन का व्यवहार कर रही है तो कभी उसकी भंगिमा यौवन के मदमाते कटाक्ष से उठती है। कभी वह उन्मुक्त होकर हँसती है तो कभी लज्जा से संकोच में भरकर मुस्कराती है। विद्यापति ने युवा हो रही किशोरी की इन भाव-भंगिमाओं का जैसा मोहक और स्वाभाविक चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इसके अलावा उन्होंने नायिका के नख-शिख वर्णन, शृंगारिक मुद्राओं अथवा चेष्टाओं तथा प्रणय-केलि के प्रसंग के ऐसे स्वाभाविक और कामोत्तेजक चित्र खींचे हैं कि वह दृश्य आँखों के सम्मुख साकार हो उठते हैं और व्यक्ति उसी भावधारा में विचरण करने को विवश हो जाता है।

2. **रस-योजना**—विद्यापति के पदों में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार रस को हिन्दी-साहित्य में 'रसराज' के नाम से सम्बोधित किया गया है; क्योंकि इसकी भावात्मक तीव्रता और व्यापकता अन्य रसों की अपेक्षा अधिक सशक्त होती है। इस प्रकार शृंगार रस की प्रधानता के कारण विद्यापति के पदों की भाव-प्रभावोत्पादकता स्वाभाविक रूप से सबल है, किन्तु इसकी भाव-प्रबलता का एकमात्र कारण यही नहीं है। विद्यापति के प्राणवन्त, मधुर एवं स्वाभाविक चित्रों और उनके द्वारा किए गए मनोवैज्ञानिक भाव-विश्लेषण ने इन पदों की भावानुभूति को कई गुना अधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है। इन्होंने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

संयोग-वर्णन—विद्यापति ने अपने पदों में संयोग शृंगार का मादक और मनमोहक व्याख्यान किया है। इस वर्णन में स्पर्श-सुख, मिलन-सुख, रति-सुख, नखक्षत, दन्तक्षत, चुम्बन, परिलम्भन आदि का वर्णन ऐसे मधुर-मादक प्रसंगों में किया गया है, जो इसकी मधुरता को उत्कृष्ट कलात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। इनके पदों में रति-गोपनीयता को मनुहार, नायिका का मान, कामकेलि और अभिसार आदि के उन्मुक्त वर्णन प्राप्त होते हैं, जिसकी भाव-प्रखरता उत्कृष्ट तथा प्रभावोत्पादक है—

चन्दा जनि उग आजु क राति। पिंआ के लिखिअ पठाओब पाति॥
साओन सयँ हम करब पिरीति। जत अभिमत अभिसार क रीति॥
अथवा राहु बहुझाइव हँसी। पिबि जति उगिलह सीतल ससी॥
कोटि रतन जलधर तोहें लेह। आजु क रयनि घन तम कए देह॥

विरह-वर्णन—विद्यापति ने अपने विरह-वर्णन में नायिका को अपने प्रियतम के वियोग में विरहमग्न दु:खिता के रूप में चित्रित किया है। इनके संयोग-वर्णन की ही भाँति इनका विरह-वर्णन भी उत्कृष्ट भावोत्पादक तीव्रता से युक्त है—

चानन भेल विषम सर रे, भूषण भेल भारी।
सपनहुँ हरि नहीं आएल रे, गोकुल गिरधारी।
एक सखि ठाढ़ि कदम तर रे, पथ हेरथि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे, झामर भेल सारी॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति के पदों के भावपक्ष की गहनता सागर की अतल गहराई के समान है तो इनकी रस-निष्पत्ति सावन की घटा से बरसती वर्षा की भाँति, जो पर्वतीय क्षेत्र में बहने वाली सरिता बनकर अपने भाव में मनुष्य की चेतना को बहा ले जाती है। इन पदों में मिलन, वियोग, प्रणय, सौन्दर्य, विलास, मधुरता, मनुहार आदि अनेक भावों का उत्कृष्ट रूप मिलता है। शृंगार के विविध स्वरूपों, मुद्राओं एवं क्रीड़ाओं का ऐसा मर्मस्पर्शी भावप्रधान वर्णन अन्य दूसरे कवि के काव्य में प्राप्त होना बहुत कठिन है।

प्र.4. निम्नलिखित का व्याख्यात्मक विवेचन कीजिए—

(क) राधा की वन्दना

देखि-देखि राधा-रूप अपार।
अपरुब के बिहि आनि मिलाओल। खिनितल लावनिसार॥
अंगहि अंग अनंग सुरछायत। हेरए पड़त अधीर॥
मनमथ कोटि जतन करु जे जन। ये हेरि महि-मधि गीर॥
कत-कत लखिमी चरन तल निओछए। रांगनि हेरि विभोरि॥
करु अभिलाख मनहि पद-पंकज। अहोनिसि कोर अगोरि॥

(ख) श्रीकृष्ण प्रेम

जहाँ-जहाँ पद-जुग धरई। तहिं-तहिं सरोरुह झरई॥
जहाँ-जहाँ झलकाए अंग। तहिं-तहिं बिजुरि-तरंग॥
कि हेरलि अपरुब गोरि। पइठलि हिअ मधि मोरि॥
जहाँ-जहाँ नयन विकास। ततहिं कमल परकास॥

जहाँ लहु हास संचार। तहिं-तहिं अमिअ-बिथार॥
जहाँ-जहाँ कुटिल कटाख। तहिं-मदन-सर लाख॥
हेरइत से धनि थोर। अब तिन भुवन अगोर॥
पुनु किए दरसन पाब। अब मोर ई दुःख जाब॥
विद्यापति कह जानि। तुअ गुन देहब आनि॥

उत्तर

(क) राधा की वन्दना

देखि-देखि ..... **कोर अगोरि॥**

शब्दार्थ—अपरुब = अपूर्व; **बिहि** = विधाता, ब्रह्मा; **आनि मिलाओल** = ला मिलाया; **खिनितल** = क्षितिल; **लावनिसार** = लावरण्य सार; **अनंग** = कामदेव; **हेरए** = देखने में; **मनमथ** = मन को मथने वाला, काम; **जतन** = यत्न, प्रयास; **महि** = पृथ्वी; **मधि** = पर में; **गीर** = गिरना; **कत** = कितनी; **निओछए** = न्योछावर; **विभोरि** = मस्त; **कोर** = गोद; **अगोरि** = सँभालकर रखना; **अहोनिसि** = अहर्निश, दिन-रात, सदा।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश महाकवि विद्यापति द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि राधा के सौन्दर्य की अपूर्वता का अंकन करते हुए कहता है—

व्याख्या—राधा के अपार रूप-सौन्दर्य को देखो! यह सौन्दर्य तो अपूर्व (या दैवीय) है। विधाता ब्रह्मा ने पृथ्वी तक के समस्त सौन्दर्य के सार को लेकर इस सौन्दर्य में मिला दिया है। यही कारण है कि स्वयं कामदेव भी इससे एक-एक अंग सौन्दर्य को देखकर मूर्च्छित हो जाता है अथवा अधीरतापूर्वक इसको देखता रहता है। जिसने करोड़ों मनों को मथ दिया अथवा जो करोड़ों मनों को मथने वाले कामदेव को भी मात करने वाले, श्री कृष्ण तक भी (राधा के) इस सौन्दर्य को देखकर पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर जाते हैं। इस सौन्दर्य का अवलोकन करके न जाने कितनी लक्ष्मी (जैसी स्त्रियाँ) इन चरणों पर न्योछावर होती हैं।
इस सौन्दर्य (राधा) को देख मन में यही अभिलाषा होती है कि इनके कमल-चरणों को दिन-रात गोदी में सँभालकर रखा जाए।

विशेष—1. राधा के रूप-सौन्दर्य की यह अपूर्वता और दैवीयता राधा की परम उच्चता की द्योतक है।
2. इस सौन्दर्यांकन में कवि ने राधा-कृष्ण के प्रति अपनी अटल प्रेम (भक्ति भावना व्यक्त की है।)
3. अलंकार-उत्प्रेक्षा (अपरुब के बिहि), वृत्यानुप्रास (अंगहि अंग अनंग) तथा अतिशयोक्ति (समस्तपद में)।
4. अन्तिम पंक्तियों में कवि का शृंगार रूप ही अधिक प्रकट होता है, भक्त रूप नहीं।

(ख) श्रीकृष्ण प्रेम

जहाँ-जहाँ ..... **देहब आनि।**

शब्दार्थ—पग-जुग = दोनों चरण; **सरोरुह** = कमल; **बिजुरि-तरंग** = बिजली की चमक; **कि हेरलि** = क्या देखा, **अपरुब गोरी** = अपूर्व सुन्दरी; **पइठल** = प्रवेश कर गई; **नयन-विकास** = नेत्र-ज्योति; **लहु हास** = तनिक-सी हँसी; **अमिय-बिथार** = अमृत का विस्तार; **कटाख** = कटाक्ष; **मदन** = कामदेव; **सर** = बाण; **धनि** = सुन्दरी; **थोर** = तनिक; **तिन भुवन** = तीनों लोक; **अगोर** = व्याप्त; **पुनु** = पुण्य; **इह दुख** = यह विरह का दुःख; **देयब आनि** = लाकर दे देंगे।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि विद्यापति द्वारा रचित हैं। यह उनकी 'पदावली' से अवतरित हैं।

प्रसंग—इस पद में वे श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन कर रहे हैं। नायक (कृष्ण) ने नायिका (राधा) को कहीं देख लिया है। वह उसके सौन्दर्य पर अत्यधिक मुग्ध हो गया है। इसमें कवि ने राधा की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन किया है। राधा श्रीकृष्ण के मन में बसी हुई है। उसी की याद में वह डूबे हुए हैं। कवि स्वयं मानते हैं कि राधा श्री कृष्ण के गुणों से आकर्षित होकर उनके पास चली आएँगी। वे इसी को रेखांकित करते हुए कहते हैं।

व्याख्या—वह (राधा) जहाँ-जहाँ अपने दोनों चरणों को रखती थी, वहीं-वहीं पर कमल भर जाते थे। जहाँ-जहाँ उसके अंगों की कान्ति की झलक पड़ती थी, वहीं-वहीं पर बिजली-सी चमक जाती थी। मैंने उस अपूर्व सुन्दरी को क्या देखा, वह तो मानो मेरे हृदय में ही प्रवेश कर गई। जहाँ-जहाँ उसके नेत्रों की ज्योति जाती थी, वहीं-वहीं कमलों की शोभा का प्रकाश हो जाता था। जहाँ-जहाँ उसकी तनिक-सी भी हँसी का संचरण होता था, वहीं-वहीं पर अमृत का विस्तार फैल जाता था। जहाँ-जहाँ पर उसके कुटिल कटाक्ष पड़ते थे, वहीं-वहीं पर कामदेव के लाखों बाण चलने लगते थे। मैंने उस सुन्दरी को तनिक ही देखा था, किन्तु अब वह मुझे तीनों लोकों में व्याप्त दिखाई दे रही है। यदि मैं अपने पुण्यों से पुनः उसके दर्शन पा सका तो तभी मेरा यह विरह दुःख नष्ट होगा। विद्यापति कहते हैं कि मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हूँ कि तुम्हारे गुण फिर उसे लाकर तुम्हें दे देंगे, अर्थात् वह तुम्हारे गुणों से आकृष्ट होकर शीघ्र ही स्वयमेव तुम्हारे पास चली आएगी।

विशेष—1. राधा के व्यापक सौन्दर्य का यह चित्रण जायसी-कृत 'पद्मावती' के अलौकिक सौन्दर्य-वर्णन से सम्बद्ध इन पंक्तियों की स्मृति करा देता है—

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत तो देखा हंस भा, दसन-ज्योति नग हीर॥

2. एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की सम्भावना वर्णित होने से वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।
3. सौन्दर्य का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।
4. लयात्मकता है। 5. मैथिली भाषा है। 6. बिम्बात्मकता 7. भाषा में प्रवाह है।

प्र.5. गोरखनाथ के जीवन पर प्रकाश डालते हुए इनकी कृतियाँ भी लिखिए।

उत्तर

गोरखनाथ का जीवन-परिचय

गोरखनाथ या गोरक्षनाथ जी महाराज प्रथम शताब्दी के पूर्व नाथ योगी थे (प्रमाण है राजा विक्रमादित्य के द्वारा बनाया गया पञ्चाङ्ग जिन्होंने संवत् का आरम्भ प्रथम शताब्दी से किया था। जबकि गुरु गोरक्षनाथ जी राजा भर्तृहरि एवं इनके छोटे भाई राजा विक्रमादित्य के समय में थे) गुरु गोरखनाथ जी ने पूरे भारत का भ्रमण किया और अनेक ग्रन्थों की रचना की। गोरखनाथ जी का मन्दिर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर नगर में स्थित है। गोरखनाथ के नाम पर इस जिले का नाम गोरखपुर पड़ा है। गोरखनाथ के शिष्य का नाम भैरोंनाथ था जिनका उद्धार माता वैष्णो देवी ने किया था।

गुरु गोरखनाथ जी के नाम से ही नेपाल के गोरखाओं ने नाम पाया। नेपाल में एक जिला है गोरखा, उस जिले का नाम गोरखा भी इन्हीं के नाम से पड़ा। माना जाता है कि गुरु गोरखनाथ सबसे पहले यहीं दिखे थे। गोरखा जिले में एक गुफा है जहाँ गोरखनाथ का पग चिन्ह है और उनकी एक मूर्ति भी है। यहाँ हर साल वैशाख पूर्णिमा को एक उत्सव मनाया जाता है जिसे 'रोट महोत्सव' कहते हैं। गुरु गोरखनाथ जी का एक स्थान उच्च टीले गोगा मेड़ी, राजस्थान हनुमानगढ़ जिले में भी है। इनकी मढ़ी सोमनाथ ज्योतिर्लिंग के नजदीक वेरावल में है। इनके साढ़े बारह पन्थ होते हैं।

गोरखनाथ की कृतियाँ—गोरखनाथ के जन्म, स्थितिकाल और जन्मस्थान को लेकर जितनी अनिश्चितता दिखाई देती है, उतनी ही अनिश्चितता उनकी कृतियों को लेकर भी है। इनके नाम से संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

संस्कृत-ग्रन्थ—गोरखनाथ के नाम से 'अनमस्क', 'अवधूतगीता', 'अमरौघशासनम्', 'गोरक्षकल्प', 'गोरक्षकौमुदी', 'गोरक्षगीता', 'गोरक्षशतक', 'गोरक्षशास्त्र', गोरक्षसंहिता', 'गोरक्षचिकित्सा', 'गोरक्षापञ्जक', 'गोरक्षपद्धति', 'महार्थमंजरी', 'योगशास्त्र', 'योगसिद्धासनपद्धति', 'योगचिन्तामणि', 'योगमार्तण्ड', 'योगबीज', 'विवेकमार्तण्ड', 'श्रीनाथसूत्र', 'सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति', 'हठयोग', 'हठसंहिता' आदि 28 रचनाएँ संस्कृत भाषा में प्राप्त होती हैं। इन ग्रन्थों में अनेक ऐसे हैं, जो एक ही ग्रन्थ के नामान्तर हैं। इनमें अनेक परिवर्द्धन और परिवर्तन भी मिलते हैं। प्राय: सभी विद्वान् इससे सहमत हैं कि इनमें से अनेक ग्रन्थों के रचयिता गोरखनाथ नहीं हैं। यदि विभिन्न स्रोतों से इनके ग्रन्थों की सूची तैयार की जाए तो निश्चय ही यह संख्या बढ़कर 40 हो जाती है।

प्रख्यात विद्वान् **ब्रिक्स** ने गोरखनाथ के 'गोरक्षशतक' को उनकी सबसे प्रामाणिक रचना माना है। इसी 'गोरक्षशतक' के अनेक नाम मिलते हैं और इसी का संस्करण तथा परिवर्द्धन भी अत्यधिक हुआ है। इस शतक का आविर्भाव गोरखनाथ के नाम से प्रचारित अनेक ग्रन्थों में हो गया है। 'ज्ञानशतक' और 'ज्ञानप्रकाशशतक' आदि ऐसे ही नाम हैं। 'गोरक्षपद्धति' की हिन्दी टीका में बहुत-से ऐसे श्लोक भी मिलते हैं, जो उसी रूप में लगभग चौदहवीं ई० शती की *'हठयोग प्रदीपिका'* में भी मिलते हैं। **ब्रिक्स** और **स्वामी कुवलयानन्द** के संस्करणों में एक-एक शतक हैं, लेकिन दोनों के श्लोकों में कोई साम्य नहीं है। इस प्रकार गोरखनाथ के संस्कृत ग्रन्थों के सम्पादन में भी बड़ी अव्यवस्था है। इसलिए इन रचनाओं की प्रामाणिकता पर प्राय: लोग सन्देह व्यक्त करते हैं। इन ग्रन्थों में सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ 'सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति' बताया जाता है।

हिन्दी ग्रन्थ—गोरखनाथ की हिन्दी रचनाएँ भी संख्या में अत्यधिक हैं। तेरहवीं-चौदहवीं सताब्दी की देशी भाषा के रूप में लिखित ये रचनाएँ विविधरूपात्मक हैं। इनके द्वारा उस काल में प्रचलित विविध रचना-शैलियों का परिचय मिलता है। नि:सन्देह ये गोरखनाथ की ही कृतियाँ हैं। क्योंकि इनका स्वर विचार-भाव-साधना की दृष्टियों से कहीं भी गोरखनाथ की संस्कृत रचनाओं से भिन्न नहीं है। इनकी भाषा और शैली दोनों में प्राचीनता के अंश और चिह्न पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, यद्यपि कुछ शब्दों; जैसे—बम, तोप आदि के प्रयोग के कारण कुछ रचनाएँ चौदहवीं शताब्दी के बाद की कही जा सकती हैं। **डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल** द्वारा 'गोरखबानी' में इन रचनाओं का सम्पादन किया गया है। मूलग्रन्थ में तेरह रचनाएँ संकलित हैं, जिन्हें डॉ०

बड़थ्वाल अन्य रचना की तुलना में ज्यादा प्रामाणिक मानते हैं—'सबद', 'पद (राग-रामग्री)', 'प्राणसंकली', 'नरवैबोध', 'सिष्या दरसन', 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यान-तिलक', 'आत्मबोध', 'अभैयात्रा जोग', 'पन्द्रह तिथि' 'पंचमात्रा'। इस ग्रन्थ में दो परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में 'गोरष-गणेश गुष्टि', 'ज्ञानदीप बोध' (गोरष दत्त गुष्टि), 'महादेव गोरष गुष्टि', 'सिष्ट पुराण' 'दयाबोध' तथा कुछ पद सम्पादित हैं। दूसरे परिशिष्ट में 'सप्तबार-नव-ग्रह', 'ब्रत', 'पंच अग्नि', 'अष्ट मुद्रा', 'चौबीस सिद्धि', 'बत्तीस लछन', 'अष्टचक्र' और 'रह रासि' रचनाएँ प्रकाशित हैं। इन रचनाओं के प्राचीनतम हस्तलेख सत्रहवीं शताब्दी के हैं। इन रचनाओं में सबदी सर्वाधिक प्रामाणिक रचना मानी गई है। यद्यपि राग-रामग्री के पदों में भाषा की प्राचीनता अव्यवस्थापूर्ण है।

गोरखनाथ की रचनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि उनके उपदेश केवल योगियों के लिए ही नहीं, सामान्य जनसमाज के लिए भी समान रूप से उपयोगी, प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण थे। एक लोकनायक में संयम की दृष्टि से ब्रह्मचर्य, बिन्दुरक्षा, यम-नियम, रहनी और करनी की महत्ता, अतियों का त्याग, मध्यमाचार, पाण्डित्य की व्यर्थता, प्रसन्न जीवन, कृच्छाचार त्याग, ब्राह्माचार त्याग आदि गुण अनिवार्य थे। गोरखनाथ में लोकनायकत्व के इन गुणों के साथ-साथ साधना, धर्म, सामाजिक जीवन, उदारता, दया निर्वैरता आदि गुण भी चरमोत्कर्ष तक व्याप्त थे। इसीलिए वे आज भी नगरीय एवं ग्राम्य भारतीय समाज में एकसमान स्मरणीय बने हुए हैं।

प्र.6. निम्नलिखित सबदी तथा पद का व्याख्यात्मक विवेचन कीजिए–

(क) सबदी

1. वेद कतेब न षांणी बांणीं। सब ढंकी तलि आंणीं।।
गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या। तहं बूझै अलष बिनांणीं।।4।।

2. हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियांन।
हसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग ।।8।।

(ख) पद (राग रामश्री)

3. मनसा मेरी ब्यौपार बांधौ, पवन, पुरषि उतपनां।
जाग्यौ जोगी अध्यात्म लागौ, काया पाटण मैं जांनां ।।टेक।।
इकबीस सहंस घटसां आदू, पवन पुरिष जप माली।
इला प्यंगुला सुषमन नारी, अहनिसि बहै प्रनाली।।1।।
षटसां षोड़ि कवल दल धारा, तहां बसै ब्रह्माचारी।
हंस पवन ज फूलन पैठा, नौ सै नदी पनिहारी।।2।।
गङ्गा तीर मतीरा अवधू, फिरि फिरि बर्णिजां कीजै।
अरध बहन्ता उरधैं लीजै, रवि सस मेला कीजै।।3।।10।।

उत्तर

(क) सबदी

1. वेद कतेब ..... बिनांणीं।।4।।

शब्दार्थ—कतेब = कर पाए; **षांणी** = खानि, प्रकार, खान; **तलि** = तले, नीचे; **सिषर** = शिखर; **महि** = में; **तहँ** = उसमें; **बूझै** = जान लो, ज्ञान प्राप्त करो।

प्रसंग—प्रस्तुत सबदी में गोरखनाथ ने परमब्रह्म को अगम-अगोचर तथा शब्दातीत बताते हुए समाधि को उसकी प्राप्ति के एकमात्र साधन के रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—गोरखनाथ कहते हैं कि परमब्रह्म के स्वरूप का वर्णन न तो चारों वेद कर पाए हैं, और न ही ऐसे अन्य धार्मिक ग्रन्थ उसके स्वरूप का दिग्दर्शन करा पाए हैं। मूर्त-अमूर्त सभी को व्यक्त करने वाली चार प्रकार की वाणी भी उसके स्वरूप को व्यक्त कर पाने में समर्थ नहीं है। ये सब तो उसे एक आवरण के नीचे ले आए हैं। अभिप्राय यह है कि वेद आदि ग्रन्थ एवं चारों प्रकार की वाणी उसके विषय में जो कुछ कहते हैं, वह सब उसके आवरण के विषय में ही बताते हैं, वास्तव में परमब्रह्म के पास तक ये पहुँच ही नहीं पाते। इस तरह इन साधनों ने वास्तव में ब्रह्म के स्वरूप को अपने आभासी ज्ञान के आवरण से ढक दिया है। ये सब साधन व्यक्ति को केवल सत्यस्वरूप ब्रह्म के आवरण तक ले जाकर छोड़ देते हैं, उस सत्य से उसका साक्षात्कार नहीं कराते। यदि तुम उस सत्यस्वरूप ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो गगन शिखररूपी ब्रह्मरन्ध्र में समाधि लगाने के बाद जो शब्द-प्रकाश (अनहदनाद) में आता है, उसमें विज्ञान रूप अलक्ष्य परब्रह्म का ज्ञान पा सकते हो। अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में समाधि लगाकर जो अनहदनाद सुनाई पड़ता है, उसी के द्वारा उस अगम ब्रह्म को जाना जा सकता है, उससे साक्षात्कार किया जा सकता है।

विशेष—1. 'षांणी वाणीं' के द्वारा वाणी के परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी इन चार भेदों की ओर संकेत किया गया है। 2. ब्रह्म को अगम-अगोचर सिद्ध करने के लिए उसे ग्रन्थों के ज्ञान और वाणी से परे बताया गया है। 3. वेद-पुराणों आदि में या वाणी के उपदेश द्वारा ब्रह्म के विषय में जो कुछ बताया गया है, केवल उसका आवरणमात्र है, उसके यथार्थस्वरूप या तत्त्व को इनके द्वारा नहीं जाना जा सकता है। 4. केवल योग-साधना के द्वारा समाधि लगाकर ही ब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सकता है। 5. **भाषा**—राजस्थानी और पहाड़ीमिश्रित खड़ीबोली। 6. **अलंकार**—अलक्ष्य की प्राप्ति में विरोधाभास है।

2. हसिबा षेलिबा ..... कै संगा॥8॥

शब्दार्थ—धरिबा ध्यांन = ध्यान धरना चाहिए; **अहनिसि** = दिन और रात; **कथिबा** = कथन करना चाहिए, कहना चाहिए; **भंग** = अस्थिर, चंचल; **निहचल** = निश्छल, स्थिर, शान्त; **हसै** = हँसते हुए; **षेलै** = खेलते हुए।

प्रसंग—प्रस्तुत शब्दों में गोरखनाथ परमब्रह्म से साक्षात्कार के लिए योगी की योग्यता का निर्धारण करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—परमब्रह्म से साक्षात्कार करने हेतु योगी को हँसना चाहिए, खेलना चाहिए, किन्तु इनके साथ उसे उस परमब्रह्म का भी ध्यान रखना चाहिए। इसका अभिप्राय यही है कि योगी को हँसते-खेलते हुए भी उस ब्रह्म का ध्यान रखना चाहिए। उसे दिन-रात अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप करते समय भी उस ब्रह्म के ज्ञान का कथन अर्थात् स्मरण करते रहना चाहिए। उसे हँसते हुए और खेलते हुए भी अपने मन को भंग अर्थात् अस्थिर (चंचल) नहीं करना चाहिए। इस प्रकार संयम का पालन करते हुए जो निश्चल (शान्तचित्त) होकर रहते हैं, वे सदैव ब्रह्म (नाथ) के साथ रमण करते हैं।

विशेष—1. योगी के लिए संयम एवं चित्त की स्थिरता को अनिवार्य बताया गया है; क्योंकि इन दोनों के बिना उसका मन साधना में नहीं रम सकता। 2. ध्यान तथा योग की प्रक्रिया की अनवरत क्रियाशीलता के विषय में बताया गया है। 3. **भाषा**—राजस्थानी तथा पहाड़ीमिश्रित खड़ीबोली। 'अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियांन' तथा 'ते निहचल सदा नाथ के संग' पर संस्कृत भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। 4. **अलंकार**—अनुप्रास के साथ-साथ स्वरमैत्री का भी मंजुल प्रयोग हुआ है।

(ख) पद (राग रामश्री)

3. मनसा मेरी ..... मेला कीजै॥3॥10॥

शब्दार्थ—मनसा = इच्छा; **ब्यौपार बांधौ** = अपनी गतिविधियाँ अथवा क्रिया-कलाप बन्द करो; **पुरषि** = पुरुष; **उतपनां** = उत्पन्न हो गया है, पैदा हो गया है; **अध्यात्म लागौ** = अध्यात्म की बातों में लग गया है; **पाटण** = पाटन, पत्तन, नगर; **जांनां** = प्रवेश करना है; **इकबीस** = एक और बीस, इक्कीस; **सहंस** = सहस्र, हजार; **षटसां** = छह सौ; **आदू** = आदि; **जप माली** = माला जपता है; **प्यंगुला** = पिंगला; **सुषमन नारी** = सुषुम्ना नाड़ी; **प्रनाली** = नलियों में; **षटसां** = षट्दल कमल, स्वाधिष्ठान चक्र; **षोड़ि कवल** = षोडश दल कमल, विशुद्ध चक्र; **तहाँ बसै** = वहाँ निवास करता है; **फूलन पैठा** = पुष्पित होता है; **तीर** = किनारे; **मतीरा** = तरबूज; **अवधू** = अवधूत, योगी; **बणिंजा** = व्यापार; **अरध बहन्ता** = नीचे बहने वाली; **उरधैं लीजै** = ऊपर ले जाए; **रवि सस मेला** = सूर्य और चन्द्र नाड़ी का मेल।

सन्दर्भ—हठयोग साधना के परमसाधक, नाथपन्थ और नाथ-साहित्य के प्रवर्तक गोरखनाथ की दिव्य 'गोरखबानी' के अन्तर्गत संकलित 'पद' शीर्षक से प्रस्तुत पंक्तियाँ उद्धृत हैं। यह पद राग रामश्री में रचित है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में गोरखनाथ आत्म-प्रबोध के माध्यम से योगी के लिए योग-साधना की विधि का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—हे मेरी इच्छा (मनसा), अब तुम अपना व्यापार बाँधो अर्थात् तुम अब अपना क्रिया-व्यापार बन्द कर यहाँ से चली जाओ; क्योंकि प्राण-पुरुष उत्पन्न हो गया है। आशय यह है कि मन और पवन का संयोग सम्भव हो गया है। इस तरह मन और पवन के योग अथवा प्राणायाम से जागा हुआ योगी अध्यात्म (आत्मा के उद्धार सम्बन्धी प्रयासों) में लग चुका है। उसे इस शरीररूपी नगर में प्रवेश करना है। पवनरूपी पुरुष के लिए बाहर-भीतर आती-जाती हुई साँस ही जप की माला है। इस साँसरूपी माला का पवन-पुरुष दिनभर में 21600 बार जप करता है। इसके परिणामस्वरूप इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना की नाड़ियों (नलियों) में पवन दिन-रात निरन्तर बहता रहता है।

सूक्ष्म तत्त्व से छूटी धारा से स्थूल का निर्माण हुआ है। स्वाधिष्ठान और विशुद्ध चक्र आदि उसी धारा में स्थित (बने हए) हैं। इसी धारा अथवा चक्रों में ब्रह्मचारी अथवा आत्मा निवास करता है। नौ सौ नदियों अर्थात् नौ सौ नाड़ियों से निर्मित सम्पूर्ण नाड़ी जाल पनिहारिन बनकर पुष्टिकर्तृ प्राणधारा से हंस अर्थात् जीव अथवा आत्मा को सींचती हैं, इससे आत्मारूपी बेल पुष्पित हो उठती है। इसके परिणामस्वरूप इला (चन्द्र नाड़ी/गंगा) के किनारे शीतलतादायक ज्ञानरूपी तरबूज उत्पन्न हो जाता है। इस तरबूज का बार-बार व्यापार करना चाहिए। नीचे को बहनेवाली अमृत अथवा पवन की धारा को ऊपर ले जाइए अर्थात् ब्रह्माण्ड में चढ़ाइए तथा सूर्य एवं चन्द्र नाड़ियों का मिलन कराइए।

विशेष—1. इस पद में यह स्पष्ट संकेत किया गया है कि योग-साधना के लिए सबसे पहले इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। इच्छाओं के दमन के पश्चात् ही मन को पवन (प्राणवायु) के साथ प्रवृत्त किया जा सकता है। यह योग-साधना का प्रथम चरण है। 2. मनुष्य प्रतिदिन 21600 बार साँस लेता है। योग-साधना के अनुसार मनुष्य के साँस लेते समय 'स' की ध्वनि और साँस छोड़ते समय 'हं' की ध्वनि उत्पन्न होती है। इस तरह मनुष्य दिन-रात 'हंस' शब्द का जाप स्वयं ही अनजाने में करता रहता है। इसे ही 'अजपा जाप' अर्थात् अनायास होनेवाला जाप कहते हैं। 3. इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों में प्राणवायु निरन्तर बहती रहती है। षट्दल कमल और षोडशदल कमल इसी प्राणवायु धारा में बने हुए हैं। हंसरूपी जीव अथवा आत्मा इसी धारा में निवास करता है। प्राणवायु की साधना से इस हंस की पुष्टि होती है। 4. सद्गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। 5. **भाषा**—राजस्थानी, पहाड़ीमिश्रित खड़ीबोड़ी और सांकेतिक। 6. **अलंकार**—सम्पूर्ण पद में रूपक, रवि और चन्द्रमा को मिलाने में विरोधाभास।

प्र.7. खुसरो के निम्नलिखित दोहों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए तथा इनकी विशेषता भी लिखिए-

(क) खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए एक रंग॥

(ख) देख मैं अपने हाल को, रोऊं ज़ार-ओ-ज़ार।
वै गुनवन्ता बहुत है, हम हैं औगुन हार।

उत्तर

दोहों की व्याख्या

(क) खुसरो रैन .... एक रंग॥

शब्दार्थ—पी = प्रियतम (ब्रह्म); **दोउ** = दोनों; **भए** = हो गए; **रंग** = रंगना; **पीउ** = पिता; **संग** = साथ में।

सन्दर्भ—प्रस्तुत 'दोहा' खड़ी बोली के प्रवर्तक आदिकालीन कवि अमीर खुसरो द्वारा रचित है।

प्रसंग—इसमें कवि ने माया-ग्रस्त होकर संसार में भटक रही आत्मा के ज्ञान होने पर अपने पिता परमात्मा के घर जाने का भी संकेत दिया है। इसी को कवि ने इसमें व्यक्त किया है। वह कहता है—

व्याख्या—जब मैं जागी तो मुझे प्रतीत हुआ कि दिन निकल आया है। खुसरो कहते हैं कि रात के बाद दिन निकलता है। तब मैंने अपने को प्रिय ब्रह्म के साथ पाया। यह जानकर मेरे मन में खुशी का अनुभव हुआ। परमात्मा, जो मेरे पिता हैं, को भी पाकर मानो दोनों की खुशी में अपने को रंगा हुआ पाया। अर्थात् मैंने ब्रह्म तथा परमात्मा दोनों को अपने नजदीक पाया, जो मेरे मन को खुशी देने लगा। मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। ब्रह्म और परमात्मा दोनों ही पिता हैं। ये मेरे सुहाग के प्रतीक हैं।

विशेष—1. इस दोहे में खड़ी बोली, उर्दू, तथा अद्वैत भावना के दर्शन होते हैं। 2. इसमें रहस्य-भावना का चित्रण है। 3. प्रसाद गुण है। 4. खुसरो निर्गुणोपासक हैं। 5. प्रतीकात्मकता, आध्यात्मिकता तथा शान्त रस है।

(ख) देख मैं .... औगुन हार॥

शब्दार्थ—हाल = दशा; **ज़ार-ओ-ज़ार** = फूट-फूटकर; **गुनवन्ता** = गुणवान; **औगुन** = अवगुण।

सन्दर्भ—प्रस्तुत 'दोहा' खड़ी बोली के प्रवर्तक आदिकालीन कवि और अमीर खुसरो द्वारा रचित है।

प्रसंग—इस दोहे में अमीर खुसरो ने ईश्वर को सम्बोधित करते हुए अपनी विरह-दशा का वर्णन किया है।

व्याख्या—अमीर खुसरो कहते हैं कि हम जीवात्माएँ सभी अवगुणों से भरी हैं और आप गुणवान हैं। संसार में अपनी दुर्दशा देखकर मेरा फूट-फूटकर रोने को दिल करता है। अमीर खुसरो कहते हैं कि संसार में आकर ही, अवगुणों से, माया से घिरकर मैं बुरी तरह हार चुका हूँ। अपनी दशा बिगाड़कर, देख! आज मुझे सत्य का आभास हुआ है।

विशेष—1. खड़ी बोली है। 2. दोहा छंद है। 3. प्रसाद गुण। 4. लाक्षणिकता है। 5. ईश्वर के गुणों का ज्ञान हुआ है। 6. अपनी दशा पर अमीर खुसरो फूट-फूटकर रो रहे हैं। 7. विरह-भावना है। 8. भावनात्मक रहस्यवादी है। 9. आध्यात्मिकता वर्णित है। 10. उर्दू शब्दावली है। 11. 'हम हैं'—अनुप्रास अलंकार है। 12. अद्वैत—भावना है।

❑

TOUCH 'n PASS

UNIT-IV

भक्तिकालीन निर्गुण कवि

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साखी किसे कहते हैं?

उत्तर 'साखी' शब्द 'साक्षी' का तद्भव रूप है। साक्षी का अर्थ है—प्रमाण या प्रत्यक्षदर्शी गवाह अर्थात् वह व्यक्ति जिसने स्वयं किसी घटना अथवा तथ्य का स्वयं अनुभव किया है। कबीर ने अपने दोहों में अपने जीवनानुभवों को प्रमाण के रूप में व्यक्त किया है, इसीलिए उन्हें साखी कहा गया है। इस तरह कबीर के दोहे साखी का पर्याय हो गए हैं।

प्र.2. सत्गुरु के बाण का शिष्य पर क्या प्रभाव पड़ा? संक्षेप में बताइए।

उत्तर जब सत्गुरु ने उपदेशरूपी बाणों की वर्षा की तो प्रेम रूपी एक बाण शिष्य को ऐसा लगा कि वह उसके शरीर में फँसकर रह गया, जो हरपल उसे गुरु के प्रेमरूपी प्रहार का स्मरण कराता रहता है।

प्र.3. कबीर के अनुसार चन्द्रमा की कितनी कलाएँ हैं?

उत्तर कबीर के अनुसार चन्द्रमा की चौदह कलाएँ हैं। उनकी इस मान्यता पर इस्लामी संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

प्र.4. कबीर के रामानन्द के शिष्यत्व और उनके शेख तकी के समकालीन होने के विषय में आपका क्या विचार है?

उत्तर कबीर रामानन्द के शिष्य थे तथा और शेख तकी के समकालीन थे। इसका कबीर ने स्वयं अपनी रचनाओं में वर्णन किया है। शेख तकी सिकन्दर लोदी का गुरु और रामानन्द का प्रतिद्वन्द्वी था, इसलिए कबीर उसकी कटु आलोचना किया करते थे। इस कारण शेख तकी के कहने पर सिकन्दर लोदी ने उन पर अनेक अत्याचार किए। इसका उल्लेख कबीर ने इस प्रकार किया है—

शेख तकी तब मीजैं हाथा। सूखे मुँह नहीं आवै बाता।

प्र.5. कबीर ने गुरु को ईश्वर से भी उच्च स्थान दिया है। स्पष्ट रूप से समझाइए।

उत्तर कबीर ने अपनी रचना में बताया है, गुरु ईश्वर से भी श्रेष्ठ है; क्योंकि गुरु ही ईश्वर से साक्षात्कार कराने में सक्षम है। गुरु की कृपा से ही जन्म-मरण चक्र से मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि गुरु शिष्य को ज्ञान प्रदान करके देवत्व प्रदान कर सकते हैं। इस विषय में कबीर ने कहा है—

बहिलहारी गुरु आपणै, द्योहाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार॥

प्र.6. कबीर और जायसी ने प्रेम का माध्यम किसे माना है? उदाहरण के लिए—सोदाहरण समझाइए।

उत्तर कबीर और जायसी ने प्रेम का माध्यम **विरह** या **वेदना** को माना है; उदाहरण के लिए—

कबीरदास के अनुसार,

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै, तब पैठे इह माहिं॥

जायसी के अनुसार,

मुहम्मद कवि जो प्रेम का, ता तन रकत न मांसु।
जेहि मुख देखा तेईं हंसा, सुना तो आये आंसु॥

प्र.7. जायसी द्वारा उनकी शारीरिक कुरूपता के सम्बन्ध में लिखा गया दोहा लिखिए।

उत्तर जायसी ने अपनी शारीरिक कुरूपता के सम्बन्ध में एक दोहा लिखा है—

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी, सोई विमोहा जेई कवि सुनी।
मुहम्मद बायीं दिसि तजा, एक सखन एक आँखि।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. ससुराल में लड़की को सकुचाते हुए किसके सामने हाथ जोड़े रहना पड़ता है?

उत्तर ससुराल में लड़की को सकुचाते हुए अपनी नाक-भौं सिकोड़ती सास-ननद के सामने हाथ जोड़े रहना पड़ता है।

प्र.9. 'नैन खंजन दुइ केलि करेहीं। कुच-नारंग मधुकर रस लेहीं।' में निहित उपमा और रूपक को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर इस पंक्ति में पद्मावती के नयनों की उपमा खंजन पक्षी के नयनों से दी गई है और स्तनों को नारंगी बताकर रूपक की रचना की गई है।

प्र.10. 'मानसरोदक' की चकवी चकवे से यह क्यों कहती है कि अब हमारा मिलन नहीं हो पाएगा?

उत्तर 'मानसरोदक' की चकवी चकवे से ऐसा इसलिए कहती है; क्योंकि एक चाँद स्वर्ग में है, जो रात्रि में चमकता है और एक चाँद यह (पद्मावती) इस जल में है, जो दिन में ही रात्रि के होने का आभास देता है। जब दिन में भी रात्रि जैसा वातावरण होगा, तब हमारा मिलन कभी नहीं हो पाएगा। एक किंवदन्ती के अनुसार चकवा-चकवी का मिलन दिन में ही हो सकता है।

प्र.11. 'मानसरोदक' में जल-क्रीडा विशेष का निर्णय हो जाने पर सखियों ने अपनी-अपनी जोड़ी कैसे बनाई?

उत्तर 'मानसरोदक' में जल-क्रीडा विशेष का निर्णय हो जाने पर साँवली ने साँवली के साथ और गोरी ने गोरी के साथ अपनी जोड़ी बनाई।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कबीर की भाषागत प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

कबीर की भाषागत प्रमुख विशेषताएँ

1. कबीर की भाषा सीधी-सादी एवं सरल है। कबीर की उलटबाँसियाँ और पारिभाषिक शब्दों वाले पद अवश्य क्लिष्ट हैं। उन पदों को छोड़कर कबीर का सम्पूर्ण साहित्य साधारण पढ़े-लिखे की समझ में सरलता से आ जाता है। इसीलिए कबीर की साखियों का इतना अधिक प्रचार है।
2. कबीर का अधिकांश काव्य गेय है।
3. कबीर की भाषा विषयानुकूल बदलती रहती है। जब वे मुसलमान सूफियों के विषय में कुछ कहते हैं तो उसमें अरबी एवं फारसी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करते हैं; जैसे—

   मियाँ तुम्हसौ बोल्यां वाणी नहीं आवै।
   हम मसकीन खुदाई बन्दे, तुम्हारा जसमन भावै॥
   अल्लाह अबील दीन का साहिब, जारे नहीं फुरमाया।
   मुरसिद पीर तुम्हारे है को, कहा थै आया॥

   इसी प्रकार जब कबीर हिन्दुओं के साधु-सन्तों के विषय में कुछ टिप्पणी करते हैं तो वे हिन्दी के तद्भव शब्दों का प्रयोग करते हैं; जैसे—

   निरवैरी निहकामता, साँई सेती नेह।
   विषिया सूँ न्यारा रहै, सन्तनि का अंग एह॥
4. कबीरदास ने व्याकरण के नियमों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। **डॉ० सिद्धनाथ तिवारी** के अनुसार—"जब हम उनकी आँखिन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।"
5. कबीर साहित्य के मर्मज्ञ **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने कबीर की भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है—बन गया है तो सीधे-साधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कबीर के सामने कुछ लचर-सी नजर आती है। उसमें मानो हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को न कर सके, और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों की भाषा में पाई जाती है।"

प्र.2. कबीरदास की भाषा को साहित्यकारों ने किस प्रकार परिभाषित किया है? आलोचकों के मतों को संक्षेप में लिखिए।

उत्तर कबीरदास की भाषा में विभिन्न भाषाओं का सम्मिश्रण पाया जाता है। उन्होनें भाषा की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। भाषा में जो कुछ सौन्दर्य है, उनकी तीव्र अनुभूति के कारण है। विभिन्न आलोचकों ने कबीर की भाषा का मूल्यांकन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। किसी आलोचक ने उनकी भाषा को ब्रज, किसी ने अवधी तो किसी ने पंजाबी भी बताया है। उदाहरण के लिए, कुछ आलोचकों के मत निम्न प्रकार प्रस्तुत हैं—

डॉ० उदयनारायण तिवारी—"कबीर की मूल वाणी का बहुत कुछ अंश उनकी मातृभाषा बनारसी बोली में ही लिखा गया था, किन्तु उनके पदों का पछाँह की साहित्यिक भाषाओं में रूपान्तर कर दिया गया है।"

डॉ० त्रिगुणायत के अनुसार, "कबीर ने किसी एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। उनकी बोलियों में हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि कई भाषाओं का सम्मिश्रण तो मिलता ही है, साथ-ही-साथ खड़ीबोली, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, मारवाड़ी आदि उप-भाषाओं का भी प्रचुर प्रयोग किया है।"

डॉ० सिद्धनाथ तिवारी—"हम जब उनकी आँखिन देखी बातों से आगे बढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि कबीर भाषा का सरल पथ छोड़कर रूखड़े मार्ग पर यात्रा कर रहे हैं।"

डॉ० रामकुमार वर्मा—"कबीर ग्रन्थावली की भाषा में पंजाबीपन अधिक है।"

डॉ० श्यामसुन्दरदास—"कबीर ग्रन्थावली की भाषा पंचमेल खिचड़ी है।"

डॉ० बाबूराम सक्सेना—"कबीर अवधी के प्रथम सन्त कवि हैं।"

रेवरेण्ड अहमदशाह—"कबीर बीजक की भाषा बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर के आस-पास की बोली है।"

पूर्वी भाषा—कतिपय विद्वानों ने कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा बताया है। कबीर की भाषा को पूर्वी भाषा मानने वालों का आधार सम्भवत: कबीर बीजक की निम्नलिखित साखी है—

बोली हमरी पूरब की, हमें लखै नहिं कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय॥

लेकिन वास्तविक रूप में कबीर की भाषा पूर्वी नहीं है। कबीर की भाषा में ब्रज, पंजाबी और राजस्थानी के बहुत अधिक शब्दों का समावेश है। **परशुराम चतुर्वेदी** ने उपर्युक्त साखी का आध्यात्मिक अर्थ लगाया है। 'कबीर साहित्य की परख' में उन्होंने इस साखी का अर्थ दिया है—"हमारा कथन मौलिक दशा से सम्बन्ध रखता है, जिस कारण हमें कोई समझ नहीं पाता। हमारी बात वही समझेगा, जिसे उसका अनुभव हो चुका है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है। वास्तव में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत अन्य मतों की अपेक्षा कहीं अधिक संगत प्रतीत होता है।

प्र.3. निर्गुणवादी सन्त-काव्य की पाँच विशेषताएँ सन्त कबीर के परिप्रेक्ष्य में दीजिए।

उत्तर

निर्गुणवादी सन्त-काव्य की विशेषताएँ एवं कबीर

1. **निराकार ईश्वर में विश्वास**—सभी निर्गुणवादी सन्त-कवियों का निराकार और निर्गुण परमात्मा में विश्वास था; जैसे—

   पण्डित मिथ्या करहुँ बिचारा। ना वह सृष्टि, न सिरजनहारा॥
   जोति स्वरूप काल नहिं उहवाँ, बचन न आहि सरीरा॥
   धूल-अधूल पवन नहीं पावक, रवि ससि धरनि न नीरा॥

2. **रूढ़ियों तथा आडम्बरों का विरोध**—सभी निर्गुणवादी सन्त-कवियों ने धर्म, समाज एवं लोक-व्यवहार की कढ़ियों, पाखण्ड एवं कदाचार का प्रबल विरोध किया है। कबीर इसमें सर्वाधिक प्रखर थे—

   पाथर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
   ताते तो चकिया भली, पीस खाय संसार॥

3. **जाति-पाँति, ऊँच-नीच का विरोध**—निर्गुणवादी सन्त-कवि जाति-पाँति एवं वर्गभेद के प्रबल विरोधी हैं। ये समस्त धर्म, जाति, समुदाय तथा व्यक्ति को एक ही दृष्टि से देखते हैं; जैसे—

   जाति पाँति पूछे नहिं कोई।
   हरि को भजै, सो हरि को होई॥

4. **बहुदेववाद का विरोध**—सभी निर्गुणवादी सन्त-कवियों के मतानुसार ब्रह्म एक ही है और उसी से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप्लावित है। उन्होंने बहुदेववाद का विरोध किया है।

अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा शाखा भए, पात भया संसार॥

5. **सद्गुरु का महत्त्व**—सभी निर्गुणवादी सन्त-कवियों ने सदाचारी एवं वास्तविक ज्ञानी गुरु की महत्ता का वन्दनीय वर्णन किया है।

खुली केवरिया, मिटी अँधियारा, धनि सतगुरु जिन दिया लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुर चरन में रहत समाय॥

प्र.4. कबीर के रहस्यवाद का अन्य वादों पर क्या प्रभाव पड़ता है? संक्षेप में बताइए।

उत्तर

कबीर के रहस्यवाद पर अन्य वादों का प्रभाव

कबीर के रहस्यवाद को अनेक परम्परागत वादों ने प्रभावित किया है, जिनमें से कुछ का परिचय निम्न प्रकार है—

1. **वेद के निर्गुण ब्रह्म का प्रभाव**—कबीर की रहस्यवादी भावनाओं की काव्याभिव्यक्ति के विषय में एक विशेष उल्लेखनीय सत्य यह है कि वेदों के निराकार ब्रह्म का रहस्यवादी भाव इनके अतिरिक्त कहीं स्पष्ट रूप से दृष्टिगत नहीं हुआ है। कबीर का ब्रह्म निर्गुण, अजन्मा, निराकार, ईश्वरीय परम सत्ता है। इसे उन्होंने राम के रूप में सम्बोधित किया है—

राम राम राम रमि रहिए।
साकत सेती भूलि न कहिए॥

2. **उपनिषदों का प्रभाव**—कबीर की रचनाओं में अनेक स्थानों पर उपनिषदों की रहस्यवादी विचारधारा दृष्टिगत होती है। उपनिषदों में ब्रह्म को नेति-नेति (जो इतना ही नहीं अर्थात् वर्णन से भी परे है) कहकर निरूपित किया गया है। कबीर भी कहते हैं—

जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तैं पातरा, ऐसा तत्त अनूप॥

ब्रह्म के मिलन से जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन कबीर ने उपनिषदों के अनुसार ही किया है—

मोतियाँ बरसे रौरे देसवा दिन राती।
मुरली सब सुनि आनँद भयो, हियो बरै दिन राती॥

3. **सूफी रहस्यवाद का प्रभाव**—कबीर के रहस्यवाद को सूफी-काव्य के रहस्यवाद ने भी प्रभावित किया है। इसी प्रभाव के कारण इनके काव्य में परमात्मा के प्रति प्रणय-भाव की अभिव्यक्ति हुई है—

बहुत दिनन तें प्रीतम पाए, भाग बड़े घर बैठे आए।
मन्दरि माहिं भया उजियारा, लै सूती अपना पिय प्यारा॥

प्र.5. कबीरदास के समय की राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

राजनैतिक परिस्थितियाँ

भारत के मध्यकालीन इतिहास की दृष्टि से मुहम्मद तुगलक (संवत् 1325-53) तथा फिरोजशाह तुगलक (संवत् 1351) के शासन के परिणामस्वरूप समाज पर घोरसंकटों का भार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। इसके उपरान्त तैमूर का नृशंस आक्रमण हुआ, जिसके स्मरण मात्र से तिरस्कार की भावना वीभत्स रूप में बलवती हो उठती है। इस कारण से हिन्दू समाज की रीढ़ टूट गई।

इसके अतिरिक्त गुलाम, खिलजी, तुगलक तथा सैयद शासकों के पश्चात् लोदी वंश के शासकों ने भी हिन्दुओं के साथ अन्यायपूर्ण क्रूर व्यवहार करने में कोई कसर न उठा रखी थी। कबीर के समय में सिकन्दर लोदी शासक था। कबीर ने उसकी एवं उसके गुरु शेख तकी की कटु आलोचना आरम्भ कर दी। शेख तकी रामानन्द से चिढ़ा हुआ था; क्योंकि उनके कारण उसके धर्म-प्रचार में काफी बाधाएँ आ रही थीं। कहते हैं कि रामानन्द संवत् 1580 तक जीवित रहे थे, किन्तु उन पर हाथ डालना सिकन्दर लोदी के लिए भी कठिन था। रामानन्द का भारतीय जनता पर व्यापक प्रभाव था। ऐसे व्यक्ति को छेड़ने के भारी राजनैतिक दुष्परिणाम हो सकते थे। परिणामस्वरूप सिकन्दर लोदी का नजला कबीर पर गिरा और उन्हें हर तरह से प्रताड़ित किया गया। 'कबीर-परचै' के

अनुसार उन्हें जंजीरों में बाँधकर घसीटा गया, लेकिन कबीर के मुँह को सिकन्दर लोदी बन्द नहीं कर पाया। कबीर ने स्पष्ट रूप से राजनैतिक परिस्थिति पर अपने विचार व्यक्त नहीं किए हैं, किन्तु उनकी धर्म-सम्बन्धी वाणियों पर तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का व्यापक प्रभाव था—

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुअन न देई॥
वेस्या के पायन तै सोए, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गी मुर्गा खाई।
× × ×
काँकर पाथर जोड़ के, मस्जिद लई चिनाय।
ता पै मल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

प्र.6. निम्नलिखित पदों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) सतगुरु लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या शरीर॥6॥

(ख) आइ न सकौं तुझ पैं, सकूँ न तुझे बुलाइ।
जियरौं यों ही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ॥10॥

उत्तर

पदों की व्याख्या

(क) सतगुरु लई ..... रह्या शरीर॥6॥

शब्दार्थ—लई = लिया; **कमाँण** = धनुष; **बाँहण** = चलाना; **बाह्या** = चलाया; **जु** = जैसा।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद कबीर द्वारा विरचित 'गुरुदेव कौ अंग' से अवतरित है।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कबीरदास ने गुरु के उपदेशों के प्रभाव का वर्णन है।

व्याख्या—कबीरदास जी कहते हैं, सतगुरु ने कमान हाथ में लेकर तीर चलाना शुरू किया और एक बाण 'प्रेम' का चलाया जो शरीर के भीतर प्रवेश करके अंदर ही रह गया। बाण है—गुरु ज्ञान के शब्द। गुरु ज्ञान के शब्दों के तीर सीधे शरीर (आत्मा) में प्रवेश करते हैं और शिष्य को घायल कर देते हैं। धनुष से आशय 'साखी' से है साखी के शब्दों के तीर ही गुरु ज्ञान के तीर हैं।

विशेष—1. इस दोहे में रूपकाशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है। 2. राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग। 3. प्रसाद गुण।

(ख) आइ न ..... तपाइ तपाइ॥10॥

शब्दार्थ—सकौं = सकूँ; **जियरा** = हृदय; **लेहुगे** = लोगे; **तपाइ** = तपाकर।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद कबीर द्वारा विरचित 'बिरह कौ अंग' से अवतरित है।

व्याख्या—वियोगिनी आत्मा कहती है कि हे राम! न तो मैं तेरे पास आ सकती हूँ और न तुझे अपने पास बुला सकती हूँ। अत: न मिल पाने की विवशता में जल रही हूँ। भाव यह है कि सांसारिक बाधाएँ ब्रह्म एवं जीव के मिलन में बाधा उपस्थित करती हैं और आत्मा कष्ट पाती है।

विशेष—1. आत्मा की वियोगजन्य दशा का चित्रण है। 2. वेदान्त दर्शन का प्रतिपादन।

प्र.7. जायसी के 'मानसरोदक-खण्ड' के अनुसार स्त्री को कौमार्यावस्था में प्राप्त कोई तीन अधिकार लिखिए।

उत्तर मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' के 'मानसरोदक-खण्ड' में स्त्री को प्राप्त निम्नलिखित अधिकारों का वर्णन किया है—

1. **आमोद-प्रमोद का अधिकार**—कौमार्यावस्था में पिता के घर रहते स्त्री को अपनी सखी-सहेलियों के साथ घूमने-फिरने, बोलने, झूला-झूलने आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है, लेकिन ससुराल में जाते ही उसके इन आमोद-प्रमोदों पर प्रतिबन्ध लग जाता है और यह सबकुछ पति की इच्छा पर निर्भर हो जाता है—

झूलि लेहू नैहर जब ताईं। फिरि नाहिं झूलन देहहिं साईं॥

2. **गुणों की अवहेलना**—पिता के घर में रहते समय लड़की के गुण-दोषों की वास्तविक विवेचना होती है, अपितु देखा यह जाता है कि उसके दोषों को अनदेखा करके उसके गुणों को प्रोत्साहित किया जाता है। जबकि ससुराल में ठीक इसके विपरीत होता है, वहाँ उसके गुणों में भी दोष निकाले जाते हैं और फिर उससे सम्बन्धित व्यर्थ की बातें की जाती हैं—

गुन पूछिहि और लाइहि दोखू। कौन उतर पाउब तहँ मोखू॥

3. **बोलने का अधिकार**—लड़की को अपने माता-पिता के यहाँ रहते समय बोलने का पूरा अधिकार होता है। वह अपनी इच्छा-अनिच्छा को नि:संकोच व्यक्त कर सकती है, लेकिन ससुराल में उससे यह अधिकार छीन लिया जाता है। वहाँ उसकी सास और ननद उसके मुँह खोलते ही उसके पीछे पड़ जाती हैं। कठोर स्वभाव वाला ससुर भी अपनी टोका-टाकी से बाज नहीं आता—

सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न निसरै देही॥

प्र.8. काव्य के लिए कौन-सी शैलियाँ सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं? जायसी की काव्य-शैलियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर काव्य के लिए वर्णनात्मक और भावात्मक दो ही शैलियाँ सबसे अधिक उपयुक्त हैं। वर्णनात्मक शैली में रम्य काव्य-रचना करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, जबकि भावात्मक काव्य में यह रम्यता स्वयं ही समाहित हो जाती है, लेकिन जायसी का दोनों ही काव्य-शैलियों पर एक समान अधिकार है। जितनी सफलता उन्हें भावात्मक शैली में प्राप्त हुई है, उतनी ही सफलता उन्होंने वर्णनात्मक शैली में प्राप्त की है। उनकी दोनों ही शैलियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **वर्णनात्मक शैली**—जहाँ पर कथ्य को गति देनी होती है, वहाँ पर साहित्य में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस शैली में साहित्य के नीरस होने की सम्भावना बहुत अधिक होती है; अत: उसे सरस और रम्य बनाने के लिए अलंकारों का भी प्रयोग बड़ी प्रचुरता के साथ अत्यधिक सावधानी से करना पड़ता है। काव्य के सम्बन्ध में तो बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बड़ी है; क्योंकि अधिक अलंकारों के प्रयोग से काव्य के बोझिल होने का भय निरन्तर बना रहता है। सरल-सरस सीधी-सादी भाषा में काव्य करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य अवश्य है, लेकिन जायसी ने इसे सफलतापूर्वक कर दिखाया है।

'मानसरोदक-खण्ड' में स्नान के लिए अपनी सखियों के झुण्ड के साथ चली पद्मावती का जायसी ने ऐसा मनोहारी चित्र खींचा है कि वह स्त्रियों की भीड़ न लगकर फूलों का एक लुभावना गुल्म लगता है। इसके लिए उन्होंने पद्मावती की सखियों के नाम के रूप में पुष्पों के नामों का चुनाव करके उपवन जैसा अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया है—

कोई चम्पा कोई कुन्द सहेली। कोई सुकेत, करना, रस बेली।
कोई सु गुलाल सुदरसन राती। कोई सो बकावरि-बकुचन भाँती॥

2. **भावात्मक शैली**—हिन्दी साहित्य की समझ विधाओं में काव्य भावाभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। काव्य के माध्यम से जायसी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। ससुराल में सास और ननद के अत्याचारों से पीड़ित युवती के मन के उद्‌गार इसके अलावा और क्या हो सकते हैं—

सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारून ससुर न निसरै देही॥
× × ×
सासु ननद के भौंह सिकोरे। रहब सँकोचि दुवौ कर जोरे॥

जीवन की परिभाषा के लिए इससे बढ़कर भला और क्या भाव हो सकते हैं—

मुहमद बाजी पेम के, ज्यौं भावै त्यौं खेल।
तिल फलहि के सँग ज्यों, होइ फुलायल तेल॥

इस प्रकार जायसी ने वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों ही शैलियों में एकसमान मनो-मुग्धकारी काव्य-रचना करके अपनी कुशल काव्यधर्मिता को सिद्ध कर दिया है।

प्र.9. निम्नलिखित पदों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पाल पर ठाढी भईं॥
देखि सरोवर हँसै कुलेली। पद्मावति सौं कहहिं सहेली॥
ए रानी! मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥

जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम, कित यह सरवर-पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देहीं।
पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह॥2॥

(ख) यहु तन जालै मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ॥
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साई के चित्त॥

उत्तर **पदों की व्याख्या**

(क) खेलत मानसरोवर ..... जनम निबाह॥2॥

शब्दार्थ—पालि = सरोवर का बाँध या ऊँचा किनारा; **ठाढ़ी** = खड़ी; **केली** = क्रीडा करती हैं; **नैहर** = मायका; **गौनब** = जाऊँगी; **काह** = क्या; **की** = अथवा; **जनम** = जन्म।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत्' के 'मानसरोयक-खण्ड' से उद्धृत है।

प्रसंग—इस अवतरण में पद्मावती और सखियों के पारस्परिक मधुर वार्तालाप का वर्णन है।

व्याख्या—पद्मावती और उसकी सखियाँ खेलती हुई मानसरोवर के किनारे पर जाकर खड़ी हो गई। सरोवर की सुन्दरता को देखकर वे सखियाँ उसमें क्रीड़ा करने के लिए कहने लगीं और पद्मावती से बोली, हे रानी! मन में विचार करके देख लो कि इस नैहर में मात्र चार दिन (थोड़े दिन) ही रहना है। जब तक पिता का राज्य है तब तक जो खेलना चाहो, मन भर कर खेल लो। फिर हम कहाँ और कहाँ इस मानसरोवर का किनारा होगा। फिर आना हमारे हाथ कहाँ होगा और कहाँ मिलकर एक साथ खेलना हो सकेगा। सास-ननद व्यंग्य-वाक्यों से प्राण ले लेंगी तथा निर्दयी ससुर (पीहर को) आने नहीं देंगे। प्यारे प्रियतम इन सबके ऊपर रहते हैं। वे न जाने कैसा व्यवहार करेंगे, मालूम नहीं सुख से रखेंगे या दु:ख से। न जाने जन्म भर निर्वाह कैसे होगा?

काव्य-सौन्दर्य—1. इस अवतरण में तत्कालीन समाज की वधुओं की परतन्त्र स्थिति का पता चलता है।

2. जायसी ने आध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत किया है। यहाँ 'नैहर' से तात्पर्य इस लोक तथा 'ससुराल' से तात्पर्य परलोक है। जीव का इस संसार में चार दिन ही रहना होता है, फिर परलोक को गमन करना होता है।

3. समासोक्ति अलंकार।। 4. अवधी भाषा। 5. मसनबी शैली। 6. रस-शृंगार रस। 7. छन्द-दोहा-चौपाई।

(ख) यहु तन ..... के चित्त॥

शब्दार्थ—जालै = जलाकर; **मसि** = स्याही; **नाउँ** = नाम; **करंक** = कंकाल, हड्डियों की; **रग** = शरीर की नसें; **तन्त** = चमड़े से बने तार, जो राग निकालने वाले वाद्य में लगे होते हैं; यथा—तम्बूरा, वायलन आदि; **रबाब** = सितार वाद्य, जिसका आकार सारंगी के समान होता है; **नित्त** = नित्य, सदा, हमेशा; **साईं** = स्वामी, प्रभु, भगवान्; **चित्त** = मन, अन्त:करण।

सन्दर्भ—स्वभाव से अक्खड़ और फक्कड़, व्यवहार से सन्त और वाणी से सत्य एवं स्पष्टवक्ता, महान् सन्त कबीरदास के स्वानुभव की प्रत्यक्ष साक्षी रही साखियों से प्रस्तुत साखी उद्धृत है।

प्रसंग—इस दोहे में सन्त कबीर कहते हैं जीवात्मारूपी विरहिणी अपना सर्वस्व मिटाकर अपने परमात्मा (प्रियतम) के पास प्रेम का सन्देश देने के लिए व्याकुल है।

व्याख्या—परमात्मा के विरह में व्याकुल जीवात्मा कहती है कि मैं अपने शरीर को जलाकर उसकी स्याही बनाऊँगी। इसके बाद अपनी हड्डियों की लेखनी बनाकर उस स्याही से राम का नाम लिखकर प्रियतम राम के पास बार-बार भेजती रहूँगी, जिससे वे मुझ विरहिणी की विरह-दशा और कष्ट को समझ सकें। कबीर कहते हैं कि प्रभु-विरही भक्त के शरीर की सभी नाड़ियाँ ताँत के समान हो जाती हैं और उसका शरीर रबाब (सितार) के समान हो जाता है। प्रियतम का विरह इस शरीररूपी रबाब को निरंतर बजाता रहता है, किन्तु इससे निकलने वाली ध्वनि को या तो प्रियतम प्रभु ही सुन पाते हैं या स्वयं विरही भक्त का चित्त, कोई दूसरा व्यक्ति इसे नहीं सुन पाता है।

विशेष—1. यहाँ पर आत्मा की परमात्मा के प्रति विरह की अभिव्यक्ति हुई है। 2. जीवात्मा प्रेम की दशा में अपना सब कुछ मिटाकर परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल रहती है। 3. विरहावस्था में भक्त और प्रभु की एकात्मक अवस्था का निदर्शन द्रष्टव्य है। 4. प्रभु-विरही भक्त के शरीर तथा मन की दशा का सटीक वर्णन किया गया है। 5. **भाषा**—सधुक्कड़ी। 6. **अलंकार**—पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कबीर के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं एवं साहित्यिक व्यक्तित्व का विवेचन कीजिए।

उत्तर

कबीरदास

जन्मकाल—'कबीर-चरित-बोध' में कबीर का जन्म विक्रम संवत् 1455 (सन् 1398 ई०) की ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन हुआ बताया गया है। अधिकतर विद्वान् इसी को इनका जन्मकाल मानते हैं। यद्यपि 'कबीर चरित-बोध' के इस पद की प्रामाणिकता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है, तथापि संवत् 1455 की ज्येष्ठ-पूर्णिमा में ज्योतिष-गणना के अनुसार सोमवार (चन्द्रवार) पड़ना सिद्ध होने के कारण अनेक विद्वान इस पद को प्रामाणिक मानते हैं—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाट ठये।
जेठ सुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रकट भए॥
घन गरजे दामिनी दमके, बूँदें बरसें झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिलिहैं, वहँ कबीर भानु प्रकाश भए।

इसके पश्चात् भी इनका जन्म भिन्न-भिन्न विद्वानों के अनुसार अलग-अलग वर्ष में माना गया है। **हण्टर** ने सन् 1330 ई०, **फर्रूखसियर** ने सन् 1400 ई०, **बील** ने सन् 1490 ई० एवं **मेकालिफ** ने सन् 1398 ई० माना है। इन सबमें सर्वाधिक प्रामाणिक सन् 1398 ई० (संवत् 1455) माना जाता है।

मगर क्या काशी में कभी 'लहरतारा' नामक तालाब था, यह बात कहीं भी स्पष्ट नहीं है। 'बनारस गजेटियर' के अनुसार, यह 'लहरतारा' आजमगढ़ जिले के बेलहरा ग्राम का बेलहरा तालाब है, जिसे 'लहरतारा' भी कहा जाता है, किन्तु इस मत की पुष्टि कहीं भी नहीं होती। अधिकतर साहित्यान्वेषी इसे काशी (वाराणसी) का 'लहरतारा' तालाब मानते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा कबीर को '**मगहर**' में उत्पन्न हुआ मानते हैं। इन्होंने कबीर की "**पहले दर्शन मगहर पायो, पुनि कासी बसे आई**" पंक्ति के आधार पर अपना यह मत प्रस्तुत किया है, किन्तु जन्मस्थान के निर्धारण हेतु यह पंक्ति पर्याप्त नहीं है। कुछ विद्वान् 'मगहर' को कबीर की ननिहाल मानते हैं। कुछ यह मानते हैं कि उनका जन्मस्थान मगहर और काशी के मध्य जंगल में तब हुआ था, जब उनके माता-पिता काशी आ रहे थे। इन मतों के पश्चात् भी अधिकतर विद्वान् काशी को ही इनका जन्मस्थान मानते हैं। इन विद्वानों के मत का आधार कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—

तू ब्राह्मण, मैं काशी का जुलाहा।
× × ×
सकल जनम शिवपुरी गँवाया।

इन विद्वानों ने अपने मत की पुष्टि में **अनन्तदासकृत** 'कबीर परचै' की यह पंक्ति भी प्रस्तुत की है—

साँचो भगत कबीर है, कासी प्रगट्यो आई।

इस प्रकार कबीर के जन्मस्थान के सम्बन्ध में निश्चितरूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन काशी में बिताया।

माता-पिता—कबीर के माता-पिता कौन थे?..... "ये हिन्दू थे या मुसलमान? यह प्रश्न आज तक रहस्य बना हुआ है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० नगेन्द्र** आदि हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने इनके माता-पिता पर प्रकाश डालने वाली एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है। इस किंवदन्ती के अनुसार स्वामी रामानन्द ने ध्यानावस्था में एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया। वह विधवा इस आशीर्वाद के कारण पुत्रवती हो गई। लोकलाज से बचने के लिए उसने अपने नवजात शिशु को 'लहरतारा' तालाब के किनारे डाल दिया। **नीरू** व **नीमा** को वे वहीं पड़े हुए मिले। वे इन्हें उठाकर घर ले आए और इनका पालन-पोषण किया।

इस किंवदन्ती का एक दूसरा रूप कबीरपन्थियों में प्रसिद्ध है। इसके अनुसार ज्येष्ठ पूर्णिमा की रात्रि में लहरतारा तालाब में एक कमल प्रकट हुआ और ज्योति में परिवर्तित हो गया। यही ज्योति बालक बन गई। उस बालक को वहाँ से नीरू व नीमा अपने घर लाए।

आजीविका एवं गुरु—कबीर के माता-पिता अथवा पालक नीमा एवं नीरू स्वयं जुलाहा थे; अत: उन्होंने आजीविका के रूप में जुलाहा वृत्ति को अंगीकार किया। उन्होंने स्वयं भी कहा है—

बोढ़न हमरै एक पद्देवरा, लोक बोलै इसकताई हो।
जुलहै तनि बुणि, पान न आवल, फारि बुणि दस ठाई हो॥

इन्होंने तत्कालीन प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली थी, इस तथ्य की पुष्टि 'कबीर-परचै', 'कबीर चरित-बोध', 'भक्तमाल', 'गुरु ग्रन्थ साहिब', 'दबिस्तान', 'प्रसंग-पारिजात' आदि अनेक ग्रन्थों से होती है।

कबीर की स्वयं की रचनाओं एवं अन्य ग्रन्थों में उल्लेखित तथ्यों से ज्ञात होता है कि ये सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। सिकन्दर लोदी का गुरु शेख तकी रामानन्द का प्रतिद्वन्द्वी था। कबीर उसकी कटु आलोचना किया करते थे। इस कारण शेख तकी के कहने पर सिकन्दर लोदी ने उन पर अनेक अत्याचार किए। कबीर शेख तकी के आलोचक थे, यह उनकी कुछ रचनाओं से भी प्रमाणित होता है—

शेख तकी तब मीजैं हाथा। सूखे मुँह नहीं आवै बाता॥
× × × ×
घट-घट है अनिवासी सुनहुँ तकी तुम शेख।

गृहस्थ—जीवन—कहा जाता है कि कबीर की दो पत्नियाँ थीं या उन्होंने दो विवाह किए थे। उनके द्वारा संचित इन पंक्तियों को इस मत का आधार माना जाता है

मेरी बहुरिया को धनियाँ नाउ।
लै राख्यो रमजनियाँ नाउ॥
× × ×
हम तुम बीच भयो नहीं कोई। तुमहिं संकल नाई हम सोई।
कहत कबीर सुनह रे लोई। अब तुमरी परतीति न होई॥

इन पंक्तियों के आधार पर कबीर की दूसरी पत्नी का नाम लोई बताया जाता है। एक पुत्र तथा एक पुत्री उनकी दो सन्तानें थीं। इनके पुत्र का नाम कमाल तथा पुत्री का नाम कमाली था। कबीर स्वयं इनका उल्लेख करते हुए कहते हैं—

बुड़ै बंस कबीर के, उपजे पूत कमाल॥

निधनकाल—कबीर के जन्मकाल की ही भाँति इनका निधनकाल भी विवादास्पद है। विभिन्न साहित्यान्वेषियों ने इनके निधनकाल को अपने-अपने मतानुसार अलग-अलग बताया है। इसमें सर्वाधिक मान्य मत यह है कि कबीर का निधन **संवत् 1575 (सन् 1518 ई०)** में **मगहर** में हुआ था। उस समय समाज में यह मान्यता प्रचलित थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने पर नरक। इस मान्यता को गलत सिद्ध करने के लिए कबीरदास अपने अन्त समय में काशी छोड़कर मगहर आ गए थे। वहीं उन्होंने अपने प्राण त्यागे। कहते हैं कि इनकी मृत्यु के उपरान्त इनके हिन्दू एवं मुसलमान अनुयायियों में इनके अन्तिम संस्कार को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गए; क्योंकि हिन्दू इनका दाह-संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। किंवदन्ती यह है कि जब इनके शव से चादर हटाई गई तो वहाँ शव के स्थान पर फूल रखे थे।

रचनाएँ—खोज-रिपोर्टों, सन्दर्भ-ग्रन्थों, पुस्तकालयों में प्राप्त विवरणों आदि में कबीर द्वारा रचित 63 ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें से कुछ प्रमुख ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—'अगाध मंगल', 'अनुराग सागर', 'अमर मूल', 'अक्षर ग्रन्थ की रमैनी', 'अक्षर भेद की रमैनी', 'उग्र गीता', 'कबीर की बानी', 'कबीर-गोरख गुष्ठी', 'कबीर की साखी', 'बीजक', 'ब्रह्मनिरूपण', 'मुहम्मदबोध', 'रेखता', 'विचारमाला', 'विवेकसागर', 'शब्दावली', 'हंसमुक्तावली', 'ज्ञानसागर' आदि।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये सभी ग्रन्थ कबीर द्वारा रचित बताए जाते हैं, किन्तु इनकी प्रामाणिकता अत्यन्त सन्दिग्ध है। इन रचनाओं की कई-कई प्रतियाँ पाई जाती हैं और प्रत्येक में भाषा, शब्दचयन, पद-विन्यास आदि में अन्तर है।

साहित्यिक व्यक्तित्व—सन्त कबीर सन्तोषी, उदार, स्वतन्त्रचेता, निर्भीक थे। वे पाखण्ड, रूढ़ि, अन्ध-आस्था, भेदभाव आदि के कट्टर विरोधी एवं कटु सत्यवक्ता थे। उनकी इसी सत्यवादिता के कारण शेख तकी उन पर कुपित हो गया था, जिसके

फलस्वरूप उन्हें सिकन्दर लोदी के अत्याचारों का सामना करना पड़ा। हिन्दू एवं मुसलमान दोनों वर्गों के कट्टरपन्थी इनके विरोधी हो गए, किन्तु वे अपनी आलोचनाओं से भयभीत नहीं हुए तथा अपने कर्त्तव्य मार्ग पर सुस्पष्ट रूप से डटे रहे। वे सुकरात के समान भारतीय समाज एवं धर्म की पाखण्डपूर्ण व्यवस्था पर अपनी वाणियों से तीव्र आघात करते रहे। वे एक युग-प्रवर्तक, समाज-सुधारक थे। उनकी साहसिकता और सत्यवादिता के विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार **डॉ० प्रभाकर माचवे** लिखते हैं—"कबीर में सत्य कहने का अपार धैर्य था और उसके परिणाम सहन करने की हिम्मत थी। कबीर की कविता इन्हीं कारणों से एक अन्य प्रकार की कविता है। वह कई रूढ़ियों के बन्धन तोड़ती है। वह मुक्त आत्मा की कविता है।" **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसलिए वे युग-प्रवर्तन कर सके।"

प्र.2. कबीर की शैली तथा उसके वैविध्य पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

उत्तर

कबीर की शैली और उसका वैविध्य

कबीर की शैली में विविधरूपता है। कबीर का समस्त काव्य मुक्तक शैली में रचा गया है। इनके काव्य में गेय पदों की प्रमुखता है। कबीरदास भक्त पहले हैं और कवि बाद में। इसलिए जब वे मस्त होकर तन्मयता के साथ गाते हैं तो वे अपने गायन में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें अन्य किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता है। उनकी रचनाओं में हमें निम्नलिखित प्रमुख शैलियों के दर्शन होते हैं—

1. **खण्डनात्मक शैली**—कबीर की शैली उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है। जब कबीर पण्डित, मुल्ला, वामपन्थी और अवधूतों को फटकारते हैं तो उनकी शैली बड़ी सबल और सशक्त हो जाती है। कबीर ने प्राचीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध किया। इस प्रकार के वर्णन में शैली का तीखापन द्रष्टव्य है। इस प्रकार की शैली मर्म पर सीधी चोट करती है। उस शैली को खण्डनात्मक शैली कहते हैं।
2. **उपदेशात्मक शैली**—कबीरदास जब हिन्दू-मुसलमानों को उपदेश देते थे, तब वे अपने विचारों को अत्यन्त सरल और सीधे-सादे ढंग से व्यक्त करते थे, ताकि श्रोतागण उसको सरलता से समझ सकें। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जब वे हिन्दुओं को उपदेश देते समय थे, तब वे शुद्ध हिन्दी के और मुसलमानों को उपदेश देते तब फारसी शब्दों का प्रयोग करते थे। कबीर की यह उपदेशात्मक शैली सीधी-सादी तथा सरल है।
3. **अनुभूति-व्यंजक शैली**—कबीर की तीसरे प्रकार की शैली अनुभूति-व्यंजक है। साहित्यिक शैली है। यह शैली गीतिकाव्य के समस्त लक्षणों से मुक्त है। इसमें अनुभूति की अतुल गहराई है। इस शैली में माधुर्य गुण सर्वथा दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार की शैली के सम्बन्ध में 'कबीर काव्य कौस्तुभ' में एक स्थान पर लिखा है, "इस शैली में सन्त को कोमलता, व्यंजना की प्रौढ़ता, साधन की कातरता, स्वानुभूति का सफल अंकन तथा अलंकारों एवं प्रतीकों का मार्मिक प्रयोग है, जो उनके काव्य को अलौकिक बना देता है।"

भाषा की शब्द-शक्ति—कबीरदास जी ने अपने काव्य में अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों प्रकार की शब्द-शक्तियों का प्रयोग किया है। कबीर के लाक्षणिक प्रयोग देखते ही बनते हैं—

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पण्डित पाड़ी वाट॥

उलटबाँसियों और प्रतीकों के प्रयोग में शैली अस्पष्ट होते हुए भी चमत्कारपूर्ण है।

अलंकार—कबीर की विशेषता अपने रूपकों के लिए प्रसिद्ध है। वे अलंकारों के पण्डित नहीं थे। उन्होंने अपनी वाणी को कभी-भी सजाने, सँवारने का प्रयास नहीं किया। उनकी काव्य-प्रतिभा के कारण स्वभावत: ही उसमें रमणीयता आ गई है। कबीर के रूपक मौलिकता लिए हुए हैं—

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिय को लिया रिझाय॥

कबीरदास ने उपमा अलंकार का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है। उपमाओं के उपमान भी परम्परागत न होकर मौलिक हैं। उनके रूपकों के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में लिखा है—"उन्होंने हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (चन्द, सूर, नाद, बिन्दु, अमृत, पौधा, चुवा आदि) को लेकर अद्‌भुत रूपक बाँधे हैं, जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं।"

कबीरदास जी ने उलटबाँसियों में मुख्यत: विरोधालंकार—विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कबीर के काव्य में उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टान्त आदि अलंकारों की भी प्रचुरता है। कबीर ने अन्योक्तियों का प्रयोग भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है; जैसे—

''काहे री नलनी तूं कुम्हिलाँनीं।
तेरे ही नालि सरोवर पानी॥''

× × ×

''ना तलि तपति न ऊपरि आगि।
तोर हेतु कहु कासनि लागि।''

इस प्रकार कबीर के काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग परिलक्षित होता है।

छन्द-विधान—कबीरदास जी का समस्त काव्य मुक्तक रचना है। उनके काव्य में गेय पदों की प्रधानता है। उन्होंने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, लेकिन उनमें साखी, सबद और रमैनी प्रमुख हैं। कबीरदास ने साखियों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। साखी दोहों से मिलती-जुलती हैं। साखी का अर्थ है-साक्ष्य या साक्षात् अनुभव। साखी का प्रयोग कबीरदास से पहले भी होता आ रहा था। कबीरदास ने स्वयं कहा है 'पद गाए मन हरसिया साषी, कह्या आनन्द।' साखी और दोहे के अन्तर को स्पष्ट करते हुए **पं० परशुराम चतुर्वेदी** ने लिखा है—''साखियों की रचना प्राय: दोहा नामक छन्द में की गई पाई जाती है, किन्तु कबीर साहब की सभी साखियाँ केवल इसी रूप में नहीं दिखतीं। इसमें न केवल सोरठे मिलते हैं, अपितु इनमें दोहा, चौपाई, हरिपद तथा छवै जैसे छन्दों के भी उदाहरण मिल जाते हैं।'' इसके अतिरिक्त कबीर ने चौंतीस, हिंडोला, बसन्त बेलि, कहरा, चांचल आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

प्र.3. कबीरदास द्वारा प्रतिपादित साखियों के प्रमुख विषयों का संक्षिप्त विवेचन करते हुए साखियों के महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

साखियों में प्रतिपादित मूल विषय

कबीरदास ने साखियों के माध्यम से इहलोक से लेकर परलोक तक के सभी उच्चादर्शों और उनकी व्यावहारिकता को अपने काव्य का अंग बनाने के साथ ही लोक के आडम्बरों और बाह्याचारों पर प्रहार किया है एवं उनके सही रूपों का प्रतिपादन भी किया है। अर्थात् हम निस्सन्देह यह कह सकते हैं कि कबीर ने अपनी साखियों में सत्य का पूर्ण प्रतिपादन किया है। उनकी साखियों में प्रतिपादित कुछ मुख्य विषयों का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया गया है—

1. **गुरु-महिमा**—कबीरदास ने गुरु को बहुत महत्त्व प्रदान किया है। उनकी साखियों में गुरु-महिमा का प्रतिपादन भरा पड़ा है—

   सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
   लोचन अनन्त उघारिया, अनंत दिखावणहार॥

2. **संसार की नश्वरता**—कबीरदास के अनुसार यह संसार नश्वर और क्षणभंगुर है। वे मनुष्य को बार-बार चेतावनी देते हैं कि वह क्षणभंगुर संसार के क्षणिक विषयों को त्यागकर भगवान का स्मरण करें—

   यहु ऐसा संसार है, जैसा सेमल फूल।
   दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूल॥

3. **माया पाप की जड़**—कबीरदास ने माया को समस्त अनर्थ एवं दु:ख का मूल माना है और उसको पापिनी, ठगिनी, डायन कहा है—

   कबीर गुण की बादली, तीतर वानी छाँहि।
   बाहिर रहै ते ऊबरे, भागे मन्दिर माँहि॥

4. **ब्रह्म-स्वरूप विचार**—कबीर ने ब्रह्म-स्वरूप विचार एवं ब्रह्म-निरूपण को लेकर साखियाँ लिखी हैं—

   आदि महि अरु अन्त लौं, अविहड़ सदा अभंग।
   कबीर उस करतार की, सेवक तजै न संग॥

5. **नाम की महिमा**—कबीरदास ने भगवन्नाम को वेदों-पुराणों का सार बताया है। नाम-स्मरण के द्वारा साधक अपने प्रभु के निकट पहुँच जाता है—

   च्यंता तो हरि नाँव की, और न चिंता दास।
   जो कछ चितवै राम बिन, सोइ काल की हास॥

6. **विरह की महिमा**—कबीरदास ने प्रेम की पूर्णता के लिए विरह को अतिआवश्यक माना है। विरह ही आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करता है—

बिरह भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ॥

7. **तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन**—कबीरदास की अनेक साखियों में हमको तत्कालीन परिस्थितियों का सजीव वर्णन मिलता है। इनमें उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार की परिस्थितियाँ मुखर दिखाई देती हैं। उदाहरण के रूप में, निम्नलिखित साखी में यह बताया गया है कि उन दिनों जैन-साधुओं में भी बाह्याडम्बर बुरी तरह घर कर गया था—

पड़ौसी से रूसणां, तिल तिल सुख की हांणि।
पण्डित भये सरावणी, पाणी पीवं छांणि॥

8. **बाह्याचार की निरर्थकता**—कबीर का शास्त्रों के बाह्याचारों के प्रति घोर विरोध था; क्योंकि शास्त्रों की साधना पूर्णत: मांस, मदिरा आदि बाह्याचारों पर ही अवलम्बित थी। शास्त्रों को लक्ष्य करके उन्होनें व्यंग्यपूर्ण तथा चुटीली भाषा में कई साखियाँ लिखी हैं—

साबित सन का जेबड़ा, भींगा रस कढ़ठाइ।
दोड़ आखिर गुरु बाहिरा, बांध्या जमपुर जाइ॥

9. **नीति एवं लोक-व्यवहार**—कबीरदास द्वारा केवल परमात्मा, जीव, धर्म आदि पारलौकिक सत्य की ही व्याख्या नहीं की गई है, अपितु उन्होंने अपनी साखियों में मानव के लौकिक व्यवहारों, नीतियों आदि की भी ऐसी व्याख्या की गई है, जो युगों-युगों तक मानवमात्र का व्यवहार-सम्बन्धी पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी—

मूरखि संग न कीजिए, लोहा जल न तिराइ।
कदली सीपी भुजंग-मुख, एक बूँद तिहुँ भाइ॥
× × ×
कबिरा संगत साधु की, कदै न निष्फल होइ।
चन्दन होसी बाँवना, नींव न कहसी होइ॥

साखियों का महत्त्व

इस प्रकार कबीरदास जी की साखियों का गम्भीरता से अध्ययन तक मनन करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने इनमें मानवमात्र को शाश्वत लौकिक-पारलौकिक सत्य से परिचित ही नहीं कराया है, बल्कि उन्हें यह भी बताया है कि परमात्मा, धर्म, मोक्ष आदि की वास्तविकता क्या है। इन्होंने पाखण्डाचार से बचने तथा नीति एवं लोक-व्यवहार का पालन करने के लिए लोगों का योग एवं सत्य से भी परिचय कराया है। ये साखियाँ मनुष्य को सदाचार की शिक्षा देती हैं। इनमें व्यक्त सत्य शास्त्र में उल्लिखित सत्य नहीं है, अपितु, कबीर के स्वयं के द्वारा अनुभूत सत्य है, जिसे इन्होंने अत्यन्त प्रखर भाव में अभिव्यक्त किया है। इन साखियों का उद्‌भव इनके हृदय की अतल गहराइयों से हुआ है, इसलिए ये सीधे हृदय में उतर जाती हैं।

कबीर की साखियों का महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से भी अनुपम है। इनमें जहाँ साहित्य के सभी श्रेष्ठ अंगों-उपांगों का समावेश परिलक्षित होता है, वहीं सभी प्रकार के लोकाचारों का आदर्शोपदेश भी हमें प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें कबीर की साखियों में सम्पूर्णता का प्रतिपादन उपलब्ध होता है। यदि केवल कबीर की साखियाँ ही उपलब्ध होतीं, तब भी उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों, गुरु-महिमा, ज्ञान-महिमा, ब्रह्म-निरूपण, रहस्यवाद, बाह्याडम्बर की निरर्थकता, हठयोग साधना, माया-जीव का निरूपण आदि का पूर्ण प्रतिपादन हो जाता है और हमको कबीर की वाणी में किसी प्रकार की अपूर्णता का अनुभव न होता। वास्तव में उनकी साखियाँ दर्शन, धर्म, समाज, साहित्य एवं नीति के क्षेत्र के अमूल्य रत्न हैं।

प्र.4. साखी से आपका क्या अभिप्राय है? निम्नलिखित की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) गुरुदेव कौ अंग

1. **सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।**
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति॥1॥

2. पीछे लागा जाय था, लोक वेद के साथि।
आगै थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥11॥
3. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़न्त।
कहै कबीर गुर ग्यांन थैं, एक आध उबरन्त ॥20॥

(ख) गुबरह कौ अंग

4. बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिने माँहि।
कबीर बिछुट्या राम सूँ, नाँ सुख धूप न छाँह॥4॥
5. नैनां अंतरि आँचरूँ, निस दिन निरखौं तोंहि॥
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवैं मोंहि॥33॥

उत्तर **साखी**

साखी-परिचय—सन्तकवि कबीर ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए मुख्यत: दोहा छन्द का प्रयोग किया है। इन दोहों में उन्होंने नीति, सदाचरण, ज्ञान, जीवन-मूल्यों आदि का वर्णन अपने अनुभवों के आधार पर किया है। वे स्वयं जिसके साक्षी थे, उसी को दोहों के रूप में व्यक्त कर दिया; इसी 'साक्षी' शब्द का तद्भव रूप है—साखी। 'साक्षी' शब्द का अर्थ होता है—प्रमाण अथवा चश्मदीद गवाह या प्रत्यक्षदर्शी अर्थात् जिसने किसी बात को अपनी आँखों से देखा हो या उसका स्वयं अपने जीवन में अनुभव किया हो, वही बात साक्षी कहलाती है। इस साक्षी (साखी) को कबीरदास ने दोहों में व्यक्त किया है। इस तरह उनके दोहे साखी का पर्याय हो गए। उनके इन दोहों को उनके मुख्य भाव (केन्द्रीय भाव) की दृष्टि से अनेक शीर्षकों में बाँटा गया है, जिन्हें 'अंग' नाम से जाना जाता है। उनके दोहों के कुछ अंगों के नाम हैं—गुरुदेव कौ अंग, सुमिरण कौ अंग, बिरह कौ अंग, परचा कौ अंग, रस कौ अंग आदि।

(क) गुरुदेव कौ अंग

1. सतगुरु सवाँन ..... **न जाति॥1॥**

शब्दार्थ—सवाँन = समान; **सोधी** = तत्त्वशोधक अर्थात् साधु; **सईं** = समान; **दाति** = दाता; **हरिजन** = प्रभु-भक्त; **हितू** = हितैषी।

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी स्वभाव से अक्खड़ और फक्कड़, व्यवहार से सन्त और वाणी से सत्य तथा स्पष्टवक्ता, महान सन्त कबीरदास के स्वानुभव की प्रत्यक्ष साक्षी रही साखियों से अवतरित है।

प्रसंग—कबीरदास की प्रस्तुत साखी में सत्गुरु की महिमा एवं उनके प्रभाव का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—प्रस्तुत साखी में कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार में सत्गुरु के समान अपना कोई सगा सम्बन्धी नहीं है। एक गुरु को छोड़कर सभी स्वार्थ के साथी हैं। संसार में एकमात्र प्रमुख तत्त्व परमब्रह्म के शोधक या प्रभु की खोज करनेवाले साधु (सज्जन) के समान कोई दाता नहीं है, अर्थात् सत्गुरु के समान इस संसार में दूसरा कोई सज्जन नहीं है। सज्जन वही होता है, जो अपने लिए किसी भी वस्तु का संचय करके नहीं रखता, बल्कि दूसरों की भलाई के लिए नि:स्वार्थ भाव से सर्वस्व दान कर देता है। इस रूप में सत्गुरु से बड़ा कोई सज्जन तथा दाता नहीं है, क्योंकि वह अपना समस्त ज्ञान अपने शिष्य में उँड़ेल देता है। दयालु प्रभु के समान अपना कोई हितैषी नहीं है और प्रभुभक्तों के समान कोई श्रेष्ठ जाति नहीं है। आशय यही है कि प्रभु-भक्त संसार के सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

विशेष—1. गुरु की महत्ता का वर्णन करते हुए सतगुरु को एकमात्र सगा-सम्बन्धी बताया गया है। इसका कारण यही है कि संसार में केवल गुरु ही ऐसा जीव है, जो किसी भी परिस्थिति में, कैसी भी विपत्ति में अपने शिष्य का साथ नहीं छोड़ता, अपितु उसका मार्गदर्शन करके उसे उस विपत्ति से बाहर निकालता है। माता-पिता, पुत्र आदि तो स्वार्थ के सम्बन्धी हैं। 2. सबसे बड़ा दाता वही है, जो अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखता, वह अपना सर्वस्व परहित के लिए त्याग देता है। संसार में एकमात्र गुरु ही ऐसा होता है, जो अपने शिष्य के कल्याण के लिए अपने समस्त ज्ञान को उसमें उँड़ेल देता है और वह भी बिना किसी स्वार्थ के। 3. कबीरदास छुआछूत और जातिगत आदि भेदभाव के कट्टर विरोधी थे; इसलिए उनकी दृष्टि में मनुष्यों में केवल एक ही जाति श्रेष्ठ थी और वह थी। प्रभुभक्तों की। प्रभु के भक्तों में किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं होता, वे संसार के सभी प्राणियों को एकसमान मानते हैं। 4. **भाषा**—सधुक्कड़ी। 5. **अलंकार**—अनुप्रास, अनन्वयोपमा तथा यमक अलंकारों का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

2. पीछे लागा ..... **दीया हाथि।।11।।**

शब्दार्थ—पीछे लागा जाय था = अन्धानुकरण करता जा रहा था; **दीपक** = ज्ञान की ज्योति।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत साखी में कबीरदास ने गुरु की महिमा पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि गुरु किस प्रकार व्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

व्याख्या—प्रस्तुतसाखी में कबीरदास जी कहते हैं कि मैं तो लोक द्वारा निर्धारित वेदविहित मार्ग का अन्धानुकरण करता चला जा रहा था, तभी मुझे मार्ग में सच्चे गुरु मिल गए। उन्होंने ज्ञान का दीपक मेरे हाथ में थमा दिया, जिससे में पथभ्रष्ट न हो सकूँ और अपने सही मार्ग को पहचानकर निरन्तर उस पर कदम बढ़ाता रहूँ।

विशेष—1. इस दोहे में कबीरदास ने गुरु का महत्त्व बताने के साथ-साथ इस बात पर भी बल दिया है कि हमें लोक द्वारा निधारित किसी भी परम्परा का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। 2. **भाषा**—सधुक्कड़ी। दीपक को 'ज्ञान' के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अत: प्रतीकात्मक शैली है। 3. **अलंकार**—सांगरूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

3. माया दीपक ..... **आध उबरन्त।।20।।**

शब्दार्थ—नर = मनुष्य, जीव; **पतंग** = पतंगा; **इवैं** = इस पर; **पड़न्त** = पड़ते हैं; **ग्यांन** = ज्ञान; **थैं** = से; **उबरन्त** = उबरते हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत साखी में सन्त कबीरदास ने इस संसार में मनुष्य की माया के कारण भ्रमित अवस्था पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—प्रस्तुत साखी में कबीरदास जी कहते हैं—संसार के जीवों पर माया का गहरा प्रभाव है। जिस प्रकार पतंगा एक बार दीपक की लौ पर मोहित होकर अपने पंख झुलसा लेता है, फिर भी बार-बार भ्रमित होकर उस लौ में जा गिरता है; उसी प्रकार जीव भी माया से बार-बार भ्रमित होकर स्वयं को समाप्त कर लेता है। वह कई बार इस माया की दु:ख देनेवाली स्थिति का अनुभव करता है, लेकिन उससे शिक्षा नहीं लेता और फिर उसके मोह में जा पड़ता है। मनुष्य को इस स्थिति से एक सच्चा गुरु ही बचा सकता है, लेकिन उसके उपदेश को प्राप्त करनेवाले लाखों में से कोई एक-दो ही माया के इस अगाध सागर से उबर पाते हैं।

विशेष—1. माया से भ्रमित जीव की अज्ञान से भरी दशा का वर्णन करते हुए सन्त कबीरदास ने प्रस्तुत साखी में उसकी तुलना उस पतंगे से की है, जो दीपक की लौ के आकर्षण में जल मरता है। 2. **भाषा**—सधुक्कड़ी। 3. **अलंकार**—रूपक, सांगरूपक एवं अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग दर्शनीय है।

(ख) बिरह कौ अंग

4. बासुरि सुख ..... **न छाँह।।4।।**

शब्दार्थ—बासुरि = दिन; **रैणि** = रात्रि; **सुपिने** = स्वप्न; **बिछुय्या** = विमुख।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहा निर्गुण भक्ति परम्परा के प्रमुख सन्त कवि कबीरदास जी द्वारा रचित 'बिरह कौ अंग' से लिया गया है।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में वियोगी की दशा का चित्रण है।

व्याख्या—प्रस्तुत दोहे में कबीरदास जी कहते हैं कि जो लोग राम से विमुख होते हैं, उन्हें न तो दिन में सुख मिलता है, न रात को, राम वियोगियों के लिए तो स्वप्न में भी सुख नहीं है। न तो वह धूप में सुख पाते हैं, न छाँव में। भाव यह है कि ईश्वर से विमुख जीव प्रतिपल दु:ख झेलता है।

विशेष—1. वियोग की आन्तरिक दशा का चित्रण। लौकिक प्रिय के वियोगी के समान जीव भी परमात्मा के विरह में प्रतिक्षण कष्ट भोगती है। 2. राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली।

5. नैनां अंतरि ..... **आवैं मोंहि।।33।।**

शब्दार्थ—अंतरि = भीतर; **आँचरूँ** = बसा लूँ; **निरषौं तोंहि** = आपके दर्शन करूँ, आपको निरखूँ; **सो दिन** = वह दिन; **आवैं मोंहि** = मेरे लिए आए।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में आत्मा की मिलन उत्कण्ठा का वर्णन है।

व्याख्या—प्रस्तुत दोहे में कबीरदास जी ने बताया है जीव ब्रह्म से कहता है कि हे ईश्वर! वह दिन कब आएगा, जब आप मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ करेंगे और मैं तुम्हें अपने नेत्रों में बसाकर दिन-रात दर्शन करता रहूँगा। सार यह है कि संसार के अज्ञान से मुक्त जीव ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता है।

विशेष—1. विरहोत्कण्ठित आत्मा का विरहिणी स्त्री के रूप में वर्णन है। 2. प्रसाद गुण 3. राजस्थानी मिश्रित भाषा।

प्र.5. जायसी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

जायसी की काव्यगत विशेषताएँ

मलिक मुहम्मद जायसी के मुख्य रूप से तीन ग्रन्थ—आखिरी कलाम, पद्मावत और अखरावट मिलते हैं, किन्तु इनमें 'पद्मावत' सबसे अधिक प्रसिद्ध रहा है। यह हिन्दी-साहित्य का अनमोल रत्न है। इस ग्रन्थ में जायसी ने राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। उनके काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं—

(क) भाव-पक्ष की विशेषताएँ

1. **शृंगार-वर्णन**—जायसी के काव्य में शृंगार रस की प्रधानता है। उन्होंने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सशक्त चित्रण किया है। पद्मावती के सौन्दर्य-वर्णन में कवि की अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया गया है। इन्होंने नख-शिख वर्णन, मिलन-प्रसंगों एवं षड्ऋतु वर्णन का आलंकारिक, अतिशयोक्तिपूर्ण तथा मनोहारी रूप में चित्रण किया है। पद्मावती के मुख एवं अंगों की छवि निम्न रूप में प्रकट होती है—

   'ससि मुख अंग मलयगिरि वासा।
   नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।।'

   विरह-वर्णन में भी कवि को अद्भुत सफलता मिली है। 'नागमती का विरह-वर्णन' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

2. **विरह-वर्णन में गहनता एवं व्यापकता**—जायसी के 'पद्मावत' में दो स्थलों पर विरह-वर्णन मिलता है—एक नागमती का विरह-वर्णन, दूसरा पद्मावती-नागमती का संयुक्त विरह-वर्णन। दोनों ही स्थलों पर विरह में गहनता तथा व्यापकता परिलक्षित होती है। नागमती का विरह केवल उसी का विरह नहीं है, अपितु यह समस्त भारतीय आदर्श नारियों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रिय-वियोग में जलकर प्रत्येक नारी अपने शरीर की राख पति के चरणों में डालना चाहती है। नागमती की भी यही अभिलाषा है—

   यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन! उड़ाव।
   मकु तेहि मारग उड़ि परै, कन्त धरै जँह पाव।।

3. **प्रकृति-चित्रण**—जायसी ने शृंगार-वर्णन में विविध प्राकृतिक-दृश्यों को भी बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। विरह-प्रसंग में षड्ऋतु वर्णन और बारहमासा वर्णन अत्यधिक मार्मिक बन पड़े हैं। प्रकृति का संवेदनात्मक रूप अत्यधिक प्रभावशाली रहा है। कहीं पशु-पक्षी एवं प्रकृति दुःखी होते प्रतीत होते हैं तो कहीं प्रकृति से अपनी वेदना व्यक्त करते हुए विरहिणी नायिका कहती है—

   पिऊ सौं कहौ सन्देसड़ा, ए भौंरा! ए काग।
   सोधनि विरह जरि मुई, ताहि का धुँआ हम लाग।

4. **लोक-संस्कृति का अंकन**—'पद्मावत' में जायसी ने लोक-संस्कृति और लोक-जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। उन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु तक के हिन्दू जीवन की पारिवारिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों का उदारतापूर्वक वर्णन किया है। पद्मावती का जन्म, शैशव, सखियों के साथ अनुपम क्रीडाएँ, विवाह, सौतिया डाह, राजा के बन्दी बनाए जाने पर विरह-वेदना आदि का सुन्दर चित्रण किया है। इसी प्रकार राजा के विलासी जीवन, राजमहलों का वर्णन, आखेट, युद्ध-वर्णन, परनारी अनुरक्ति आदि के भी भिन्न-भिन्न दृश्य प्रस्तुत किए हैं।

5. **रहस्यवाद**—जायसी उच्चकोटि के रहस्यवादी कवि हैं। उनमें साधनात्मक और भावात्मक दोनों ही रहस्यवाद मिलते हैं, लेकिन अधिकता भावात्मक रहस्यवाद की है। साधनात्मक रहस्यवाद में हठयोगी साधना का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है; जैसे—

   नव पौरी बाँकी वय खण्डा।
   नवौं जो चढ़े जाइ बरम्हण्डा।।

   परमात्मा को प्राप्त करने के लिए व्याकुल आत्मा के विरह का वर्णन भावात्मक रहस्यवाद में किया गया है। 'पद्मावती' परमात्मा का प्रतीक है, जो अलौकिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। जीवात्मा रूप राजा रत्नसेन उसे प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। कवि ने दिखाया है कि परमात्मा की ज्योति सर्वत्र व्याप्त है। परमात्मा का व्यक्ति के हृदय में वास है, केवल उसका साक्षात्कार कराने वाले की आवश्यकता है—

   ''पिउ हृदय महँ भेंट न होई। को रे मिलावकहों केहि रोई।''

6. **भक्ति-भावना**—महाकवि जायसी ने निराकारी ब्रह्म की प्राप्ति प्रेम द्वारा मानी है। उनका ईश्वर निर्गुण, घट-घटवासी और सृष्टिकर्ता है। वह अगम्य एवं अवर्णनीय है। इनको भक्ति में अद्वैतवाद, अवतारवाद तथा विशिष्टताद्वैतवाद के सिद्धान्त दृष्टिगत होते हैं। अद्वैतवाद की भावना का एक उदाहरण देखिए—

''आपुहिं कागद, आपु मसि, आपुहिं लेखन-हारा।''

7. **गुरु की महत्ता**—जायसी द्वारा गुरु की महत्ता सर्वत्र स्वीकार की गई है। उन्होंने पात्रों में प्रतीकात्मकता स्थापित करते हुए हीरामन तोते को गुरु रूप में प्रस्तुत किया है। जीवात्मा गुरु के बताए मार्ग पर चलकर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचती है; अत:—

''गुरु सुआ जेहि, पन्थ देखावा॥''

8. **अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन**—महाकवि जायसी ने विविध-वर्णनों में अतिशयोक्ति अलंकार का आश्रय ग्रहण किया है। उन्होंने 'पद्मावती' के सौन्दर्य और नागमती के विरह का अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है, फिर भी वर्णन सर्वत्र हृदयकारी, मार्मिक और गम्भीर दृष्टिगत होते हैं।

9. **सूफी प्रभाव**—जायसी ने एक ओर भारतीय प्रेम की परम्परा को ग्रहण किया है तो दूसरी ओर सूफी सिद्धान्तों को भी स्वीकार किया है। नागमती के विरह में सूफी प्रभाव स्पष्ट झलकता है। मांस का भूनना, रक्त के आँसू गिराना आदि प्रभाव इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं—

''गिरि-गिरि परत रक्त के आँसू॥''

(ख) कला-पक्ष की विशेषताएँ

कला-पक्ष काव्य का बाह्य पक्ष होता है। यह अभिव्यक्ति की रीति से सम्बन्धित होता है। इसमें भाषा, शैली, अलंकार, शब्द-शक्ति, छन्द आदि का अध्ययन किया जाता है। जायसी के काव्य के कला-पक्ष की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **भाषा**—जायसी की भाषा आम बोलचाल की ठेठ अवधी भाषा है। इनकी भाषा में ग्राम्यता का पुट है। इन्होंने कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है और कहीं-कहीं अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनकी भाषा में पूर्वी एवं पश्चिमी दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। समग्र रूप से इनकी भाषा सरल, सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में—''जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य निराला है। यह माधुर्य भाषा का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं।''

2. **शैली**—जायसी ने फारसी की 'मसनबी शैली' में काव्य-सृजन किया है। काव्य-रूप की दृष्टि से उन्होंने 'प्रबन्ध शैली' को स्वीकार किया है। 'पद्मावत' एक श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति शैली चरितकाव्य शैली, और प्रतीकात्मक शैली भी उनके काव्य में देखी जा सकती है।

3. **छन्द**—जायसी ने दोहा, चौपाई छन्दों में अपने काव्य का सृजन किया। इनके काव्य में चौपाई की सात अर्धालियों के बाद दोहा रखा गया है। आगे चलकर तुलसी ने भी इसी शैली और क्रम को अपनाया।

4. **अलंकार**—जायसी ने रूपक, अनुप्रास, समासोक्ति, अन्योक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। अलंकारों का प्रयोग करते समय जायसी ने उनके शास्त्रीय स्वरूप को ध्यान में नहीं रखा है, कदाचित् वे भारतीय शास्त्र-परम्परा से अपरिचित थे। फिर भी उन्होंने विविध अलंकारों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है; जैसे—

उपमा— मुहम्मद जीवन जल भरन रहट घरी की रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति॥

उत्प्रेक्षा—खाँड़े धार हिय जनु भरा, करवत ले बेनी पर धरा।

यमक— धनि सो दीप जह दीपक नारी।

5. **बिम्ब-विधान**—जायसी प्रस्तुत और अप्रस्तुत बिम्बों का प्रयोग करने में पूर्ण सफल रहे हैं। कहीं-कहीं कवि ने पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, जिन पर पाठक मुग्ध हो उठता है; जैसे—

सरवर तीर पद्मिनी आई, खोंपा छोरि केस मकुलाई।
ससि मुख, अंग मलयगिरि बासा, नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा॥

6. **प्रतीकात्मकता**—जायसी की प्रतीकात्मकता दर्शनीय है। उन्होंने विविध पात्रों, भावों तथा तथ्यों में प्रतीकात्मकता प्रदर्शित की है।

इस प्रकार जायसी का भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही सबल रहे हैं। प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा में जायसी सर्वश्रेष्ठ हैं। **बाबू गुलाबराय** के अनुसार—"जायसी महान् कवि हैं। उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान हैं। उसने सामयिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी। उस पीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वह अमर कवि हैं।"

प्र.6. कबीरदास और जायसी के रहस्यवाद की तुलना कीजिए।

उत्तर

कबीरदास और जायसी के रहस्यवाद की तुलना

कबीरदास और जायसी दोनों ही साधक एवं भक्त होने के साथ-साथ रहस्यवादी कवि भी हैं; क्योंकि दोनों ही अगम-अगोचर सत्ता से सम्बन्ध जोड़ने में प्रयत्नशील रहते हैं, दोनों का उद्देश्य एक ही है—जीव-जगत् में किसी चिन्तन सत्ता का आभास और उसी का प्रतिपादन, लेकिन आगे तक पहुँचने के लिए दोनों ने भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाए हैं; इस प्रकार दोनों में कुछ साम्य है और कुछ वैषम्य।

कबीरदास और जायसी के रहस्यवाद की समानताएँ (साम्य)

एक ही मार्ग के राही होने के कारण कबीरदास और जायसी में रहस्यवाद की दृष्टि से कुछ समानताएँ देखने को मिलती हैं, जो निम्नलिखित हैं—

1. **रहस्यवाद के संकेत**—कबीरदास और जायसी दोनों के काव्य में रहस्यवाद के संकेत दृष्टिगत होते हैं। रहस्यवाद का मूलाधार—**ब्रह्म की अनुभूति** है। जीवात्मा उस अलौकिक शक्ति से निश्छल सम्बन्ध जोड़ने के लिए लालायित रहती है। निरन्तर प्रयत्न करने पर वह उसे प्राप्त कर ही लेती है और अन्त में मिलन के सुख का अनुभव करती है। कबीरदास जी कहते हैं—

   दुलहिनी गाबहु मंगलाचार।
   हमारे घरि आए हो राजा राम भरतार॥

   इसी प्रकार जायसी भी 'पद्मावती' को परमात्मा के रूप में व्यक्त करते हैं। 'मानसरोवर' जब पद्मावती के दर्शन कर लेता है तो वह स्वयं को धन्य समझता है—

   कहा मानसर चाह सो पाई,
   पारस रूप इहाँ लगि आई।
   भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे,
   पावा रूप रूप के दरसे॥

2. **सन्त और फकीरी वृत्ति**—कबीरदास और जायसी दोनों ही कवि होने के साथ-ही-साथ प्रख्यात सन्त भी थे। दोनों में एक की परम्परा सूफी थी तो दूसरे की गोरखनाथ की। लेकिन कबीरदास तथा जायसी के अवतरण से पूर्व ही दोनों परम्पराओं में काफी कुछ एक-दूसरे में ग्रहण होकर मिल गया था। इसीलिए दोनों के काव्य की संरचना लगभग एक समान ही मानव-वृत्ति के अन्तर्गत हुई।
3. **दोनों के ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप**—कबीरदास तथा जायसी दोनों ने निर्गुण ब्रह्म को सर्वत्र एवं निराकार माना है। इस प्रकार कबीरदास और जायसी दोनों ही निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। **कबीर** कहते हैं—

   लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
   लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

   और **जायसी** कहते हैं—

   अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता।
   वह सब सौं सब ओहि सौं बर्त्ता॥

4. **दोनों में परमसत्ता के साथ तादात्म्य**—निर्गुण ब्रह्म में मानवीय-वृत्ति की स्वीकृति के कारण कबीरदास और जायसी दोनों ही उस परम्परा का ज्ञान प्राप्तकर उसमें मिल जाना चाहते हैं। कबीरदास आजीवन उसी प्रेम के मिलन के लिए व्याकुल रहते हैं और जायसी तो उसमें मिलकर सबकुछ समर्पित ही कर देते हैं।

कबीरदास कहते हैं—

कर ले सिंगार चतुर अलबेली।
साजन के घर जाना होगा॥

और **जायसी** तो कहते ही हैं—

पथिक जो पहुँचै सहि कै धामू।
दुःख किसरै सुख होई बिसरामू॥

5. **प्रेम-की भावना और प्रेम-वेदना**—कबीरदास और जायसी दोनों ही प्रेम का माध्यम विरह या वेदना को मानते हैं। **कबीरदास** कहते हैं—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै, तब पैठे इह माहिं॥

जायसी कहते हैं—

मुहम्मद कवि जो प्रेम का, ता तन रकत न मांसु।
जेहि मुख देखा तेई हंसा, सुना तो आये आँसु॥

6. **भाषा के प्रयोग की समानता**—कबीरदास और जायसी दोनों ने प्रतीकात्मक भाषा तथा शब्दावली का प्रयोग किया है। कबीरदास जी ने अनेक भावों की उलटबाँसियों में भाषा के शब्दों को नए अर्थों में प्रयोग किया है एवं भाषा की प्रतियोगिता को एक जादुई परिवेश दिया है। जायसी ने भी ऐसे बहुत प्रयोग किए हैं, जहाँ इनकी भाषा अपने अर्थ से अलग संकेत में कुछ और अर्थ देने लगती है। यह भाषा का प्रयोग दोनों ही कवियों में काल एवं परिस्थिति सापेक्ष है। कबीरदास और जायसी दोनों ने अपने काल का प्रतिनिधित्व किया है।
7. **साधनात्मक रहस्यवाद की समानता**—कबीरदास और जायसी दोनों में साधनात्मक रहस्यवाद का स्वरूप देखने को मिलता है। दोनों ही उस अगम्य तक पहुँचने के लिए कठिन साधना का आलम्बन खोजते हैं।
जायसी कहते हैं—

नवौ खण्ड नव पँवरी, औ तहँ वज्र केवार।
चारि बसेरें सों चढै, सत सौं चढै जो पार॥

कबीरदास का रहस्य भी इसी साधना का अनुमान करता है—

अवधू गगन मण्डल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै,
बंक लाल रस पीजै॥

8. **दोनों में माया एक बाधक**—कबीरदास और जायसी दोनों ही ने माया को साधक के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा माना है। कबीरदास जी ने तो उसे 'ठगिनी' तक कहा है और जायसी भी माया को 'गोरखधन्धा' कहते हैं अर्थात् प्रिय से मिलन तभी सम्भव हो सकता है, जब बीच से माया हट जाती है।
9. **गुरु को समान महत्त्व**—कबीरदास और जायसी दोनों ने गुरु को समान रूप से महत्त्व दिया है। जायसी के 'पद्मावत' में रत्नसेन को तोता (गुरु) ही सबकुछ समझाता है—

गुरु सुआ जेहि पन्थ दिखावा।
बिन गुरु जगत को निर्गुन पावा॥

और **कबीरदास** के गुरु ने तो उनको गोविन्द बताया ही है—

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोबिन्द दियौ बताय॥

10. **प्रतीकों के माध्यम**—भाषा के सम्बन्ध में दोनों ने प्रतीकात्मक अभिव्यकि भी की है। इसी अर्थ में दोनों की भाषा एक पहेली या बुझौवल है। प्रतीक की यही पहचान है और विशेषता है। **कबीरदास** कमलिनी के माध्यम से आत्मा की स्थिति स्पष्ट करते हैं—

TOUCH 'n' PASS

काहे री नलिनी तू कुम्हलानी।
तेरे ही नालि सरोवर पानी॥

हठयोग और वेदान्त के रूपकों और प्रतीकों से **जायसी** भी नहीं बच सके;

गढ़ पर नीर खीनर दुइ नदी। पनिहारी जैसे दुरपदी॥
और कुण्ड एक मोती चूरू। पानी अमृत, कीच कपूरू॥

कबीर और जायसी के रहस्यवाद की असमानताएँ (वैषम्य)

उपर्युक्त समानताओं के अतिरिक्त कबीरदास और जायसी में कुछ निम्नलिखित असमानताएँ भी हैं—

1. जायसी आत्मा को पुरुष और परमात्मा (पद्मावती) को स्त्री मानते हैं, यह सूफी मसनबी शैली का प्रभाव है। कबीर आत्मा को विरहिणी और परमात्मा को पुरुष मानते हैं।
2. कबीर पुरुष को परमात्मा मानकर उसे निर्द्वन्द्व रूप में स्वतन्त्र छोड़ देते हैं। इस अर्थ में वह भारतीय परम्परा के अनुगामी हैं, किन्तु मसनबी अथवा सूफी परम्परा के अनुसार परमात्मा भी उतनी ही प्रबल कामना लेकर जीव (आत्मा) साधक से मिलने के लिए उत्सुक रहता है। जायसी ने यही किया है, इसलिए पद्मावती भी रत्नसेन से मिलने के लिए उतनी ही व्याकुल है, जितना रत्नसेन पद्मावती से मिलने के लिए। यही कारण है कि परमात्मा (परमपुरुष) पुरुष (आत्मा) के बिना अपूर्ण है। दोनों की पूर्णता के लिए दोनों की सापेक्ष सत्ता का मिलन आवश्यक है। इसलिए जायसी का रहस्यवाद जीवन के अधिक निकट ठहरता है। **चन्द्रबली पाण्डेय** ने लिखा है—"कबीर का रहस्यवाद प्राय: शुष्क और नीरस है, पर जायसी आदि का ऐसा नहीं।
3. कबीरदास जहाँ साधना-पक्ष पर अधिक बल देते हैं, वहीं जायसी उसके भावात्मक पक्ष पर। इसी से कबीर का साधना पक्ष ज्ञानमार्गी है और एक विचारक व चिन्तक की भूमिका रखता है, जबकि जायसी का रहस्यवाद मानव-मन की वेदना को स्पर्श करते हुए भावना को छूता चलता है और एक जीवित जगत का निर्माण करता है।
4. **जायसी** ने प्रकृति में भी उन असीम और रहस्यवादी संकेतों को खोजा है, जो मानव मन के भीतर हैं, यही कारण है कि नागमती के विरह में पेड़-पौधे और पशु-पक्षी सभी क्रियाशील हैं। कबीरदास को इन सबसे सरोकार नहीं है। इसी को लक्ष्य करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने कहा है—
   "कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है, वह सर्वत्र एक प्रमुख कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्च-कोटि की है। वे सूफियों की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखकर जगत् के नाना रूपों में उस प्रियतम के रूप-माधुर्य की छाया देखते हैं और कहीं सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारों को पुरुष के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार या विह्वलता के रूप में अनुभव करते हैं।"
5. कबीरदास अतीन्द्रिय रहस्यवाद को महत्त्व देते हैं और हठयोग को माध्यम मानकर ऐसा कर्म प्रस्तुत करते हैं, जिसकी साधना सामान्य पुरुष की सामर्थ्य से परे है, किन्तु जायसी उसी को जीवन की सरसता बनाकर प्रस्तुत करते हैं। वह जीवन में प्रेम को सबकुछ मानकर उसी को एक में समर्पित कराकर व्यक्ति को किसी एक के प्रति सच्चा और ईमानदार बनने पर जोर देते हैं। कबीर में ऐसा नहीं है।
6. कबीर का उद्देश्य संसार का त्याग, किन्तु जायसी का उद्देश्य संसार का भोग है।
7. कबीर और जायसी के साधनों में भी अन्तर है। जायसी यद्यपि हठयोग की भाषा का प्रयोग करते हैं, किन्तु सहज साधना की सघनता और उसका मर्म प्रकट करने के लिए, किन्तु कबीर तो शुद्ध हठयोग को साधन मानते हैं।
8. भारतीय दर्शन के अनुरूप कबीरदास का रहस्यवाद ऐकान्तिक तथा वैयक्तिक अधिक है, जबकि सूफी दर्शन से प्रभावित जायसी का रहस्यवाद समष्टिमूलक अधिक है। उसमें सांकेतिकता की प्रधानता है।
9. कबीरदास और जायसी की **दार्शनिक प्रवृत्ति** में भिन्नता है।
10. कबीरदास प्रिय (परमतत्त्व) को प्राप्त करने के लिए लौकिकोत्तर माध्यम अपनाते हैं। वह दुनिया को क्षणभंगुर दिखाकर संसार के त्याग के लिए रास्ता तैयार करते हैं। जायसी ऐसा नहीं करते। जायसी इसी संसार में प्रेम का पल्लवन और उसी का विकास परमतत्त्व-ज्ञान के रूप में मानते हैं।

प्र.7. मनासरोदक खण्ड का परिचय देते हुए निम्नलिखित पदों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) एक दिवस पून्यो तिथि आई। मानसरोदक चली नहाई॥
पद्मावती सब सखी बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई॥
कोई चंपा कोई कुंद सहेली। कोई सुकेत, करना, रस बेली।
कोई सु गुलाल सुदरसन राती। कोई सो बकावरि-बकुचन भाँती॥
कोई सो मौलसिरि, पुहपावती। कोई जाही जूही सेवती॥
कोई सोनजरद, कोई केसर। कोई सिंगार-हार नागेसर॥
कोई कूजा सदबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस-बेली॥
चलीं सबै मालति सँग फूली कवल कुमोद।
बेधि रहे गन गंधरब बास-परमदामोद।1॥

(ख) धरी तीर सब कंचुकि सारी। सरवर महँ पैठीं सब बारी॥
पाइ नीर जानौं सब बेली। हुलसहिं करहिं काम कै केली॥
करिल केस बिसहर बिस-भरे। लहरै लेहिं कवल मुख धरे॥
नवल बसंत सँवारी करी। होइ प्रगट जानहु रस-भरी॥
उठी कोंप जस दारिऊँ दाखा। भई उनंत पेम कै साखा॥
सरिवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा॥
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं। अब कित दीठ कमल औ कईं।
चकई बिछुरी पूकारै, कहाँ मिलौ हो नाँह।
एक चाँद निसि सरग मँह, दिन दूसर जल माँह॥5॥

उत्तर

मनासरोदक-खण्ड

'पद्मावत' जायसी का सर्वाधिक ख्याति प्राप्त महाकाव्य है। यह भक्तिकाव्यधारा की प्रेमाश्रयी शाखा को सर्वश्रेष्ठ काव्य है। इसमें प्रतीकात्मकता और रहस्यवाद के माध्यम से निर्गुण भक्ति का वर्णन किया गया है। इसमें चितौड़गढ़ के राजा रत्नसेन और पद्मावती की कथा को निर्गुण भक्ति की उपासना का आधार बनाया गया है। पद्मावत् में कुल 58 खण्ड हैं, जिनमें से चतुर्थ खण्ड का नाम 'मानसरोदक खण्ड' है। मनसरोदक में स्नान के माध्यम से इसमें पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का मनोहरी चित्रण किया गया है।

पदों की व्याख्या

(क) एक दिवस ..... **परमदामोद॥1॥**

शब्दार्थ—पून्यो = पूर्णमासी; **केत** = केतकी; **करना** = वसन्त में खिलनेवाला एक सफेद फूल; **गुलाल** = वसन्त में खिलने-वाला एक लाल रंग का फूल; **सुदरसन** = सुदर्शन, एक बड़ा सफेद फूल; **बकावरि** = गुल बकावली; **बकुचन** = गुच्छा; **जाही** = चमेली की जाति का एक फूल; **सेवती** = सफेद गुलाब; **सोनजरद** = सोनजुही; **नागेसर** = नागकेसर; **कूजा** = सफेद जंगली गुलाब; **सदबर्ग** = गेंदा की जाति का एक फूल; **परमदामोद** = परम आमोद।

सन्दर्भ—प्रस्तुत चौपाइयाँ और दोहा प्रेममार्गी शाखा के मूर्धन्य महाकवि **मलिक मुहम्मद जायसी** द्वारा रचित **'पद्मावत'** महाकाव्य के **'मानसरोदक-खण्ड'** से अवतरित हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत चौपाइयों में महाकवि जायसी ने फूलों के रूप में पद्मावती तथा उसकी सहेलियों का प्रतीकात्मक वर्णन किया है। यह उस समय का वर्णन है, जब पद्मावती अपनी सहेलियों के साथ मानसरोवर पर स्नान करने जाती है।

व्याख्या—एक दिवस पूर्णिमा की तिथि आई। पद्मावती मानसरोवर में स्नान करने चली। उसने सारी सहेलियों को बुला लिया। वे सारी सहेलियाँ वहाँ सजी-धजी, उमंग में भरी इस प्रकार चली आईं, मानो कोई फूलों से खिली फुलवारी ही उठकर चली आई हो। इन सखियों में से कोई चम्पा, कोई कुन्द, कोई केतकी, कोई करना तथा कोई रस बेलि के समान थी तथा कोई गुलाल, कोई सफेद सुदर्शन, कोई गुल बकावली के गुच्छों के समान सुशोभित थी। कोई मौलश्री के समान फूलों से लदी हुई थी। कोई जाही, कोई जूही, कोई सफेद गुलाब, कोई सोनजुही, कोई केसर, कोई हरसिंगार, कोई नागकेसर, कोई सफेद गुलाब, कोई सदवर्ग, कोई चमेली, कोई कदम्ब के समान सरस लताओं जैसी थी।

TOUCH 'n' PASS

ये सब सहेलियाँ पद्मावती के साथ चलती हुईं इस प्रकार शोभा पा रही थीं, जैसे मालती के साथ कमल और कुमुद शोभा पाते हों। गन्धर्वरूपी भौंरे उनके शरीरों से निकलने वाली सुगन्ध का पान कर परम आनन्द में मदमत्त हो रहे थे।

विशेष—1. यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य को उद्दीप्त करने के लिए कवि ने सखियों और पद्मावती में फूलों (उपमानों) का अन्तर्भाव किया है। अत: उनका वर्णन सखियों के नामों के रूप में न होकर फूलों के नामों के रूप में हुआ है। यह कवि की वर्णन शक्ति का चमत्कार है। 2. कवि का पुष्प विज्ञान भी देखते ही बनता है। 3. **भाषा-शैली**—अवधी और शैली प्रतीकात्मक। 4. **अलंकार**—"जनु फुलवारि सबै चलि आई" में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(ख) धरी तीर ..... जल माँह।।5।।

शब्दार्थ—**तीर** = किनारा; **कंचुकि** = चोली; **सारी** = साड़ी; **महँ** = में; **पैठी** = प्रविष्ट हुईं, घुसीं; **बारी** = बालाएँ, लड़कियाँ; **काम कै केली** = कामक्रीडाएँ; **करिल** = काले; **विसहर** = विषधर, साँप; **कोंप** = कोपल; **दारिउँ** = दाडिम, अनार; **दाखा** = द्राक्षा, अंगूर; **उनंत** = उन्नत; **तरई** = तारे, सखियाँ; **ऊई** = उदित हुईं; **कूईं** = कुमुदिनी; **नाँह** = स्वामी; **सरग** = आकाश।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में जायसी ने पद्मावती और उसकी सखियों के सरोवर-स्नान का चित्र उपस्थित करते हुए उनके सौन्दर्य पर दृष्टिपात किया है।

व्याख्या—प्रस्तुत पद्यांश में जायसी कहते हैं कि पद्मावती और उसकी सहेलियों ने अपनी चोलियाँ और साड़ियाँ निकालकर सरोवर के किनारे पर रख दीं और वे सब बालाएँ पानी में घुस गईं। वे सभी बालाएँ जल का स्पर्श पाते ही इस प्रकार खिल उठीं, जैसे कोई बेल पानी मिलते ही लहलहा उठी और वे विविध काम-क्रीडाएँ करने लगीं। उनके काले केश जल से भरे सरोवर में इस प्रकार लहरा रहे थे, जैसे विषैले साँप हों। उनके मुख कमल के समान थे। मुख एवं केशों को एक साथ देखकर ऐसा लगता था, मानों कमल को पकड़ने के लिए साँप लहराकर उसकी ओर बढ़ रहे हों। उन स्नान करती बालाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो नवीन वसन्त ने उनका शृंगार किया हो और वे कली के समान बालाएँ वसन्त के आने से रस से आपूरित हो उठी हों। वे ऐसी लगती थीं जैसे अनार और अंगूर की कोंपले हों, जो प्रेम की शाखाओं पर ऊँचे चढ़ रही हों। भाव यह है कि यौवन से उद्दीप्त उनका शरीर प्रेम-प्राप्ति के लिए लालायित था। क्योंकि ये सुन्दरियाँ चाँद (पद्मावती) और तारे (उसकी सखियाँ) सरोवर में नहा रही थीं; अत: सरोवर हर्ष से फूला नहीं समा रहा था। मानो वह प्रसन्नता से इतना विस्तृत हो गया था कि संसार में समाकर फूट ही जाएगा। महाकवि जायसी कहते हैं कि वह जल धन्य है, जिसमें पद्मावती और उसकी सखियाँ स्नान कर रही हैं। इन्हें देखकर कमल और कुमुदिनी लज्जा के कारण छिप गए हैं, अब सरोवर में न कमल दिखाई देते हैं, और न कुमुदिनियाँ।

मानसरोवर में पद्मावती-रूपी चन्द्रमा एवं उसकी सखियों-रूपी तारों को उदित हुआ देख चकवी ने यह निश्चित कर लिया है कि रात आ गई है और वह यह अनुभव करने लगी है कि वह अपने प्रियतम (चकवे) से बिछुड़ गई है। इसलिए वह पुकारकर कहने लगती है कि—"हे स्वामी! बड़ी कठिनाई का सामना आ पड़ा है। अब मैं तुमसे कहाँ मिलूँगी; क्योंकि एक चन्द्रमा तो रात में आकाश में चमककर हमें अलग कर देता है। हमें शाप मिला हुआ है कि हम रात में न मिल सकेंगे, लेकिन यह पद्मावती-रूपी दूसरा चाँद तो दिन में ही निकल आया। अत: अब दिन में भी हमारा मिलन असम्भव हो गया है।"

विशेष—1. यहाँ जल में स्नान करती हुई कुमारियों के आंगिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, भारतीय संस्कृति और मर्यादा के अनुकूल नहीं है, फिर भी शृंगार रस की दृष्टि से वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। 2. **भाषा-शैली**—अवधी, शैली प्रतीकात्मक। 3. **अलंकार**—'करिल केस.....कवँल मुख धरे' तथा 'भई उनंत प्रेम के साखा' में उत्प्रेक्षा; 'चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा' में रूपकातिशयोक्ति; 'अब कित दीठ कमल औ कूईं' में प्रतीप एवं 'चकई बिछुरी..... जल माँह' में भ्रान्तिमान् अलंकारों का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

❑

UNIT-V

भक्तिकालीन सगुण कवि

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी जो श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि मैं मन, वचन और कर्म से तुम्हें ब्रज भेज रहा हूँ?

उत्तर श्रीकृष्ण उद्धव को बिना देर किए अर्थात् अविलम्ब ब्रज भेजना चाहते हैं; अत: उनका मन, वचन और कर्म से उन्हें ब्रज भेजने के लिए कहने का अभिप्राय उनको इस बात के प्रति आश्वस्त करना है कि वह उनसे यह बात उपहास में नहीं कह रहे हैं। उनका वहाँ अविलम्ब जाना अत्यन्त आवश्यक है। उनके ऐसा कहने से उद्धव के नकार की सम्भावनाएँ समाप्त हो गई हैं।

प्र.2. ''तुम गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना का सन्देश दे आओ।'' इस कथन के पीछे छिपे श्रीकृष्ण के व्यंग्य को समझाइए।

उत्तर ''तुम गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना का सन्देश दे आओ,'' इस कथन के पीछे श्रीकृष्ण का बहुत बड़ा व्यंग्य छिपा है। वह अच्छी तरह जानते हैं कि उद्धव निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और उन्हें अपने इस ज्ञान पर अत्यन्त घमण्ड भी है। इसलिए वे कहना चाहते हैं कि यदि तुम सच्चे ब्रह्मज्ञानी हो तो गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना में प्रवृत्त कर दो। इसी में तुम्हारे ज्ञान की सार्थकता है।

प्र.3. वाग्वैदग्ध्य अथवा वक्रोक्ति से आप क्या समझते हैं? भ्रमरगीत से इसका सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए?

उत्तर सन्तकवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' हिन्दी-साहित्याकाश में सदैव चमकनेवाला नक्षत्र है। इस ग्रन्थ को साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में इसके कटाक्ष, व्यंग्य, वचन-चातुर्य एवं उपालम्भ जैसे गुणों से युक्त पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, जो साहित्यकारों को सहसा ही मोह लेते हैं। इन सभी गुणों से युक्त कथन को साहित्य में 'वाग्वैदग्ध्य' अथवा 'वक्रोक्ति' कहते हैं। ऐसे पदों का श्रेष्ठ संकलन 'सूरसागर' के 'भ्रमरगीत' प्रसंग में उपलब्ध है। 'भ्रमरगीत' की वाग्वैदग्ध्यता अथवा वक्रोक्ति ने 'सूरसागर' को उच्चकोटि का काव्य और सूरदास को अमर कवि बना दिया है।

प्र.4. सूरदास ने निर्गुणब्रह्म की तुलना किससे की है?

उत्तर सूरदास ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की तुलना मूली के पत्तों से की है। जब उद्धव ब्रज पहुँचते हैं तब गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारा यह योग, जिसके द्वारा तुम निर्गुण की साधना कराना चाहते हो, मूली के पत्तों के समान तुच्छ है। तुम मूली के पत्तों के समान तुच्छ योग के बदले हमसे सगुण उपासना के मोती लेना चाहते हो। भला इस संसार में ऐसा मूर्ख कौन होगा, जो ऐसा सौदा करना चाहेगा।

प्र.5. 'खोटो खायो' मुहावरे का क्या आशय है? सूरदास ने इसका प्रयोग किस अर्थ में किया है?

उत्तर 'खोटो खायो' मुहावरे का अर्थ 'धोखा खाना' या 'हानि उठाना' है। सूरदास ने इसका प्रयोग उद्धव के निर्गुण की निरर्थकता व्यक्त करने के लिए किया है। उनकी गोपियाँ उद्धव को संकेतित करके कहती हैं कि यह निर्गुण का व्यापारी पहले ही खराब माल खरीदकर धोखा खा चुका है। यह तो उसी समय बड़ी हानि उठा चुका है, जब इसने खराब माल व्यापार के लिए खरीदा था। अब यह उस खराब माल को बेचने के लिए उसे सिर पर रखे भटक रहा है, अब भला कौन इसके इस खराब माल को खरीदेगा।

प्र.6. दशरथ को अपयश का भय कौन दिखाती है?

उत्तर कैकेयी दशरथ को अपयश का भय दिखाती है। वह कहती है कि सवेरा होते ही यदि राम मुनि वेश धारण करके वन को नहीं जाते हैं तो हे राजन्, यह निश्चित रूप से अपने मन में जान लो कि मेरा मरण होगा अर्थात् मैं आत्मघात कर लूँगी और इससे आपका घोर अपयश होगा।

प्र.7. जब कैकेयी ने भरत के राज्याभिषेक का वर माँगा, तब राजा दशरथ कैकेयी को क्या कहकर आश्वस्त करते हैं?

उत्तर जब कैकेयी ने भरत के राज्याभिषेक का वर माँगा, तब राजा दशरथ कैकेयी को यह कहकर आश्वस्त करते हैं कि मेरे लिए भरत एवं राम दोनों एकसमान हैं। ये दोनों मेरी दो आँखें हैं। मैं प्रात: होते ही भरत और शत्रु को बुला लाने के लिए दूत भेजूँगा। उनके आ जाने पर मैं अच्छा दिन और मुहूर्त शोधवाकर सब तैयारी करके डंका बजाकर भरत का राज्याभिषेक कर दूँगा।

प्र.8. कैकेयी द्वारा राम के वनवास का वर माँग लेने पर दशरथ पर उसका क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर कैकेयी द्वारा राम के चौदह वर्ष के वनवास का वर माँग लेने पर दशरथ ऐसे सहम गए, मानो वन में बाज ने बटेर पर झपट्टा मारा हो। उनके चेहरे का रंग उड़ गया, मानो ताड़ के पेड़ को बिजली ने झुलसा दिया हो। वे सोचते हैं कि मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, लेकिन फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़सहित उखाड़कर नष्ट कर डाला हो।

प्र.9. तुलसीदास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' की रचना कब और कहाँ की थी?

उत्तर तुलसीदास जी ने 'श्रीरामचरितमानस' की रचना संवत् 1631 में रामनवमी के दिन अयोध्या में प्रारम्भ की, परन्तु इसके कुछ अंश की रचना उन्होंने काशी में रहकर भी की। इसकी पुष्टि किष्किन्धाकाण्ड के प्रारम्भ में आए सोरठे से भी होती है। इस सोरठे में उन्होंने काशी सेवन की बात का वर्णन किया है। 'श्रीरामचरितमानस' की रचना संवत् 1633 की मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पंचमी दिन रविवार को पूर्ण हुई। काल गणना के अनुसार रचना-समाप्ति की यह तिथि शुद्ध नहीं ठहरती, इसलिए इसे विश्वसनीय नहीं माना जाता है।

प्र.10. तुलसीदास की प्रमुख रचनाएँ कौन-सी हैं? इनके नाम लिखिए।

उत्तर

तुलसीदास की प्रमुख रचनाएँ

तुलसीदास द्वारा रचित लगभग चौवन काव्य-ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिनमें केवल बारह महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। इन ग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं—

1. दोहावली, 2. सतसई, 3. रामाज्ञा-प्रश्न, 4. कवितावली, 5. हनुमान्बाहुक, 6. श्रीकृष्णगीतावली, 7. श्रीरामचरितमानस, 8. विनयपत्रिका, 9. पार्वती-मंगल, 10. जानकी-मंगल, 11. गीतावली, 12. रामललानहछू, 13. बरवै रामायण, 14. संकटमोचन आदि।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भ्रमरगीत की परिभाषा देते हुए इसका अर्थ लिखिए।

उत्तर

भ्रमरगीत : अर्थ, परिभाषा

हिन्दी साहित्य में 'भ्रमर' शब्द रसलोलुप पुरुष के प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है। इस प्रतीक द्वारा पुरुष की निष्ठुरता, विश्वासघात और बेवफाई का चित्रण किया जाता है। **डॉ० हरवंशलाल शर्मा** के अनुसार—"पुरुष की रसलोलुपता की अभिव्यक्ति-हेतु भ्रमर और कली का प्रतीकात्मक रूप साहित्यिक क्षेत्र में भले ही पुरुष द्वारा अवतरित किया गया हो, परन्तु लोक में उसकी अवतारणा नारी द्वारा ही हुई होगी। नारी की इस देन को पाकर भावुक कवियों की अभिव्यक्ति खिल उठी और उसकी मूक पीड़ा मुखरित होकर समाज का सर्वश्रेष्ठ काव्य बन गई।" अर्थात् भ्रमर को सम्बोधित करके जो गीत प्रस्तुत किए गए, उन्हें 'भ्रमरगीत' की संज्ञा दी गई। कृष्ण-कथा में ब्रज की गोपियाँ विरह-वेदना में व्यथित होकर कृष्ण को इसी रूप में मानती हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण का वर्ण भ्रमर के समान श्याम है। जैसे भ्रमर कली-कली पर मँडराकर उड़ जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी गोपियों को अपने प्रेम-जाल में फँसाकर मथुरा चले गए। वहाँ से न तो स्वयं समय पर लौटे और न ही कोई अपना प्रेम-सन्देश भेजा।

सन्त कवि सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' में भ्रमरगीत का प्रसंग इस प्रकार है—श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ कंस के निमन्त्रण पर मथुरा गए और वहाँ कंस को मारकर अपने पिता वसुदेव का उद्धार किया। उसी समय कुब्जा नाम की कंस की एक दासी थी, जिसको उसकी सेवा से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण अपने प्रेम की अधिकारिणी बनाया। अवधि बीत जाने पर भी जब श्रीकृष्ण न लौटे तो नन्द, यशोदा, राधा और ब्रज के सभी निवासी व्यथित हो उठे। बहुत दिन बाद श्रीकृष्ण ने ज्ञानोपदेश द्वारा गोपियों को समझाने-बुझाने हेतु अपने सखा उद्धव को ब्रज में भेजा। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के शब्दों में—"उद्धवजी को ही क्यों भेजा? कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान पर बड़ा गर्व था, प्रेम अथवा भक्ति-मार्ग की वे उपेक्षा करते थे। कृष्ण का उन्हें गोपियों के पास भेजने का यह आशय था कि वे उनकी प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता देखकर शिक्षा ग्रहण करें और सगुण भक्तिमार्ग की सरसता और सुगमता के सामने उनका ज्ञान-गर्व चूर हो।"

श्रीकृष्ण द्वारा ब्रज में भेजने पर उद्धवजी पूरी तैयारी के साथ आते हैं और आते ही गोपियों पर निर्गुण ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) की वर्षा करने लगते हैं। गोपियाँ किसी भी प्रकार उनके ज्ञान को स्वीकार नहीं करतीं और अपने अनेक तर्क-वितर्कों से उन्हें पराजित कर देती हैं। सूरदास की गोपियों में वाक्चातुरी, वाग्विदग्धता और उपालम्भ देने की प्रवृत्ति का पर्याप्त विकसित रूप हमें प्राप्त होता है। वे बड़ी चतुरता और विदग्धता से उद्धव के कठोर उपदेशों का सरस तर्कों से उत्तर देती हैं और श्रीकृष्ण के लिए अनेक उपालम्भ सुनाकर अद्‌भुत वक्रोक्तियों से उन्हें इतना छका देती हैं कि वे अपना निर्गुण का भारी-भरकम आवरण उतार फेंकने को विवश हो जाते हैं। वस्तुत: सूरदास जी ने अपने समस्त भ्रमरगीत को भावुकता, सहृदयता, चतुरता एवं वाग्विदग्धता की अनेक उक्तियों से भरकर अत्यन्त सरस बना दिया है।

प्र.2. सूरदास के भ्रमरगीत का मूलस्त्रोत क्या है? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर सूरसागर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावी अंश 'भ्रमरगीत' माना जाता है। इसमें दर्शन, प्रेम, भक्ति और काव्य की धाराएँ अपने पूरे आवेश से फूटी हैं। इसकी इन सभी विशेषताओं के कारण इसे समूची हिन्दी गीतिकाव्य-परम्परा में सर्वोत्कृष्ट सम्मान दिया जाता है, सूरदास को इस परम्परा का जनक भी माना जाता है।

भ्रमरगीत का अर्थ और मूलस्त्रोत—भ्रमरगीत का अर्थ है—'भ्रमर के सम्बन्ध में गाए जानेवाले गीत।' लेकिन साहित्य में इसका प्रचलन इसके भिन्न अर्थ में होता है—'उद्धवविषयक गीत।'

भ्रमर मूलस्त्रोत 'श्रीमद्‌भागवत्' के दशम स्कन्द में विद्यमान है। जब कृष्ण अपने मित्र उद्धव को दूत बनाकर ब्रज में भेजते हैं तो गोपियाँ उनका ज्ञानोपदेश सुनकर व्याकुल हो उठती हैं। वे कृष्ण पर भी खीझ रही थीं। कहीं पास में उड़ते हुए गुनगुनाते भ्रमर को ही लक्ष्य करके प्रकारान्तर से उन्होंने उद्धव तथा कृष्ण दोनों को अनेक उपालम्भ (उलाहना) देकर खरी-खोटी सुनाई। इसमें गोपियों ने अपनी निश्छलता और कृष्ण तथा उद्धव के छली स्वभाव की जो व्याख्या की, वही मूलरूप से इसका प्रतिपाद्य बना।

भ्रमरगीत परम्परा—डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुष्यन्त की पहली रानी हंसपादिका द्वारा दुष्यन्त को जो उपालम्भ भ्रमर सम्बोधन से दिया गया है, उसे पहला भ्रमरगीत माना है। उनके अनुसार, यही परम्परा अपभ्रंश के दोहों से गुजरती हुई सूर तक पहुँची। विद्यापति के भी कुछ उपालम्भ महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन वहाँ किसी भ्रमर का उल्लेख नहीं है। अन्तत: **डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** के शब्दों में, वास्तव में हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत शुद्ध 'भ्रमरगीत' के प्रणेता सूरदास ही हैं।

प्र.3. सूरदास के विप्रलम्भ शृंगार में वियोग की समस्त अन्तर्दशाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

वियोग की अन्तर्दशाएँ

सूरदास के विप्रलम्भ शृंगार में वियोग की दशाएँ दस मानी गई हैं—1. अभिलाषा, 2. चिन्ता, 3. स्मरण, 4. गुणकथन, 5. उद्वेग, 6. प्रलाप, 7. उन्माद, 8. व्याधि, 9. जड़ता, 10. मूर्च्छा। सूरदास के काव्य में इन सभी दशाओं के निम्नलिखित उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं—

1. **अभिलाषा—** निरखत अंक स्यामसुन्दर के, बार-बार लावति छाती।
   लोचन जल कागद मसि मिलि के, ह्वैगई स्याम-स्याम की पाती।।
2. **चिन्ता—** मधुकर ये नैन पै हारे।
   निरखि-निरखि मग कमल-नयन को प्रेम मगन भए भारे।।
3. **स्मरण—** मेरे मन इतनी सूल रही।
   वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखी, जे नंदलाल कही।
   अथवा
   ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
   हंससुता की सुन्दर कगरी, अरू कुंजनि की छाहीं।।
4. **गुणकथन—** लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?
   कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतरगति यों लूटत।।
   चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।
   नटवर भेस नंद-नंदन को वह विनोद गृह बन तें आवत।।

अथवा

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियो तनक चितवन में, चपल नैन की कोर।

5. **उद्वेग—** तिहारो प्रीति किधौं तरवारि।
दृष्टिधार करि मारि साँवरे, घायल सब ब्रज-नारि।।

6. **प्रलाप—** इन नैनन के नीर सखी री, भेज भई चर नाउँ।
चाहति हौं याही पै चढ़ि कै, स्याम मिलन को जाउँ।।

7. **उन्माद—** माधव यह ब्रज को व्योहार।
मेरे कह्यो पवन को भुस भयो, गावत नंदकुमार।
एक ग्वाल गोधन ले रेंगति, एक लकुट कर लेति।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँट कै देति।।

8. **व्याधि—** ऊधो ज, मैं तिहारे चरनन लागों, या ब्रज करवि भाँवरि।
निसिन नींद आवै, दिन न भोजन भावै, मग जोवत भई दृष्टि साँवरि।।

9. **जड़ता—** बालक संग लिए दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर सीस सुनि चौकत नावहिं, अब काहे न मुख बोलत।।

10. **मूर्च्छा—** सोचत्ति अति पछताती राधिका, मूर्च्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरे ते, विथा न जात सही।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वियोग की विभिन्न अन्तर्दशाओं का सूरदास जी ने बड़ा स्वाभाविक और सटीक वर्णन किया है। 'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रकृति का संवेदनात्मक रूप अपने में बेजोड़ है। इस दृष्टि से सूरदास जी ने उच्चकोटि की भावुकता का परिचय दिया है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** द्वारा कहा गया यह कथन सत्य है—"जिस क्षेत्र को सूर ने चुना है, उस पर उनका अधिकार अपरिमित है। उसके वे सम्राट हैं।"

प्र.4. सूरदास के काव्य के कला-पक्ष की विशेषताएँ बताइए तथा उनके काव्य की भाषा एवं अलंकार योजना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

सूर के कला-पक्ष की विशेषताएँ

कला-पक्ष से आशय अभिव्यक्ति पक्ष से है। कवि ने जो कुछ अनुभव किया, उसे बड़े ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया, यह कला-पक्ष का विषय है। भाव एवं कला का समन्वय ही उत्तम काव्य का लक्षण है।

साधारणतया कला-पक्ष में निम्नलिखित बातों पर विचार किया जा सकता है—

1. भाषा, 2. चित्रमयता, 3. अलंकार-योजना, 4. छन्द, 5. शब्द-शक्तियाँ, 6. गुण, 7. मुहावरे और लोकोक्तियाँ।

1. **भाषा**—काव्य में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूरदास ने ब्रज की भाषा को ही अपने काव्य की भाषा बनाया है। सूर की भाषा में कोमलकान्त पदावली, भावानुकूल शब्दचयन, सजीवता, धाराप्रवाहमयता, सप्राणता आदि प्रमुख विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। सूर ने अपनी भाषा को भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों के प्रयोग से समृद्ध किया है। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने विदेशी शब्दों को भी देशी भाषा के रस में सिक्तकर, उन्हें काव्य-सौष्ठव बढ़ाने की क्षमता देकर प्रयुक्त किया है। नीचे विभिन्न प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

तत्सम शब्द—सायक, सत्वर, त्राहि-त्राहि, वसुधा, पिनाक, खगपति, अभिराम, पन्नग, मुकुलित, करम, दम्पती, कलेवर, कलत्र, चिबुक, निरालम्ब, भगिनी, नारिकेल, प्रतीत, जलज, परिवेश आदि।

तद्भव शब्द—अनुभवत, तिप, जदपि, कोरा, जीभ, जलज, धरनी, कोखि, काठ, आखर, औसर, मोक्त, लिलार, खम्ब, मसान, मूसे, भौन, बीता आदि।

ग्रामीण शब्द—टकटोरत, धुकधुकी, मूड, करतूति, डहकावै, डाटे, ढोरत, दूकि आदि।

अनुकरणात्मक शब्द—अनुकरणात्मक शब्दों की विशेषता यह है कि उनकी ध्वनि ही अर्थ को बहुत-कुछ व्यक्त कर देती हैं। उदाहरणतः—घहरानि, भहरात, किलकिलात, टनटनात, अर्रात, आदि।

विदेशी शब्द—सूर के काल में फारसी राजभाषा थी; अत: सूरदास जी ने फारसी शब्द अपनाने में हिचक नहीं की। सूरकाव्य में प्रयुक्त अरबी, फारसी के कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

फारसी—आवाज, दरबार, दाग, आब, चुगली।

अरबी—अमल, अरज, गरीब, आखिर, आदमी।

2. **अलंकार-योजना**—सूरदास द्वारा रचित सूरसागर में सभी अलंकारों के उदाहरण मिलते हैं। जहाँ एक ओर सूर सरल भाषा में भाव व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं, वहीं दूसरी ओर भाषागत चमत्कार लाने के लिए अप्रस्तुत योजना का भी सफलतापूर्वक निर्वाह कर लेते हैं। सूरदास जी ने सांगरूपक का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसी के साथ सूरदास ने निम्नलिखित अलंकारों का भी प्रयोग किया है—

अन्योक्ति, समासोक्ति, प्रतीप, सन्देह, विरोधाभास, यथासंख्य, विभावना, भ्रशन्तिमान्, श्लेष, प्रतिवस्तूपमा, वक्रोक्ति, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, व्यतिरेक, परिकर, पर्यायोक्ति और उपमा आदि।

प्र.5. निम्नलिखित पद्यांश की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

गोकुल सबै गोपाल-उपासी।
जोग-अंग साधन जे उधो, ते सब बसत ईसपुर काशी॥
यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहिती चरननि रसरासी।
अपनी सीतलताहि न छाँड़त यद्यपि है ससि राहु-गरासी।
का उपराध जोग लिखि पठवत प्रेमभजन तजि करत उदासी।
सूरदास ऐसी को बिरहिन माँगति मुक्ति तजे गुनरासी?॥21॥

उत्तर

पद्यांश की व्याख्या

गोकुल सबै ..... **तजे गुनरासी?॥21॥**

शब्दार्थ—उपासी = उपासक; **जोगअंग** = योग के आठ प्रकार (यम, जप, नियम, आसनादि); **ईसपुर** = ईश्वर (शिव) की नगरी, वाराणसी; **रसरासी** = रसमग्न; **गरासी** = ग्रसित; **गुनरासि** = गुण समूह, कृष्ण।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश हिन्दी साहित्य के भ्रमरगीत सार से लिया गया है। इसके रचयिता सूरदास हैं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसके सम्पादक हैं।

प्रसंग—ब्रज और ब्रज की गोपियों के प्रेम में डूबे श्रीकृष्ण अपने मित्र उद्धव को अपना संदेशवाहक बनाकर व्यथित गोपिकाओं को सांत्वना देने एवं ज्ञान मार्ग की सीमाओं से परिचित कराने हेतु ब्रज भेजना चाहते हैं।

व्याख्या—सभी गोकुलवासी गोपाल कृष्ण के उपासक हैं। हे उद्धव! जो लोग योग के अंगों की साधना करते हैं, वे तो ईश्वर की नगरी काशी में रहते हैं (ब्रज में नहीं। अतएव तुम अपने योग का उपदेश वहीं जाकर दो, यहाँ नहीं)। यद्यपि हरि ने हमको छोड़कर अनाथ बना दिया है लेकन फिर भी हम उनके चरण-रस में मग्न हैं। हालाँकि हमको राहु (विरह) ने ग्रस रखा है, लेकिन फिर भी चन्द्रमा की तरह हमने भी अपनी शीतलता (प्रेम-भाव) को नहीं छोड़ा है। हमसे (अनजाने में) क्या अपराध हुआ है जो कृष्ण ने (तुम्हारे द्वारा) हमको योग का संदेश लिख भेजा है एवं प्रेम-भजन को त्यागने की सलाह देकर हमको (विरक्त साधु की भाँति) उदास बना दिया है। ऐसी कौन विरहिणी है जो अनेक गुणों से युक्त (कृष्ण) को छोड़कर मुक्ति की माँग करेगी? आशय यही है कि ब्रज की सभी गोपियाँ कृष्ण के सम्मुख मुक्ति को भी हेय मानती हैं (निराकार तो उनके लिए हेय है ही)।

विशेष—1. प्रेम की अनन्यता, निरीहता, विवशता और परोक्ष व्यंग्य यहाँ पर पूर्णतया साकार हो उठे।

2. द्रष्टव्य यह है कि गोपियाँ योग का विरोध नहीं करतीं अपितु योग के अधिकारी (अपने को नहीं) दूसरों को बताती हैं।
3. यहाँ पर अनुप्रास (रसरासि), निदर्शना (यद्यपि ¨गरासी), परिकर (ईसपुर कासी) एवं उदाहरण (चन्द्र-राहु) अलंकार हैं।
4. **भावसाम्य**—(i) "मुक्ति-मुक्ता को मोल-माल ही कहाँ है, जब मोहन लला पै मन-मानिक ही बार चुकी।"—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' : उद्धव शतक (ii) "कहा करौं बैकुण्ठ लै कल्पवृक्ष की छाँह। रहिमन ढाक सुहावनो जो प्रीतम गलबांह।।"

प्र.6. तुलसी की भाषा-शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

तुलसीदास की भाषा-शैली

तुलसीदास की भाषा व्याकरणसम्मत है। उन्होंने भाषा को व्याकरण से मुक्त नहीं किया है, बल्कि उसके स्वरूप को निखार दिया है। वह लिंग आदि के दोष से मुक्त है, वाक्य-रचना निर्दोष है। अवधी ही नहीं, उनकी ब्रजभाषा भी व्याकरण की कसौटी पर खरी

उतरती है। **डॉ० उदयभानु सिंह** द्वारा उनकी व्याकरणसम्मत भाषा के विषय में टिप्पणी की गयी है—"इन दोनों भाषाओं पर उनकी रचनाओं में इतना अधिकार दिखाई देता है, जितना स्वयं सूरदास का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था। इन दोनों लब्ध-प्रतिष्ठित कवियों ने व्याकरण का गला दबाकर शब्दों के ऊपर खूब अत्याचार किया है, परन्तु गोसाईंजी ने ब्रजभाषा और अवधी दोनों के व्याकरणों के नियमों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है।"

तुलसी-काव्य में शैली की दृष्टि से विविधता के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित लगभग सभी काव्य-शैलियों का प्रयोग अपनी काव्य-रचना में किया है। उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं—स्वाभाविकता, सरलता, सरसता और नाटकीयता। तुलसीदास ने निम्नलिखित शैलियों में अपने काव्यों की रचनाएँ की—

दोहा-चौपाई पद्धति	—	श्रीरामचरितमानस।
स्तोत्र शैली	—	श्रीरामचरितमानस और विनयपत्रिका।
लोकगीत शैली	—	रामललानहछु, पार्वती-मंगल।
कवित्त-सवैया पद्धति	—	कवितावली।
दोहा पद्धति	—	दोहावली।
गेयपद शैली	—	विनयपत्रिका, गीतावली।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सूरदास के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व एवं रचनाओं के विषय में लिखिए।

उत्तर

सूरदास का जीवन-परिचय

जन्मकाल—भक्तिकाल के महाकवि सूरदास का जन्मकाल विद्वानों ने अपने शोध के उपरान्त **संवत् 1535** की वैशाख शुक्ल पंचमी (सन् 1478 ई०) माना है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये जन्मान्ध थे, कुछ इन्हें बाद में अन्धा हुआ मानते हैं। ये श्रीनाथ मन्दिर से कुछ दूरी पर गोवर्द्धन की तलहटी में स्थित गाँव **पारसौली** के निकट रहा करते थे। उनकी शैक्षणिक योग्यता के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सूरदास के जीवन के विषय में जो अस्फुट-से तथ्य प्राप्त होते हैं, उन्हें विद्वानों ने दो श्रेणियों में विभाजित किया है—

1. **सूरदास की रचनाओं में उल्लेखित तथ्य**—सूरदास जी ने अपनी रचनाओं में कहीं भी अपने व्यक्तित्व का अधिक परिचय नहीं दिया है। उनकी रचनाओं में वर्णित तथ्यों के अवलोकन से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे **वल्लभाचार्य** के शिष्य थे और नेत्रविहीन थे। सूरदास की 'साहित्यलहरी' के अनुसार ये **ब्रह्मभट्ट** थे और महाकवि **चन्दबरदाई** के वंशज थे, लेकिन इस मत का खण्डन इस आधार पर हो चुका है कि 'साहित्यलहरी' का यह अंश प्रक्षिप्त है। अनेक विद्वान् सम्पूर्ण 'साहित्यलहरी' को ही सूरदास की रचना नहीं मानते।
2. **अन्य समकालीन तथा परवर्ती कवियों की रचनाओं में उल्लेखित तथ्य—यदुनाथ-कृत** 'वल्लभ-दिग्विजय', **नाभादास-कृत** 'भक्तमाल' **गोकुलनाथ-कृत** 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' आदि ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों से सन्त सूरदास के जीवन पर कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है, लेकिन यह भी यथेष्ट नहीं है। इनके अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के समीप स्थित **'सीही'** नामक स्थान पर हुआ था। इनके पूर्वज सारस्वत ब्राह्मण थे। उसके उपरान्त किसी कारणवश सांसारिकता से विरक्त होकर इन्होंने वैराग्य ग्रहण कर लिया और आगरा तथा मथुरा के मध्य स्थित गऊघाट पर रहने लगे। ये यहाँ स्वरचित निर्गुण भक्ति के पदों को गाया करते थे। यहीं इनका साक्षात्कार वल्लभाचार्य से हुआ। वल्लभाचार्य इनके पदों को सुनकर बहुत अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने इन्हें अपना शिष्य बना लिया और अपने साथ गोवर्द्धन पर स्थित श्रीनाथ मन्दिर में ले आए। वल्लभाचार्य की इच्छानुसार पूरनमल खत्री द्वारा इस मन्दिर का निर्माण कराया गया। ये यहीं रहते थे। मन्दिर के निर्माण-कार्य पूरा होने के पश्चात् इन्होंने सूरदास को मन्दिर की कीर्तन-सेवा सौंप दी और इन्हें कृष्ण-भक्ति के पदों की रचना करने की प्रेरणा दी। कहा जाता है कि एक बार मथुरा में इनकी भेंट तुलसीदास जी से हुई एवं दोनों में प्रेम-भाव भी बढ़ गया। सूरदास जी से प्रभावित होकर ही तुलसीदास जी ने 'श्रीकृष्ण गीतावली' की रचना की थी।

   निधन—जिस प्रकार सूरदास के जन्मकाल के विषय में प्रामाणिक तथ्य अप्राप्त हैं, उसी प्रकार इनके निधनकाल के सम्बन्ध में भी प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं कुछ अन्य ग्रन्थों से प्राप्त सूचनाओं के

आधार पर विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि इन्होंने 105 वर्ष की आयु प्राप्त की और इनका निधन संवत् 1640 (सन् 1538 ई०) में गोवर्द्धन के पास पारसौली नामक ग्राम में हुआ।

साहित्यिक व्यक्तित्व—सूरदास जी स्वामी वल्लभाचार्य के प्रमुख आठ शिष्य-कवियों में (इनमें से चार उनके पुत्र के शिष्य थे। गुरु के गुरु होने के कारण उन्हें भी वल्लभाचार्य का शिष्य माना जाता है), जो कृष्णभक्ति धारा के अष्टछाप कवियों के रूप में जाने जाते हैं, सर्वश्रेष्ठ कवि थे। अष्टछाप-कवि-समुदाय के अन्य कवि थे—**परमानन्ददास, कुम्भनदास, नन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास एवं गोविन्दस्वामी।** सूरदास के पदों की श्रेष्ठता के कारण ये सभी कवि इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

सन्त सूरदास एक जन्मजात कवि थे। इनके हृदय में भक्ति-भाव का अगाध सागर हिलोरें ले रहा था, जिसकी तरंगें इनके कण्ठ से सरस्वती की वाणी की भाँति झंकृत होती थीं। ये पद-रचना में जितने अधिक कुशल और श्रेष्ठ थे, उतने ही प्रवीण गायन-विद्या में भी थे। इन्होंने कृष्णभक्ति की ऐसी अजस्रधारा प्रवाहित की, जो आज भी जन-जन के हृदय को प्रफुल्लित कर रही है।

सूरदास के काव्य की सरसता, प्रबल भावातिरेकता, वस्तु-चित्रण की सजीवता तथा स्वाभाविकता उनकी साहित्यिक प्रतिभा के विलक्षण स्वरूप को प्रकट करती है तो उनकी अभिव्यक्ति की कुशलता उनकी काव्यकला सम्बन्धी योग्यता का। ये हिन्दी-काव्य-जगत के ऐसे प्रकाशमान सूर्य थे, जिसकी किरणें उसके अस्त हो जाने के उपरान्त भी इसे आलोकित किए हुए हैं।

रचनाएँ—सन्तकवि सूरदास के द्वारा रचित पदों की संख्या लगभग सवा लाख मानी जाती है। इस वृहद् संख्या के आधार पर इन पदों को इनके जीवनकाल में ही **'सागर'** कहा जाने लगा था। इन पदों का परवर्तीकाल में किया गया संग्रह 'सूरसागर' कहा जाता है, लेकिन इसमें चार-पाँच हजार पद ही संगृहीत हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की 'अनुसन्धान-विवरण-पत्रिका' तथा अन्य विद्वानों द्वारा किए गए शोध के अनुसार इनके द्वारा रचित चौबीस ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। **डॉ० दीनदयालु गुप्त** ने उनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों की सूचना दी है, जिनमें **'सूरसागर', 'सूरसारावली', 'सूरपच्चीसी', 'सूररामायण', 'साहित्यलहरी', 'सूरसाठी'** और **'राधा-रस-केलि'** प्रकाशित हो चुकी हैं। शेष ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। अनेक विद्वानों ने इनमें से 'सूरसारावली' एवं 'साहित्यलहरी' की प्रामाणिकता को सन्देहास्पद माना है, लेकिन बहुत-से विद्वानों का मत है कि इस सन्देह का कारण इनके प्रक्षिप्त अंग हैं, जो सूरदास की शैली आदि से भिन्न होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रामाणिकता को सन्दिग्ध बना देते हैं। 'सूरसारावली' में 1,107 छन्द हैं, जबकि 'साहित्यलहरी' में 118 दृष्टकूट पदों का संकलन है। 'साहित्यलहरी' में किसी एक विषय की विवेचना नहीं हुई है, इसमें मुख्य रूप से नायिकाओं तथा अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन हुआ है और एक-दो स्थानों पर 'महाभारत' की कथा के अंशों की झलक भी मिलती है।

प्र.2. सूर के भ्रमरगीत की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

सूर के भ्रमरगीत की विशेषताएँ

सूरदास के भ्रमरगीत की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. **वाग्विदग्धता और उक्ति-वैचित्र्य**—हृदय के दग्धभाव को अर्थात् किसी विशेष कारणवश हृदय में उत्पन्न हुए क्षोभ, विवशता, पीड़ा आदि के मिश्रित भाव को विदग्ध कर देनेवाले भाव में किया गया कथन वाग्विदग्धता कहा जाता है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों का हृदय विरह से अत्यधिक व्याकुल है। एक तो उन्हें कृष्ण के दर्शन न होने की पीड़ा है, दूसरे उद्धव ज्ञान का उपदेश देने लगते हैं। इससे उनके हृदय का भाव पीड़ा, क्षोभ, आक्रोश, विवशता से युक्त हो जाता है और उनका दग्ध हृदय जो कथन करता है, वह उसी प्रकार के दग्धभाव से युक्त है। इसी कारण से सम्पूर्ण 'भ्रमरगीत' में वाग्विदग्धता के दर्शन होते हैं। ब्रज की गोपियों द्वारा कहा गया प्रत्येक पद इस भाव से युक्त है। जहाँ-जहाँ दीन भाव उभरा है, वह भी इसी से युक्त है।

   जिस समय उद्धव गोपियों को योग तथा निर्गुण-साधना का उपदेश देते हैं, उस समय साकार कृष्ण के भाव में लीन गोपियाँ अपने मन की पीड़ा को मन में ही छिपाकर बड़ी चतुराई से पूछती हैं—

   हम सौं कहत कौन की बातैं?
   सुनि ऊधौं, हम समुझत नाहीं, फिरि पूँछति हैं तातैं॥

2. **उपहास**—**डॉ० मनमोहन गौतम** ने उपहास के सम्बन्ध में कहा है—"विनोद की अपेक्षा उपहास में विपक्षी को तुच्छ सिद्ध करने की भावना अधिक होती है। इसमें हास्य भी अधिक स्पष्ट और विकृत होता है। स्वयं निन्दा न करते हुए भी विपक्षी को निन्दित ठहराना इसका लक्ष्य होता है। उपहास में सखा-भाव की प्रधानता होती है। सूरदासजी सखा-भाव के भक्त थे; अतएव गोपियों के माध्यम से उन्होंने कृष्ण और कृष्ण सखा उद्धव का उपहास प्रस्तुत किया।"

सूरदास की गोपियाँ जब उपहास करने लगती हैं तब वे न तो कृष्ण को छोड़ती हैं और न ही उद्धव को। वे स्पष्ट रूप से कहती हैं कि तुम्हारे ज्ञान का रहस्य हमारी समझ में आ गया है। कृष्ण तो बेचारा अहीर ठहरा, वह तुम्हारी राजनैतिक कुशलता को भला क्या जाने? यह सारा काम तुम्हारा है। कृष्ण ने भी कुब्जा से प्रेम कर कितना अच्छा काम किया है। ठीक ही है, हम तो सभी मूर्ख हैं; केवल वही चतुर मिली है, जिससे वे चतुराई सीख रहे हैं—

ऊधौ! जान्यो ज्ञान तिहारौ।
जानै कहा राज-गति लीला, अन्त अहीर बिचारौ॥

इतना ना कहने पर भी जब उद्धव अपनी ज्ञान-चर्चा बन्द नहीं करने और उनकी बक-बक चलती रहती है तो गोपियाँ उनका परिहास करती हुई कहती हैं—

ऊधौ! तुम अपनौ जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागति, कत बेकाज ररौ॥
जाइ करौ उपचार आपनो, हम जु कहत हैं जी की।
कछुवै कहत कछुक कहि आवत, घुनि दिखियत नहिं नीकी॥

3. **वचनवक्रता या व्यंग्योक्तियाँ**—प्राय: मनीषियों ने उक्ति-वैचित्र्य एवं वचनवक्रता को एक ही माना है, लेकिन वचनवक्रता एवं उक्ति-वैचित्र्य में अन्तर है। जब कथ्य को विचित्र उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, तो वह उक्ति-वैचित्र्य कहलाता है और जब किसी कथ्य भाव को सीधे व्यक्त न करके टेढ़े-मेढ़े ढंग से व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है, तो वह वचनवक्रता, वक्रोक्ति अथवा व्यंग्योक्ति कहलाता है। सूर ने अधिकांश स्थान पर अपने पदों का कथ्यभाव वक्रोक्ति के माध्यम से ही प्रकट किया है। ये वक्रोक्तियाँ इतनी भाव-समावेष्टित तथा सटीक हैं कि इन्हें देखकर कहना ही पड़ता है कि "सूर का 'भ्रमरगीत' भावप्रेरित वक्रोक्तियों का भण्डार है।" भ्रमरगीत प्रसंग में वक्रोक्ति या व्यंग्य अधिक मुखर है। कई स्थलों पर तो उसने उद्धव को तिलमिलाकर रख दिया है। उद्धव पर व्यंग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि तुम पंडा के समान परमार्थ की शिक्षा देनेवाले पुराणों के बोझ को उसी प्रकार अपने सिर पर लादे फिर रहे हो, जैसे बंजारा अपना माल लादकर बेचने के लिए द्वार-द्वार फिरता है—

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे, ज्यों बनजारे टाँड़े॥

4. **उपालम्भ**—उपालम्भ की छह प्रमुख विशेषताएँ हैं—प्रियतम की निष्ठुरता का वर्णन, प्रियतम की रूप-माधुरी का स्मरण, संयोग-सुखों का स्मरण, प्रेम की दृढ़ता का वर्णन, प्रियतम के विश्वास एवं आश्वासनों का स्मरण और पश्चात्तापजन्य व्यथा। सूरदास के भ्रमरगीत में इन सभी का सफल संयोजन हुआ है।
श्रीकृष्ण गोपियों को अकेला छोड़कर मथुरा चले गए हैं और अब वहाँ से आने का नाम ही नहीं लेते। श्रीकृष्ण ने गोपियों से प्रेम करके जिस निष्ठुरता का परिचय दिया है, उसका वर्णन गोपियाँ निम्न प्रकार करती हैं—

प्रीति करि दीन्हीं गरै छुरी॥
जैसे बधिक चुगाइ कपट कन, पाछै करत बुरी॥

परदेस जाते समय प्रियतम अपनी प्रेयसी को अनेक प्रकार के आश्वासन दे जाता है, वे आश्वासन और तत्कालीन उसकी क्रियाएँ उपालम्भ का कारण बन जाती हैं। कृष्ण भी जाते समय अपनी गोपियों को तरह-तरह के आश्वासन दे गए थे। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया था कि मैं पन्द्रह दिन में लौटकर आ जाऊँगा, लेकिन अब तो उन्हें एक माह बीत गया है। गोपियों ने उनके इस आश्वासन का वर्णन इस प्रकार उपालम्भ देते हुए किया है—

कहत कत परदेसी की बात।
मंदिर-अरध-अवधि बदि हम सों, हरि-अहार चलि जात॥
ससि रिपु बरष, सूर-रिपु जुग बर, हर-रिपु कीन्हों घात।
मघ-पंचक लै गयौ साँवरौ, तातें अति अकुलात॥

5. **सहृदयता**—सूर की गोपियों में एक तरफ तो वचनचातुर्य है तो दूसरी तरफ पूर्ण सहृदयता। वे व्यंग्य करने में पूर्ण कुशल हैं एवं उपालम्भ देने में भी वे पीछे नहीं हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण तथा उद्धव का पर्याप्त उपहास किया है, लेकिन कहीं भी हृदय की कटुता एवं कठोरता के लेशमात्र भी दर्शन नहीं होते। उनकी सहृदयता सर्वत्र विराजती है। वस्तुत: भ्रमरगीत एक

विरह-काव्य है। इसमें विरहिणी गोपियों की आकुलता, व्याकुलता आदि की अभिव्यक्ति मिली है। गोपियाँ कृष्ण के विरह में रात-दिन आँसू बहाती हुई कहती हैं—

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥

उद्धव द्वारा बार-बार निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने पर गोपियाँ करुणा-द्रवित हो जाती हैं। क्योंकि हरि-दर्शन के लिए आकुल आँखों को इन उपदेशों से सन्तोष नहीं मिल सकता; अत: वे सब यही कहती हैं—

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखीं।
कैसे रहतिं रूस रस राँची, ये बतियाँ सुनी रूखीं॥

सूरदास की गोपियों की भावुकता एवं सहृदयता-मिश्रित चातुर्य ही वह शक्ति है, जिसके कारण कृष्ण को भी कहना पड़ा—

ऊधौ, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि सूरदास के भ्रमरगीत में वाग्विदग्धता, उक्ति-वैचित्र्य, वचनवक्रता और हृदय का मणिकांचन संयोग हुआ है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** का यह कथन पूर्ण रूप से उचित है—"सूर में जितनी सहृदयता और भावुकता है, उतनी ही वाग्विदग्धता भी।" वास्तव में "सूर का भ्रमरगीत वाग्विदग्धता, हृदयस्पर्शिता, वचनवक्रता और उपालम्भ की दृष्टि से उच्चकोटि के काव्य का गौरव प्राप्त कर रहा है।"

प्र.3. निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) यह मन निश्चय जानो।
मन क्रम बच मैं तुम्हें पठावत ब्रज को तुरत पलानों॥
पूरन ब्रम्ह, सकल अबिनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख न रूप, जाति , कुल नाहीं जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु बिरह-नदी में भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रम्ह बिना नहिं आसति॥7॥

(ख) ए अलि! कहा जोग में नीको?
ताजै रस रीति नन्दनन्दन की सिखवत निर्गुन फीको॥
देखत सुनत नहिं कछू स्त्रवननि, ज्योति-ज्योति करि ध्यावत।
सुन्दर स्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौं बिसरावत?
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोई कौतुक रस भूले।
अपनी भुजा ग्रोव पर मेलें गोपिन के सुख फूलै॥
लोक कानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि मिलि के घर बन खेली।
अब तुम 'सुर' खबावन आए जोग जहर की बेली॥26॥

उत्तर **पद्यांशों की व्याख्या**

(क) यह मन ..... **नहिं आसति॥7॥**

शब्दार्थ—क्रम = कर्म; **बच** = वचन; **पठावत** = भेजता हूँ; **तुरत** = तुरंत; **पलानों** = जाओ, प्रस्थान करो; **अविनाशी** = जिसका नाश न हो; **जाके** = जिसके; **ज्ञाता** = जानकार; **भासित** = सामीप्य या मुक्ति; **आसति** = आसक्ति।

संदर्भ—प्रस्तुत पद्यांश हिंदी साहित्य के भ्रमरगीत सार से लिया गया है जिसके रचयिता सूरदास जी हैं और सम्पादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं।

प्रसंग—ब्रज और ब्रज की गोपियों के प्रेम में डूबे हुए श्रीकृष्ण अपने मित्र उद्धव को अपना संदेशवाहक बनाकर ब्रज भेजना चाहते हैं। कारण है— (कृष्ण के) विरह में व्यथित गोपिकाओं को सांत्वना देना एवं उद्धव को ज्ञान मार्ग की सीमाओं से परिचित कराना। इसी से, उद्धव से अनुरोध करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है—

व्याख्या—हे उद्धव! अपने मन में यह बात दृढ़तापूर्वक जान लो कि मैं तुम्हें मनसा-वाचा-कर्मणा अर्थात् एकदम सद्भाव से ब्रज भेज रहा हूँ। अतएव, तुम तुरन्त (बिना कोई हीला-हवाला किए) ब्रज को प्रस्थान करो। हे उद्धव! तुम तो उस ब्रह्म (ज्ञान) के पूर्ण ज्ञाता हो जो पूर्ण और अविनाशी है तथा रूप, रेखा, जाति, कुल, माता-पिता अर्थात् सभी सांसारिक उपाधियों से रहित एकदम निराकार-निरुपाधि ब्रह्म है। विरह की नदी में डूबी हुई गोपिकाओं को अपने इस मत का ज्ञान दो, ताकि वे विरह से मुक्त हो सकें। तुम उनको यह समझा दो कि बिना ब्रह्म-प्रेम के मुक्ति नहीं है अथवा ब्रह्म-आसक्ति ही सच्ची आसक्ति है।

विशेष—1. ब्रह्म का वर्णन निर्गुण या ज्ञानमार्गी विचारधारा के अनुसार है।

2. 'विरह-नदी' में रूपक अलंकार है।
3. **भावसाम्य**—"ऋतेकाम्न मुक्ति:"।
4. यहाँ पर श्रीकृष्ण की मन:स्थिति, कूटमय वाक् चातुर्य और उद्धव के ज्ञान-मार्ग के प्रति व्यंगमयी धारणा मुखर हुई है। अत: कृष्ण-चरित्र की दृष्टि से, यह पद महत्त्वपूर्ण है।

(ख) ए अलि! .... की बेली ॥26॥

शब्दार्थ—अलि = भ्रमर, उद्धव; **नीको** = अच्छा; **सिखवत** = सिखाते हो; **स्त्रवननि** = कानों से; **हौं** = मैं; **बिसरावत** = छोड़ दूँ; **रसाल** = मधुर; **कौतुक** = आश्चर्य; **ग्रीव** = गरदन; **मेलै** = डाले हुए; **फूलै** = प्रसन्न; **कानि** = मर्यादा; **खबावन** = खिलाने।

सन्दर्भ—पूर्ववत।

प्रसंग—गोपियाँ कृष्ण से प्राप्त प्रेम-सुखों को भूल तो पायी ही नहीं, अभी भी उनकी स्मृतियों से संचालित परिचालित हैं। इसी से, वे न उद्धव के आगमन को अच्छा समझती हैं, न उनके उपदेश और प्रतिपादित योग-ज्ञान को; फलत:, कोई गोपी उद्धव से कहती है।

व्याख्या—हे भ्रमर (रूपी उद्धव)! (तुम्हारे द्वारा प्रतिपादित किये गये) योग में ऐसी क्या अच्छाई है जो तुम नन्द के पुत्र कृष्ण की आनन्द भरी प्रेम रीति को त्याग कर फीके (प्रतीत होने वाले) निर्गुण के विषय में हमें सिखा रहे हो। तुम (और तुम जैसे योग साधक भी) न तो देखते हो, न कानों से कुछ सुनते हो, बस 'ज्योति' है, ज्योति है' कह कर ध्यान करते रहते हो (अर्थात् एकदम मूढ़ जैसे कार्य करते हो)। तुम्हीं बताओ कि मैं सुन्दर, दयालु और कृपा-कोष कृष्ण को किस प्रकार भुला दूँ (या त्याग दूँ)? (कारण यह है कि) मैं तो देखती भी हूँ और सुनती भी हूँ। प्रमाण? मैंने कृष्ण के रूप-सौन्दर्य और गुण-सौन्दर्य दोनों को ही देखा-भोगा है। (साथ ही साथ) कृष्ण की मुरली की मधुर स्वर लहरी को सुनकर और उसी रस में डूबकर तुम्हारे आश्चर्य भरे ब्रह्म को भुलाना ही सहज है। (भाव यह भी हो सकता है कि तुम्हारा ब्रह्म निर्गुण होने के कारण न तो सुन्दर, दयालु और कृपालु है और न मुरली की मधुर ध्वनि सुनाने वाला है। फिर भला उसके लिये हम प्रेम-रस और उसके साक्षात् कृष्ण को क्यों भूलें तथा इस कौतुक मात्र ब्रह्म को ध्यावें)। कृष्ण तो (प्रेमानन्द में भरकर) अपनी भुजाओं को हमारे गले में डालकर साक्षात् आलिंगन करते थे और हम गोपियों के सुख से प्रसन्न हो जाते थे। हम तो प्रभु कृष्ण के साथ मिल-मिलकर घर और वन दोनों ही स्थानों पर प्रेम के खेल-खेल चुकी हैं और इसी तरह खेलकर समाज (द्वारा लादी गयी) मर्यादा तथा परिवारादि के भ्रम को समाप्त कर चुकी हैं। (भाव यही है कि कृष्ण के साथ की गयी प्रेम-क्रियाओं में भरकर हमने न परिवार का भय किया, न समाज का)। अब तुम हमको योग रूपी विष बेल खिलाने आये हो? (जब हमने घर-समाज की ही नहीं मानी तो भला इस विष-बेल जैसे योग को क्या माने या अपनायें)।

विशेष—1. यहाँ पर गोपियों की स्पष्टवादिता, अचूक व्यंग्य-क्षमता, आत्मस्वीकृति और अनन्य प्रेम भावादि द्रष्टव्य हैं।

2. 'सुन्दर स्याम', फूलैं में स्मृति, संचारी तथा विरहान्तर्गत गुणकथा की स्थिति है।
3. **अलंकार**—(i) अनुप्रास-रस रीति, सुन्दर स्याम। (ii) पुनरुक्ति-ज्योति-ज्योति, मिलि-मिलि। (iii) रूपक-जोग.... बेली।

प्र.4. सूरदास के काव्य के भाव-पक्ष की काव्यगत विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर

सूरदास के भाव-पक्ष की काव्यगत विशेषताएँ

कवि जो कुछ अनुभव करता है, संवेदनशील हृदय में जैसा धारण करता है, उसकी भावमयी अभिव्यक्ति भाव-पक्ष के अन्तर्गत की जाती है। इस प्रकार, भाव-पक्ष का सम्बन्ध अनुभूति पक्ष से है। भावुकता साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण है। सूर का भाव-पक्ष अत्यन्त सरस और सबल है। सूर काव्य के भाव-पक्ष की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **श्रृंगार-वर्णन**—सन्तकवि सूरदास ने 'सूरसागर' में राधा, कृष्ण और गोपियों के अनेक संयोगकालीन चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रारम्भिक परिचय का आकर्षक वर्णन किया है। श्रीकृष्ण; राधा से पूछते हैं—

बूझत श्याम कौन तू गोरी?
कहाँ रहति काकी तू बेटी? देखि नहीं कबहूँ ब्रज खोरी॥

इसके उपरान्त दोनों का सम्बन्ध और अधिक घनिष्ठ हो जाता है। फिर तो किसी की परवाह न करके दोनों एकसाथ घूमते हैं। गोपियाँ भी उनकी विविध प्रकार की लीलाओं और क्रीडाओं में भाग लेती हैं।

संयोग के साथ वियोग के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ, राधा, यशोदा, गोप एवं ब्रज के सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी उनके विरह में व्यक्ति हो जाते हैं। यहाँ तक कि संयोगकालीन सभी सुखप्रद वस्तुएँ गोपियों को कष्ट देनेवाली हो जाती हैं। वे कहती हैं—

''बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।''

2. **वात्सल्य-चित्रण**—सूरदास ने कृष्ण की बाललीलाओं एवं क्रीडाओं का व्यापक एवं विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया है। माता यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में झुलाने, कृष्ण के घुटनों के बल चलने, किलकारी मारने, नाचने, गायें चराने जाने, माखन चुराने आदि के मनोहारी दृश्य 'सूरसागर' में प्रस्तुत किए गए हैं।

माखन चोरी करने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं, लेकिन वे बड़ी चतुराई से अपनी सफाई देते हैं—

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परै, ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ॥

3. **भक्ति-भावना**—सूरदास का भक्ति-भाव पुष्टिमार्ग से प्रभावित है। इसमें भगवद्कृपा को सर्वोपरि माना गया है। इसके अतिरिक्त सूर में दास्य-भाव, सख्य-भाव, माधुर्य-भाव, प्रेम-भाव और नवधा भक्ति के दर्शन भी होते हैं। सूरदास की भक्ति प्रमुख रूप से सखा-भाव की है। सूरदास ने बड़ी चतुराई से काम लिया है। उन्होंने कृष्ण से अपने उद्धार की याचना करते हुए निम्न प्रकार कहा है—

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज॥

4. **दार्शनिकता**—सूरदास के दार्शनिक विचार बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन न करते हुए, सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है। क्योंकि निर्गुण ब्रह्म का कोई रूप, गुण एवं जाति नहीं है; इसलिए चंचल मन बिना किसी आधार के इधर-उधर भटकता रहता है—

रूप-रेख गुन जाति जुगती बिनु, निरालम्ब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातै, सूर सगुन लीला पद गावै॥

संसार को क्षणभंगुर एवं मिथ्या मानते हुए सूरदास ने प्रभु से विनती की है—

''सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करो नन्दलाल।''

5. **प्रकृति-चित्रण**—कृष्ण की लीलाओं का चित्रण करते समय सूरदास ने प्रकृति के विविध रूप प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में सर्वाधिक चित्रण किया है। वियोग-काल में प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है। श्रीकृष्ण के वियोग में प्रकृति गोपियों के वियोग को और अधिक उद्दीप्त करती प्रतीत होती है—

कोऊ माई बरजोरी या चंदहि।
अति ही क्रोध करत है हम पर,
कुमुदिनी कुल अनन्दहि॥

6. **भावुकता एवं वाग्वैदग्ध्यता**—सूरदास में उच्चकोटि की भावुकता और वाग्वैदग्ध्यता के दर्शन होते हैं। 'भ्रमरगीत' प्रसंग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उद्धव द्वारा योग, ज्ञान एवं निर्गुण का सन्देश दिए जाने पर गोपियाँ कभी खीझ, कभी उपालम्भ, कभी एवं और कभी उपहास का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य-प्रेम का परिचय देती हैं और अपने वाग्वैदग्ध्य से उद्धव को परास्त कर देती हैं। उद्धव पर व्यंग्य करती हुई वे कहती हैं—

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।
वह मथुरा काजर की ओबरि, जे आवै ते कारे॥

7. **अलौकिकता एवं मौलिकता**—राधा-कृष्ण व गोपी-कृष्ण के प्रेम में सूर ने प्रेम की अलौकिकता के दर्शन कराए हैं। विषयवस्तु में यद्यपि सूर ने '**श्रीमद्भागवत्**' के **दशम स्कन्ध** को ही आधार बनाया है, परन्तु विषयवस्तु में सर्वत्र मौलिकता विद्यमान है। उन्होंने कृष्ण को बहुत कम स्थलों पर अलौकिक प्रदर्शित किया है, अन्यथा वे सर्वत्र मानवीय रूप में ही चित्रित किए गए हैं। राधा की कल्पना और गोपियों के प्रेम की अनन्यता में भी कवि की मौलिकता दृष्टिगत होती है।

प्र.5. गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालते हुए इनके साहित्यिक कृतित्व एवं रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

तुलसीदास का जीवन-परिचय

जन्मकाल—गोस्वामी तुलसीदास के जन्मकाल के विषय में विद्वानों में भारी मतभेद है; क्योंकि उनके जन्म के बाद के विषय में कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाया है। 'मूल गोसाईं चरित' तथा 'तुलसीचरित' के अनुसार इनका जन्मकाल संवत् 1554 है। 'शिवसिंह सरोज' में यह संवत् 1583 है। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामभक्त **पं० रामगुलाम द्विवेदी** ने इनका जन्मकाल संवत् 1589 स्वीकार किया है। **सर जॉर्ज ग्रियर्सन** ने इसी को उचित माना है। **डॉ० नगेन्द्र** ने भी इसी संवत् को तुलसी का जन्मकाल माना है। ईसवी सन् के आधार पर यह सन् 1532 ई० है। स्मरणीय है कि अनेक मनीषियों ने तुलसीदास के जन्मवर्ष के रूप में इसी वर्ष को मान्यता दी है। यदि उनका जन्मकाल संवत् 1554 मान लिया गया तो उनकी आयु 125 वर्ष के लगभग बैठती है, जो अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती है, लेकिन किसी सन्त के लिए 125 वर्ष की आयु प्राप्त करना असम्भव नहीं है। हालाँकि सन् 1532 ई० को प्रामाणिक रूप से गोस्वामी तुलसीदास का जन्मकाल नहीं माना जा सकता। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि यह अन्य की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत है।

जीवन-वृत्त—सोरों (जिला कासगंज; उत्तर प्रदेश) से प्राप्त विवरण के अनुसार इनका पालन-पोषण इनकी दादी ने किया था। इनके चाचा **जीवाराम** परिवार का आर्थिक बोझ वहन करते थे। कुछ समय के उपरान्त उनका भी देहान्त हो गया और परिवार पर आर्थिक संकट के बादल छा गए। उस समय में जीवाराम के दो पुत्र **नन्ददास** (महाकवि नन्ददास) एवं **चन्द्रहास** (यह भी कवि थे) भी अल्पावस्था के ही थे। इसी कारण तुलसीदास का प्रारम्भिक जीवन अत्यधिक कष्ट में व्यतीत हुआ। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये विपन्नावस्था से दु:खी होकर भटक रहे थे, तब इन्हें बाबा **नरहरिदास** अपने साथ ले गए और इनको ज्ञान का उपदेश दिया; लेकिन **डॉ० रामदत्त भारद्वाज** ने सोरों से प्राप्त सामग्री का विश्लेषण करके कहा है कि सोरों के चक्रतीर्थ मुहल्ले में नरसिंहजी की पाठशाला थी, जहाँ तुलसी एवं नन्द दोनों पढ़ते थे। तुलसीदास ने 'श्रीरामचरितमानस' में इसी गुरु की वन्दना की है। **डॉ० भारद्वाज** के अनुसार उन्होंने विभिन्न शास्त्रों का गहन अध्ययन किया और युवावस्था में ही उच्चकोटि के विद्वान् समझे जाने लगे। इनका विवाह दीनानाथ पाठक नामक एक ब्राह्मण की पुत्री रत्नावली से हुआ था।

सोरों (शूकर क्षेत्र) से प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि दीनानाथ पाठक सोरों के सामने गंगा के उस पार बसे ग्राम **बदरी** के रहने वाले थे। उनकी पुत्री रत्नावली अत्यन्त रूपवती, विदुषी तथा धर्मपरायणा थी। उसने तुलसी तथा तुलसी की दादी की तन-मन से सेवा की। उस समय गोस्वामी तुलसीदास कथा बाँचकर जीवनयापन किया करते थे। उनको रत्नावली **से तारापति** नामक एक पुत्र भी हुआ था, जिसका बाल्यावस्था में ही देहान्त हो गया। तुलसी के विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उनकी दादी का भी स्वर्गवास हो गया।

विवाह के पन्द्रह वर्ष उपरान्त जब रत्नावली की उम्र सत्ताईस वर्ष थी, वह तुलसी से आज्ञा लेकर अपने भाई को राखी बाँधने के लिए मायके गई। तुलसी भी कथा बाँचने के लिए कहीं दूसरे गाँव में चले गए। जब ये ग्यारह दिन के पश्चात् घर वापस आए तो उन्हें अकेलापन खलने लगा और वे रात्रि में गंगा की उफनती धारा में तैरकर बदरी पहुँच गए। रत्नावली को पति का यह कृत्य मायके में स्वयं को उपहास का पात्र बना देने वाला लगा और उसने क्षुब्ध होकर पति से कहा कि यदि उनका इतना प्रेम ईश्वर से होता तो कई जन्म सफल हो जाते, पत्नी के हाड़-मांस के शरीर का यह प्रेम उन्हें क्या दे सकता है।

तुलसीदास जी एक विद्वान् भावुक पुरुष थे। पत्नी का यह मधुर अपमान इनके अन्तर्मन को बेध गया और ये तत्क्षण सोरों लौट आए। अगले दिन इन्होंने सोरों को भी त्याग दिया और अयोध्या चले गए। परिवारीजनों ने उनकी बहुत तलाश की, लेकिन इनका पता न चला। पति द्वारा परित्यक्त कर दिए जाने के बाद वे अत्यधिक भावुक हो उठीं। उन्होंने नारियों के नीति और आदर्श आदि विषयों पर सैकड़ों दोहों की रचना की। रत्नावली की मृत्यु संवत् 1659 में हुई। गोस्वामी तुलसीदास को अपने इस कृत्य पर पश्चात्ताप भी हुआ। ये कालान्तर में यह अनुभव करने लगे कि पत्नी को त्यागने का निर्णय सम्भवत: इन्होंने अत्यन्त शीघ्रता में ले लिया था—

परयौ लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय।
मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं॥

साहित्यिक व्यक्तित्व—गोस्वामी तुलसीदास एक विद्वान् सन्त, विचारक, उच्चकोटि के समाज-सुधारक, नीतिशास्त्री एवं राजनीति के ज्ञाता थे। कवि के रूप में वे इतने प्रतिभावान् व्यक्तित्व के स्वामी थे, जिसको सम्पूर्ण विश्व के विद्वान् और साहित्यकार विस्मयपूर्वक देखते हैं। उनकी रचनाओं के भाव-प्रवणता, भाव-वैविध्य, आदर्श, अभिव्यक्ति की निपुणता, काव्य-सौष्ठव तथा

उनमें निहित लोक कल्याण और समाज-सुधार की भावना के कारण उनके आविर्भावकाल के उपरान्त उत्पन्न होने वाले प्रत्येक विद्वान् तथा चिन्तनकर्ता ने उनको नमन किया है। एक प्रसिद्ध रूसी विद्वान् ने कहा है कि तुलसी जैसा महान् व्यक्तित्व किसी समाज में हजारों वर्षों के अन्तराल में कभी उसके भाग्य से ही पैदा होता है।

तुलसीदास जी ने दर्जनों उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से सभी अनुभूति-प्रवण, भक्ति-भाव तथा कलात्मक विशेषताओं में अद्वितीय हैं, लेकिन इन्हें सर्वाधिक प्रतिष्ठा 'श्रीरामचरितमानस' के कारण मिली है। यह ग्रन्थ विश्व के श्रेष्ठतम महाकाव्यों में से एक समझा जाता है। यह एक धार्मिक ग्रन्थमात्र नहीं है, अपितु इसमें समाज के सभी अंगों, पक्षों, व्यक्ति के सभी व्यवहारों, परिवार एवं समाज के सभी सम्बन्धों का आदर्श अत्यन्त उत्कृष्टता में समाविष्ट किया गया है। इसके साथ ही इसकी काव्यात्मक श्रेष्ठता भी सदियों से विद्वानों के मध्य चर्चा का विषय रही है।

रचनाएँ—गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित लगभग चौवन काव्य-ग्रन्थों का वर्णन मिलता है, जिनमें निम्नलिखित बारह को महत्त्वपूर्ण माना जाता है—

1. दोहावली, 2. सतसई, 3. रामाज्ञा-प्रश्न, 4. कवितावली 5. हनुमान्बाहुक, 6. श्रीकृष्ण गीतावली, 7. श्रीरामचरितमानस, 8. विनयपत्रिका, 9. पार्वती-मंगल 10. जानकी-मंगल, 11. गीतावली, 12. रामललानहछू, 13. बरवै रामायण, 14. संकटमोचन आदि।

निधन—गोस्वामी तुलसीदास के निधनकाल के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। सभी विद्वान् इनकी मृत्यु संवत् 1680 (सन् 1623 ई०) की श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुई मानते हैं।

प्र.6. रामचरितमानस से उद्धृत निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) चौ० - जानेउ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाति राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥1॥
झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहूँ। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहूँ।
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरू बचनु न जाई॥2॥
नहि असत्य सम पातक पुजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुजा॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान बिदित मनु गाए॥3॥
तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाई कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥4॥

दोहा - भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहग समाजु॥
मिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥28॥

(ख) चौ० - राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ।
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूँछें। तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें॥1॥
रिस परिहरू अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस भागा॥2॥
अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥3॥
तुहूँ सराहसि करासि सनेहूँ। अब सुनि मोहि भयउ संदेहूँ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि कारेहि मातु प्रतिकूला॥4॥

दोहा - प्रिया हास रिस परिहरसि, मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु॥32॥

(ग) चौ० - निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनंत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥1॥
जन कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू॥
सब प्रसंग रघुपतिहिं सुनाई। बैठि मनुहुँ तनु धरि निठुराई॥2॥

मन मुसकाई भानुकुलभानू। रामु सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥3॥
सुनु जननी सोई सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोष निहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥4॥

दोहा - मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥41॥

उत्तर पद्यांशों की व्याख्या

(क) जानेउ मरमु ..... भयंकरु बाजु॥28॥

शब्दार्थ—मरमु = हृदय, रहस्य, अभिप्राय:; **कोहाब** = रुठना, मान करना; **अहई** = है; **थाती** = धरोहर; **काऊ** = कभी; **सुभाऊ** = स्वभाव; **जनि** = नहीं; **मकु** = चाहे; **बरु** = चाहे; **पुंजा** = समूह; **गुंजा** = लाल रंग की बीज, घुँघची; **सुकृत** = पुण्य कर्म; **दृढ़ाइ** = पक्की; **कुलह** = टोही (जो आँखों पर पहनाई जाती है); **सुभग** = सुन्दर; **सुबिहंग** = श्रेष्ठ पक्षी; **भिल्लिनि** = भीलनी, शिकारी जाति की स्त्री; **छाड़न** = छोड़ना।

संदर्भ—प्रस्तुत काव्यांश रामचरितमानस के 'अयोध्या कांड' से लिया गया है। जिसके रचनाकार भक्तिकाल के श्रेष्ठतम कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं।

प्रसंग—दासी मंथरा की सलाह और योजना के अनुसार, कैकेयी कोपभवन में पहुँच गयी थी तथा मंथरा द्वारा ही बताए-सुझाए गए निर्देशों का भरपूर पालन भी कर रही थी। संध्याकाल होने पर राजा दशरथ भी वहाँ पर जा पहुँचे। उसी समय की उनकी स्थितियों तथा क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहा है।

व्याख्या—राजा दशरथ ने हँसकर कैकेयी से कहा कि मैं तुम्हारा अभिप्राय (मन का रहस्य अथवा हृदय की अवस्था) जानता हूँ कि तुमको मान करना (शृंगार चेष्टा के अन्तर्गत रूठने का अभिनय मात्र करना) अत्यन्त प्रिय है। मेरे पास रखी हुयी थाली स्वरूप दो बचनों को तुमने तो कभी माँगा नहीं और मेरे सरल स्वभाववश मैं उनको देना-पूरा करना भूल गया। अतएव, तुम मुझको मिथ्या दोष मत दो और जब चाहे, दो की जगह चार वर माँग लो। रघुकुल (अर्थात् मेरी वंश परम्परा) में (युग-युग से) यही रीति चली आयी है कि चाहे प्राण चले जायें परन्तु वचनों को देकर उनसे मुकरा नहीं जाता है। उनको हर अवस्था में पूरा-पूरा पालन-निर्वाह किया जाता है। वेद-पुराणों से प्रकट है और महान स्मृतिकार महाराज मनु ने भी यही कहा है कि असत्य-वचन के समान पाप-पुंज और कोई नहीं है। क्या करोड़ों गुंजा मिलकर भी पर्वत के समान हो सकते हैं? कदापि नहीं। वस्तुत: सत्य ही सब पुण्य कर्मों का मूलाधार है। उस पर भी, मुझसे तो राम की शपथ अकस्मात् ही उठा ली गयी है और नि:सन्देह मेरे पुण्य कर्मों और स्नेह की चरम सीमा राम ही है। आशय यही है कि मैं, मेरी वंशीय परम्परा, दीप्ति-ज्ञान और सबसे अधिक राम की शपथ लिया जाना इसी सत्य के संगल साक्षी है कि मैं वर अवश्य दूँगा, अपने वचन-वादे का पालन करूँगा।

बात को इस प्रकार दृढ़ हुआ देखकर दुर्बुद्धि वाली कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने अपनी दुर्बुद्धि रूपी बाज की चोंच खोल दी हो। निश्चयत: राजा दशरथ का मनोरथ श्रेष्ठ है जिसमें अयोध्या के समाज के सुख समूह ही सुन्दर श्रेष्ठ कबूतर आदि कोमल स्वभाव वाले पक्षीगण हैं जिनको नष्ट करने, हत्या करके समाप्त करने के लिए शिकारी भीलनी रूपी कैकेयी अपने वचन (वर) रूपी भयंकर बाज को छोड़ना चाहती है।

विशेष—1. दशरथ चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।
2. यहाँ पर सूक्तियों और लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग है।
3. अलंकार-लोकोक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा, दृष्टान्त, रूपक-सांगरूपक, वक्रोक्ति।
4. 'कलह' फारसी शब्द-समावेश का परिचायक है।
5. **भावसाम्य**—(i) धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥ तुलसी रामचरितमानस। (ii) सत्यमेव जयते-मुंडकोपनिषद् (iii) सत्यस्य वचनं श्रेय:-वेदव्यास: महाभारत। (iv) साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। कबीर : बीजक (v) सर्वं सत्यं प्रतिष्ठितम्। (vi) चाणक्य : नीति। (vii) सत्यं चोक्तं परम धर्म:। विश्वामित्र।

(ख) राम सपथ ..... राज अभिषेकु॥32॥

शब्दार्थ—काऊ = कुछ भी; **छूछे** = व्यर्थ; **परिहरू** = त्याग कर; **अजहूँ** = अब भी; **कि** = क्या; **सुठि** = अत्यन्त; **करसि** = करती; **अरिहि** = शत्रु भी।

संदर्भ—प्रस्तुत काव्यांश रामचरितमानस के 'अयोध्या कांड' से लिया गया है। जिसके रचनाकार भक्तिकाल के श्रेष्ठतम कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं।

प्रसंग—राजा दशरथ ने कैकेयी को प्रथम वर प्रदान करते हुए भरत को युवराजत्व प्रदान करने का आश्वासन तुरन्त दे दिया परन्तु दूसरे वरदान अर्थात् राम को वनवास देने के प्रस्ताव पर वे ठिठक गए और फलस्वरूप कैकेयी से अनुरोध भरी विनय करने लगे।

व्याख्या—राम की सैकड़ों वार शपथ लेकर और स्वभावत: सत्यतापूर्वक मैं कहता, कि राम को युवराज बनाने के सम्बन्ध में राम की माता कौशल्या ने मुझसे कभी भी कुछ नहीं कहा। अतएव, उस पर तुम्हारा सन्देह करना एकदम निर्मूल और निराधार है। निश्चयत: यह सब कुछ मैंने तुम से बिना पूछे किया था, इसी से मेरा यह मनोरथ एकदम असफल, अपूर्ण होकर रह गया है। अब तुम क्रोध को त्यागो और मंगल साज सजाओ, क्योंकि कुछ दिनों के बाद भरत ही युवराज बनेंगे। मुझको तो केवल एक ही बात दुखद लगी है। तुम्हारे द्वारा माँगे जाने वाला दूसरा वर जो अड़चन भरा है। उसकी तापाग्नि से तो मेरा हृदय अब भी दग्ध हो रहा है। वरदान तुम्हारे क्रोध-हँसी का परिणाम है अथवा वास्तव में सत्य है? क्रोध छोड़कर और ठंडे मन से विचार कर जरा राम का कोई अपराध तो बताओ क्योंकि हर कोई तो यही कहता है कि राम अत्यन्त सज्जन है। स्वयं तुम ही उनकी प्रशंसा करती हो और उनसे प्रेम करती रही हो मगर अब तेरी याचना सुनकर तो मुझे तुम्हारे पूर्व व्यवहार पर सन्देह होने लगा है। जरा, सोच तो सही कि जिसका स्वभाव से शत्रु तक के लिए भी अनुकूल है अथवा जो अपने स्वभाव से शत्रु को भी अनुकूल अर्थात् मित्र बना देता है, वह राम भला माता के विपरीत किस प्रकार कोई कार्य अथवा आचरण करेगा? हे प्रिया! क्रोध और हँसी-मजाक छोड़ और विवेकपूर्वक सोच-समझकर वर माँगो जिससे मैं अब आँखें भरकर भरत का युवराजाभिषेक देख सकूँ।

विशेष—1. यह स्थल दशरथ और राम दोनों का चारित्राभिव्यंजक है।

2. **अलंकार**—अनुप्रास, सन्देह (रिस"" साँचा)।

(ग) निधरक बैठि ..... जननी तोर।।41।।

शब्दार्थ—निधरक = नि:शंक; **लच्छ** = लक्ष्य; **बर बीरू** = श्रेष्ठ वीर; **दूषन** = दोष; **बाग** = वाग्देवी, सरस्वती; **तनय** = पुत्र; **तोषनिहारा** = सन्तोष देने वाला; **तेहि महँ** = उसमें भी; **संमत** = सहमति; **तोर** = तुम्हारी।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—पूर्ववत्।

व्याख्या—नि:शंक भाव से बैठी कैकेयी ऐसे कड़वे वचन बोल रही है जिनको सुनकर स्वयं कठोरता भी व्याकुल हो उठी है। अपनी जिह्वा रूपी धनुष की कमान से वह अनेक ऐसे शब्द-बाण छोड़ रही है मानो उनका (बेधन किया जाने वाला) लक्ष्य कोमलप्राय राजा दशरथ हो। उसके ये प्रहार ऐसे प्रतीत होते हैं मानो स्वयं कठोरपन शरीर धारण करके (अर्थात् स्वयं साकार बनकर) एक श्रेष्ठ वीर के समान धनुर्विद्या सीख रहा हो। तत्पश्चात् कैकेयी ने राम को समस्त वरस्वरूप दिये जाने वाले आदेशादि का वृत्तान्त कह-सुनाया। उस समय बैठी हुई कैकेयी ऐसी प्रतीत होती थी मानो स्वयं निष्ठुरता ही शरीर धारण करके बैठी हुयी हो। अर्थात् उसकी तत्कालीन मुद्रा एकदम अत्यंत निष्ठुरता भरी थी। कैकेयी की वे कठोरता भरी राजाज्ञाएँ सुनकर भी सूर्यवंश के सूर्यवत् जाज्वल्यमान राम, जो सहजत: ही आनन्दनिधान है, मन ही मन मुस्कराते हुए और एकदम ऐसी दोषरहित कोमल और मधुर वाणी में, जो मानों वाग्देवी सरस्वती को लज्जित करने वाले शब्दाभूषण थे, माता कैकेयी से बोले कि हे माता! सुनो! वह पुत्र अत्यंत सौभाग्यशाली होता है जो पिता और माता के आदेश भरे वचनों से प्रेम करने वाला हो। ऐसा पुत्र तो सार संसार में दुर्लभ है जो आज्ञापालन करके माता पिता को सन्तोष-सन्तुष्टि प्रदान करने वाला हो। फिर, इस वनगमन की आज्ञा का पालन करने में तो मेरा हर प्रकार का हित ही है क्योकि इससे वन में एक तो विशेष मुनिजनों से मेरी भेट होगी, दूसरे ऐसा करने की पिता की आज्ञा है जिसका पालन हो सकेगा तथा तीसरे, इसमें आपकी भी सहमति है।

विशेष—1. कैकेयी और राम दोनों की चरित्रांकन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण।

2. अलंकार मानवीकरण, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति।

3. सुनु जन"" संसारा सुन्दर सूक्ति-प्रयोग है।

❑

UNIT-VI

रीतिकालीन कवि

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केशवदास ने 'कविप्रिया' की रचना के उद्देश्य के विषय में क्या कहा है?

उत्तर महाकवि केशवदास ने 'कविप्रिया' की रचना के उद्देश्य के विषय में कहा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से साधारण मेधा के लोग भी कविता में अलंकार आदि कविता के अनिवार्य तत्त्वों का प्रयोग करना भली-भाँति सीख जाएँगे। इस प्रकार वे अच्छी कविता लिखने में भी पारंगत हो जाएँगे—

अलंकार कबितान के सुनि-सुनि विविध विचार।
कबिप्रिया केशव करी, कबिता को सिंगार॥

प्र.2. महाकवि केशवदास की रसिकता पर अपने विचार लिखिए।

उत्तर महाकवि केशवदास को उच्चकोटि के कवियों की अन्तर्दृष्टि प्राप्त थी। आचार्य केशवदास ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे, जिसके दास भी संस्कृत भाषा में बात करते थे। संस्कृत-साहित्य का उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। केशवदासजी रसिक प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी रसिकता का परिचय उस लोकप्रसिद्ध दोहे के आधार पर भी प्राप्त हो जाता है, जिसमें कुएँ की पाल पर बैठे हुए वे अपने असमय श्वेत हुए केशों को कोस रहे हैं—

केसव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराय।
चन्द्रबदन मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाय॥

प्र.3. केशव के संवाद-सौष्ठव को समझाइए।

उत्तर केशवदास हिन्दी-काव्य-साहित्य में अपने संवादों के लिए सर्वाधिक विख्यात हैं। उनके समान वाक्-चातुर्य एवं तर्कपूर्ण संवाद लिखने में किसी को भी सफलता नहीं मिली। 'रामचन्द्रिका' के नौ प्रसंग संवाद की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये 'रामचन्द्रिका' को सरस तथा रोचक बनाते हैं। इनकी मुख्य विशेषताएँ हैं—1. पात्रानुकूलता, 2. प्रत्युत्पन्नमति, 3. शिष्टाचार, 4. व्यंग्य एवं वाग्वैदग्ध्य, 5. नाटकीयता 6. कूटनीति, 7. पात्रानुकूल मनोभावों की व्यंजना, 8. ध्वनि-सौन्दर्य, 9. बोलचाल की भाषा का प्रयोग।

प्र.4. केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक कहा जाता है। क्यों?

उत्तर रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति रही हैं—साहित्यशास्त्र के आधार पर काव्य-रचना की प्रक्रिया और लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण। इस प्रवृत्ति को सर्वप्रथम केशव ने ही उठाया। 'रसिकप्रिया' एवं 'कविप्रिया उनके रस तथा अलंकार-सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ हैं। यही वह आधार है, जिसके कारण केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक माना जा सकता है।

प्र.5. कवि केशवदास द्वारा किस शैली का प्रयोग किया गया है?

उत्तर केशवदास द्वारा अपनी कविता में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही शैलियों का प्रयोग किया गया है। उनकी 'रामचन्द्रिका' प्रबन्ध शैली की रचना है तो 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' मुक्तक शैली की रचनाएँ हैं।

प्र.6. केशवदास किस परम्परा से सम्बन्धित थे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर केशवदास अलंकारवादी परम्परा से सम्बन्धित थे। वे कविता में अलंकारों की उपस्थिति को अत्यन्त अनिवार्य मानते थे। उनका काव्य-सिद्धान्त था—"**भूषन बिनु न बिराजई कबिता वनिता मित्त।**" इसी कारण वे रस निरूपण में अधिक सफल न हो सके।

POORVA PASS

प्र.7. आलोचकों ने केशवदास को कौन-कौन-सी संज्ञाएँ प्रदान कीं हैं?

उत्तर आलोचकों ने केशवदास को 'हृदयहीन कवि', 'केवल शब्द-व्यवसायी', 'कठिन काव्य का प्रेत', 'छन्दों की प्रदर्शनी सजानेवाला', 'प्रकृति-सौन्दर्य विरोधी' एवं 'चरित्रहन्ता' की संज्ञाएँ प्रदान कीं।

प्र.8. केशव द्वारा रचित प्रसिद्ध महाकाव्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर कवि केशवदास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' अत्यन्त प्रख्यात महाकाव्य है। इस महाकाव्य की रचना राम-सीता को इष्टदेव मानकर पाण्डित्यपूर्ण शैली में की गई है। हिन्दी की रामकाव्य परम्परा में इस महाकाव्य को विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है।

प्र.9. 'कविप्रिया' के अन्तर्गत कवि, व्यभिचारी और चोर में क्या साम्य बताया गया है?

उत्तर 'कविप्रिया' के अन्तर्गत कवि, व्यभिचारी और चोर में यह साम्य है कि तीनों 'सुवर्ण' के शोध में व्यस्त रहते हैं। इन तीनों के कार्यों को नींद एवं शोर प्रभावित करते हैं।

प्र.10. केशवदास की किस रचना को छन्दों का अजायबघर कहा जाता है?

उत्तर केशवदास की रचना 'रामचन्द्रिका' को छन्दों का अजायबघर कहा जाता है; क्योंकि उन्होंने इसमें लगभग 82 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

प्र.11. बिहारी के जन्मकाल से सम्बन्धित दोहा लिखिए।

उत्तर बिहारी के जन्मकाल से सम्बन्धित यह दोहा प्रचलित है—

संवत् जुग सर रस सहित, भूमि रीति गिनि लीन।
कातिक सुदि बुध अष्टमी, जनम विधि हमें दीन॥

अंक-पद्धति के आधार पर किसी संख्या में अंकों का क्रम (गति) बायीं ओर को होता है। उपर्युक्त दोहे के अर्थ के अनुसार—"जुग = 2, सर = 5, रस = 6 तथा भूमि = 1' अंकों की गति के अनुसार इन अंकों से संख्या बनती है—1652', इसी को आज सर्वसम्मति से बिहारी का जन्म वर्ष माना जाता है। अर्थात् बिहारी का जन्म संवत् 1652 में कार्तिक माह की शुक्लपक्ष की अष्टमी को हुआ था।

प्र.12. बिहारी ने अपनी सतसई के आरम्भ में किए गए मंगलाचरण में राधिका की वन्दना किस रूप में की है?

उत्तर महाकवि बिहारी ने अपनी सतसई के आरम्भ में किए गए मंगलाचरण में राधिका की वन्दना निम्न रूप में की है—

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परै, स्यामु हरित-दुति होइ॥

प्र.13. महाराज जयसिंह को उनकी नवोढ़ा पत्नी के मोह से बाहर निकालने के लिए बिहारी द्वारा रचित दोहा लिखिए।

उत्तर महाराज जयसिंह को उनकी नवोढ़ा पत्नी के मोह से बाहर निकालने के लिए महाकवि बिहारी द्वारा निम्न दोहा लिखकर उनके पास भेजा गया था—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

प्र.14. कविवर बिहारी अपनी भवबाधा हरने के लिए किसकी प्रार्थना और क्यों करते हैं?

उत्तर कविवर बिहारी अपनी भवबाधा हरने के लिए 'राधा नागरि' की प्रार्थना करते हैं, क्योंकि जिन राधा-नागरि के प्रभाव से समस्त संसार के पालनहार श्रीकृष्ण भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते, अर्थात् प्रसन्न-वदन हो जाते हैं; यदि वह राधा नागरि उन पर प्रसन्न हो जाएँगी तो फिर कौन-सी भवबाधा है, जो दूर न हो सकेगी।

प्र.15. बिहारी के दोहे के अनुसार नायिका के किन अंगों में क्या होड़ मची है?

उत्तर बिहारी के दोहे के अनुसार नायिका के मन और नयन अंगों में होड़ाहोड़ी मची है। वे यह देखना चाहते हैं कि कौन सबसे पहले और सबसे अधिक नायक को अपनी ओर आकर्षित करता है।

प्र.16. किस गुण के कारण नायिका की गणना सपत्नियों में शिरोमणि के रूप में गई है?

उत्तर अपने नेत्रों की विशेष चमक और लज्जा के कारण नायिका की गणना सपत्नियों में शिरोमणि के रूप में की गई है।

प्र.17. नायिका द्वारा पहनी गई मालती पुष्पों की माला किसके पुष्पों की माला जैसी और क्यों लग रही है?

उत्तर नायिका अत्यन्त गौर-वर्ण है, इसलिए उसके शरीर की कान्ति अत्यधिक पीली है। उसने मालती पुष्पों की श्वेत माला धारण कर रखी है। इन पुष्पों पर जब उसके शरीर की पीली कान्ति पड़ती है तो वे पुष्प सोनजुही के पुष्पों की तरह पीले दिखाई पड़ते हैं। इस तरह नायिका द्वारा पहनी गई मालती पुष्पों की माला सोनजुही के पुष्पों की माला जैसी लग रही है।

प्र.18. बिहारी के अनुसार किस लग्न में उत्पन्न हुआ बालक राजा बनकर सभी सम्पत्तियों का भोग करता है?

उत्तर कविवर बिहारी के दोहे के अनुसार जिस बालक का जन्म मीन लग्न में हुआ हो और शनि की दशा भी मीन राशि में ही हो। वह राजा बनकर राज्य की सभी सम्पत्तियों का भोग करता है।

प्र.19. ''नायिका के मन की बात बिना कहे ही सार्वजनिक हो जाती है।'' कैसे?

उत्तर नायिका के नेत्र नायक की रूपमाधुरी की मदिरा पीकर मदमत्त हो गए हैं एवं नायिका का उन पर कोई नियन्त्रण नहीं रह गया है। उसके वे नेत्र मदमत्त शराबी की तरह उसके मन की बातों को नायिका के बिना कहे ही सार्वजनिक कर देते हैं।

प्र.20. घनानन्द की प्रेमिका सुजान का परिचय संक्षेप में लिखिए।

उत्तर कविश्रेष्ठ घनानन्द बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में मीरमुंशी थे। वहीं उनका परिचय सुजान से हुआ और उससे प्रेम हो गया। किसी ने इसे दरबारी वेश्या, किसी ने नर्तकी तो किसी ने धोबी की लड़की बताया है। सुजान भी घनानन्द से प्रेम तो करती थी, लेकिन इनके प्रेम में अपनी सामाजिक एवं पारिवारिक मर्यादा को नष्ट करने को तैयार न थी।

प्र.21. 'सुजान' को कुछ विद्वान् घनानन्द की प्रेमिका नहीं, बल्कि श्रीकृष्ण का प्रतीक क्यों मानते हैं?

उत्तर 'सुजान' को कुछ विद्वान् घनानन्द की प्रेमिका नहीं, बल्कि श्रीकृष्ण का प्रतीक मानते हैं। इस मत का आधार यह है कि घनानन्द ने सुजान के प्रेम को लेकर जिन पदों की रचना की है, उनका अर्थ सुजान को श्रीकृष्ण का प्रतीक मान लेने पर भी सर्वोचित बैठता है। इसलिए विद्वान् सुजान का अन्वय 'सु + जान' मानकर उन्हें श्रीकृष्ण की भक्ति के पद मानते हैं।

प्र.22. रूप की निधान सुजान के रूप-सौन्दर्य का घनानन्द पर क्या प्रभाव पड़ा है?

उत्तर रूप की निधान सुजान का रूप-सौन्दर्य घनानन्द की आँखों को इस प्रकार मोहित कर लेता है कि उनकी दृष्टि तो उसे देखते-देखते थक जाती है, किन्तु आँखों की तृप्ति नहीं होती है। उनकी आँखें समाज की मान-मर्यादा तक को भूल गई हैं और निरन्तर सुजान को एकटक देखती रहती हैं।

प्र.23. घनानन्द और बिहारी के विरह की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

उत्तर घनानन्द और बिहारी के विरह की तुलनात्मक विवेचना हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में इस प्रकार कर सकते हैं—''घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह ताप को बाहरी पैमाने से मापा है, न बाहरी उछल-कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है, वह भीतर की है, बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है। न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना है, न उछल-कूदकर भागना है।''

प्र.24. रीतिमुक्त कविता में घनानन्द का महत्त्व स्पष्ट कीजिए। **(2021)**

उत्तर रीतिमुक्त काव्यधारा में घनानन्द का स्थान सर्वोच्च है। वे हिन्दी साहित्य में 'प्रेम की पीर' के कवि के रूप में स्थापित हैं। इन्होंने लगभग 39 रचनाएँ लिखी जिनमें 'सुजानहित', 'ब्रज-विलास', 'विरहलीला' प्रधान हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केशव के संवाद-सौष्ठव के अन्तर्गत संवाद-प्रसंग की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

उत्तर

केशव के काव्य में संवाद-प्रसंग

यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि केशव ने संवादों के रूप में काव्य में अधिक सफलता प्राप्त की है। यही कारण है कि केशव ने अपने काव्य में अधिक-से-अधिक ऐसे प्रसंगों की रचना की है, जिनमें संवादों की आवश्यकता हो। केशव दरबारी कवि थे और दरबार का वातावरण चुटीला होता है। वहाँ पर हर प्रकार की चीज को एक व्यवस्था दी जाती है। इसी प्रकार बोलने में भी एक व्यवस्था देखने को मिलती है।

केशव का यही दरबारी वातावरण उनके काव्य में दृष्टिगोचर हुआ है। उन्होंने जान-बूझकर ऐसे प्रसंगों की योजना की है, जिसमें उन्हें अपना वाक्चातुर्य व्यक्त करने का अधिक-से-अधिक अवसर प्राप्त हो सके। इसका कारण केशव का अपना परिवेश ही था। संवादों के माध्यम से केशव ने पात्रों के चरित्रों को स्पष्ट रूप से उभारा है। केशव के काव्य में अनेक प्रसंग हैं, जिनमें संवादों की संरचना और नियोजना हुई है; जैसे—

1. दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ संवाद।
2. सुमति-विमति संवाद।
3. रावण-बाणासुर संवाद।
4. विश्वामित्र-जनक संवाद।
5. परशुराम-वामदेव संवाद।
6. परशुराम-राम संवाद।
7. कैकेई-भरत संवाद।
8. शूर्पणखा-राम संवाद।
9. सीता-रावण संवाद।
10. रावण-हनुमान् संवाद।
11. रावण-अंगद संवाद।
12. लव-कुश-विभीषण संवाद।

उपर्युक्त संवादों से कुछ तो अत्यन्त लघु हैं और अपना विस्तृत आयाम नहीं रखते, उनमें कोई चरित्र-चित्रण से सम्बन्धित विशेषता भी उभरकर सामने नहीं आती, लेकिन 'रामचन्द्रिका' के उपर्युक्त संवादों में कुछ लम्बे संवाद भी हैं, जिनमें चरित्र-चित्रण की विशेषता उभरती है और उनका सरलतापूर्वक प्रयोग भी केशव कर सके हैं। केशव की 'चन्द्रिका में अधिकतर प्रसंग संवादपूर्ण हैं और नाटकीय आयाम रखते हैं। इसका कारण यह है कि केशव पर संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' का यथेष्ठ प्रभाव पड़ा है एवं केशव अपनी नाटकीय नियोजना के लिए संस्कृत के इन्हीं नाटकों के ऋणी भी हैं।

प्र.2. केशवदास को हृदयहीन कवि क्यों कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर केशवदास के काव्य में पाण्डित्य और चमत्कार की प्रधानता है। भावुकता के स्थान पर हृदयहीनता, सरसता के स्थान पर क्लिष्टता के दर्शन होते हैं। **आचार्य शुक्ल** का मानना है—"केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए।" **आचार्य श्यामसुन्दरदास** का मानना है—'उनकी रुचि क्लिष्ट कल्पना की ओर थी।" इस प्रकार केशव की कविता पर क्लिष्टता, हृदयहीनता तथा नीरसता के जो लांछन लगाए गए हैं, उनका प्रमुख कारण उनमें पाण्डित्य-प्रदर्शन की रुचि एवं चमत्कार-विधान की प्रेरणा है। उन्होंने कोरे शब्दसाम्य को आधार बनाकर श्लेषात्मक कविता की, जिसमें शाब्दिक खिलवाड़ के अतिरिक्त भावुकता एवं सरसता के दर्शन नहीं होते। वे विरोधाभास के चक्कर में पड़कर भी काव्य की सरसता तथा सरलता खो बैठे हैं। उनकी क्लिष्ट कल्पना भी काव्यगत सहज सरसता को नष्ट करती है तथा क्लिष्टता के साथ-साथ उनमें हृदयहीनता आ जाती है, लेकिन उनमें सहृदयता है ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। अनेक स्थानों पर उनकी भाव-व्यंजना भी फूट पड़ी है। ये प्रमुख स्थान हैं-लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग, विश्वामित्र के साथ राम को भेजते समय दशरथ की दशा, सीताहरण के बाद राम का शोक, मेघनाद वध के पश्चात् रावण की शोकपूर्ण अवस्था, सीता का राम-मुद्रिका से कथन इत्यादि। केशवदास की 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' सहृदयता से युक्त हैं, जहाँ उनकी भावुकता तथा मार्मिकता के दर्शन होते हैं। अत: उनके पास हृदय था, यह बात दूसरी है कि चमत्कार-प्रदर्शन और पाण्डित्य-प्रदर्शन के मोह के कारण वह कुछ दब-सा गया है।

प्र.3. "बिहारी ने कोई लक्षण ग्रन्थ न लिखकर भी रीति-परम्परा का पालन किया है।" क्यों? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर बिहारी जी का रीतिसिद्ध कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। रीति-परम्परा में रीतिसिद्ध कवि उन कवियों को कहा जाता है, जिन्होंने लक्षण-ग्रन्थ तो नहीं लिखे, लेकिन काव्य-रचना करते समय उनकी दृष्टि रीति-ग्रन्थों की ओर ही रही एवं उन्होंने अपने काव्य में विभिन्न काव्य तत्त्वों के लक्षणों को प्रस्तुत किया। बिहारी भी इसी रीतिसिद्ध परम्परा के कवि हैं। उनकी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' ही है, जो स्वतन्त्र रूप में लक्षण-ग्रन्थ नहीं है। इसमें भक्ति, नीति, रीति और शृंगार आदि सभी का समान रूप से उल्लेख किया गया है।

बिहारी ने अनेक स्थानों पर विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन उनके लक्षणों के अनुरूप ही किया है। शुक्लाभिसारिका नायिका के लक्षणों पर प्रकाश डालता हुआ निम्नलिखित दोहा पढ़िए—

जवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डौरै लगी, अली चली सँग जाइ॥

शुक्लाभिसारिका नायिका उसे कहा जाता है, जो चाँदनी रात अर्थात् शुक्लपक्ष की रात में सज-धजकर नायक से मिलने के लिए संकेत-स्थल पर जाती है। यहाँ भी नायिका चाँदनी रात में नायक से मिलने जा रही है।

इसी तरह पूर्वानुरागिनी नायिका उसे कहा जाता है, जो नायक के रूप-सौन्दर्य को देखकर या सुनकर उस पर अनुरक्त हो जाती है। बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में नायिका के अन्तर्गत इन्हीं लक्षणों को दिखाया है। वह नायक के प्रत्येक अंग की मोहक छवि पर आकर्षित है; अतः वह पूर्वानुरागिनी नायिका है—

फिरि-फिरि चितु उत हीं रहतु, टुट्टी लाज की लाव।
अंग-अंग-छबि झौंर मैं, भयौ भौंर की नाव॥

इसी प्रकार बिहारी ने अन्यत्र भी ऐसे ही लक्षणों पर आधारित दोहों की रचना करके यह प्रमाणित का दिया है कि उनमें आचार्य कहलाने की कोई ललक न थी, किन्तु उनमें आचार्यत्व की प्रतिभा का अभाव न था।

प्र.4. बिहारी के संयोग शृंगार की कोई-सी तीन विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर

बिहारी का संयोग शृंगार

संयोग शृंगार, शृंगार रस का प्रमुख भाव है। संयोग के अभाव में वियोग का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। प्रेमी प्रेमिका के सौन्दर्य, उसके प्रति एक-दूसरे का आकर्षण, प्रेम, मिलन, प्रेम-कटाक्ष, प्रेम-मुद्राएँ, हास-परिहास, प्रणय-केलि आदि सभी भाव संयोग शृंगार के ही अन्तर्गत आते हैं। बिहारी ने संयोग की इन सभी दशाओं तथा भाव-भंगिमाओं की अद्‌भुत विलक्षण व्यंजना की है।

बिहारी ने संयोग की इन अनुभूतियों को अपने अलंकारादि विभूषणों से विभूषित कर उक्ति-वैचित्र्य को जिस तीक्ष्ण वक्रता के साथ अभिव्यक्त किया है, वैसा करने में कोई अन्य कवि सफल नहीं हो सका है। इसको हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1. **नायिका का रूप-चित्रण**—कविवर बिहारी द्वारा रीतिकालीन कवियों की तरह नायिकाभेद का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया है, लेकिन उन्होंने वर्गीकरण किए बिना ही सभी प्रकार की नायिकाओं का सौन्दर्य-वर्णन किया है। इस सौन्दर्य-वर्णन की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें नायिका के अंग-अंग के रूप का मनोरम किया गया है—

देह दुलहिया की बदै, ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं सबैं, बदन मलिन दुति होति॥

2. **नख-शिख-वर्णन**—महाकवि बिहारी ने शृंगार रस की व्यंजना में एवं नायिका के सौन्दर्य के नख-शिख वर्णन में अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है। उनके नख-शिख वर्णन में अलंकारों की प्रचुरता है, जो भावों को उद्दीप्त करने में अद्‌भुत रूप से सहायक सिद्ध हुए हैं। बिहारी के इस नख-शिख वर्णन में कामुकता तथा विलासिता का प्रबल भाव स्पष्ट दिखाई देता है—

अंग-अंग-नग जगमगत, दीपसिखा-सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ी उज्यारौ गेह॥
× × ×
नख-सिख-रूप झरे खरे, तौं माँगता मुसकानि।
तजत न लोचन लालची, ए ललचौहीं बानि॥

3. **हास-परिहास**—बिहारी की रचना में नायक-नायिका मिलने पर एक-दूसरे से मधुर हास-परिहास करते हैं। उन्होंने नायक-नायिका के इस हास-परिहास का बड़ा ही सजीव तथा मधुर चित्रण किया है। इस हास के अन्तर्गत छेड़छाड़ एवं क्रीडाओं का भी अपूर्व चित्रण हुआ है। बिहारी के इस चित्रण की विलक्षणता यह है कि इसमें छेड़छाड़ एवं हास-परिहास के बड़े ही अनोखे रूप का अंकन हुआ है। प्रेमी-प्रेमिका की अनोखी मुद्राओं तथा प्रेमाभिव्यक्ति को बिहारी ने अभिव्यक्त भी अनोखे ही ढंग से किया है—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहन हँसै, दैन कहै नटि जाइ॥

प्र.5. सौन्दर्य चित्रण पर आधारित शृंगार काव्य की सहायता से किस प्रकार घनानन्द ने अपनी प्रेमिका का चित्रण किया है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर घनानन्द का शृंगार-काव्य उनकी प्रेमिका सुजान के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित प्रेम-भाव का काव्य है। शृंगाररस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों में उनकी प्रेमिका सुजान उनकी भावनाओं पर पूर्णतः छाई रही है। उन्होंने उसके रूप का जो मनोहारी वर्णन अपने काव्य में किया है, उसके आधार पर वह अनिन्द्य रूपसी, चंचल, चतुर एवं यौवन के मादकता से मदमाती युवती थी। सुजान

का यह रूप-सौन्दर्य वर्णन यह स्पष्ट करता है कि उनकी सुजान नामक कोई प्रेमिका थी और वह किंवदन्तियों के अनुसार वास्तव में कोई नर्तकी अथवा वेश्या थी।

सुजान का सौन्दर्य-चित्रण

महाकवि घनानन्द ने अपनी प्रेमिका सुजान का जितने मनोयोग से उसकी रूप-गरिमा, उसके रतिभाव से युक्त व्यवहार का वर्णन किया है, उन्होंने उतनी ही तड़प के साथ उसे निष्ठुर, विश्वासघाती, छली, निर्मम आदि भी बताया है। कवि की इन विपरीत उद्‌भावनाओं से कुछ समालोचकों तथा काव्यमर्मज्ञों ने यह अनुमान लगाया है कि 'सुजान' अनिन्द्य सुन्दरी थी एवं घनानन्द उसके रूप पर मोहित हो गए थे, इसलिए उन्हें जीवनभर प्रेम की व्याकुलता में तड़पना पड़ा।

रूप भला किसे प्रभावित नहीं करता, लेकिन सभी तो घनानन्द की तरह प्रेमिका की याद में वैरागी नहीं बन जाते। स्पष्ट है कि घनानन्द प्रेम के वशीभूत थे, अपनी निश्छल, पवित्र भावनाओं पर ठोकर लगने के कारण ही उनके हृदय में ऐसा हा-हाकार उठा कि वे संसार से विरक्त होकर वृन्दावन में संन्यासियों की भाँति रहने लगे। इसे रूप पर रीझने की प्रतिक्रिया नहीं कहा जा सकता। उन्हें सुजान से सच्चा प्रेम था और इस प्रेम-भाव के कारण ही उन्हें अपनी प्रेमिका अनिन्द्य सुन्दरी लगती थी। यह हो सकता है कि 'सुजान' अनिन्द्य रूपसी रही हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि वह केवल रूपसी हो और घनानन्द का प्रेमी हृदय उसे अनिन्द्य रूपसी के रूप में देखता हो। एक भावुक प्रेमी जब अपनी प्रेमिका का वर्णन करता है तो उसमें शत-प्रतिशत वास्तविकता का ठोस धरातल खोजना अज्ञानता है। कारण चाहे कुछ भी हो, घनानन्द ने अपनी प्रेमिका के रूप का मनमोहक, आकर्षक एवं हृदयग्राही वर्णन किया है, जिसमें उनकी सूक्ष्म अनुभूति-क्षमता का विलक्षण कौशल दिखाई पड़ता है।

प्रेमरूपी सरोवर में आकण्ठ डूबे घनानन्द को अपनी प्रेमिका सुजान अपूर्व सुन्दरी और रूप का अद्भुत खजाना प्रतीत होती है। इसीलिए उनकी दृष्टि समाज की मान-मर्यादा का ध्यान रखे बिना सदैव उसी पर लगी रहती है। आँखों से उनका नियन्त्रण खो गया है और वे हटाए से भी नहीं हटती हैं—

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे॥
एक अचम्भौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे॥

प्र.6. घनानन्द के प्रेम-वर्णन के विषय में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

घनानन्द का प्रेम-वर्णन

कविवर घनानन्द रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्य-परम्परा के मूर्धन्य कवि हैं। उन्होंने अपना नाम आनन्द के घन बनकर हिन्दी-साहित्य-जगत् को रससिक्त करके सार्थक कर दिया है। उन्होंने अपनी वाणी से प्रेम की ऐसी पावन, सरस, व्यापक और महान् धारा प्रवाहित की कि उसमें प्रेमीजनों का हृदय ओत-प्रोत होकर थिरक उठा।

संसार में प्रेम एक महत्त्वपूर्ण है। यह एक ऐसा भाव है, जो जीवन में भौतिक और अभौतिक सभी प्रकार के सुखों की अनुभूति कराता है। प्रेम के अभाव में मानव-जीवन मृतप्राय है। प्रेम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **डॉ० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी** कहते हैं—"प्रेम से जीवन पवित्र हो सकता है, प्रेम से जीवन अलौकिक सौन्दर्य प्राप्त कर सकता है, प्रेम से जीवन सार्थक हो सकता है। मनुष्य-प्रेम से ईश्वर-सम्बन्धी प्रेम की उत्पत्ति हो सकती है।" घनानन्द की प्रेमानुभूति का विवेचन इस रूप में किया जा सकता है—

1. **घनानन्द : भक्त अथवा प्रेमी कवि**—घनानन्द मुख्यतया प्रेम के कवि हैं। प्रेम-भाव उनके काव्य के प्राण हैं। उन्होंने काव्य में प्रेम और उसकी पीड़ा का हृदयग्राही वर्णन किया है। उन्होंने पवित्र प्रेम की पीड़ा को अपने काव्य में इतनी गहराई प्रदान की है कि कहीं-कहीं उसे देखकर उनके भक्त-कवि होने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है।
   आचार्य रामचन्द्र शुक्ल घनानन्द को प्रेम का कवि सिद्ध करते हुए कहते हैं—"प्रेम-दशा की व्यंजना ही उनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्‌घाटन जैसा उनमें है, हिन्दी के अन्य शृंगारी कवियों में नहीं। प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों द्वारा किया है।"
2. **सुजान : घनानन्द की प्रेमिका**—घनानन्द के काव्य में प्रेम-भाव पूर्ण रूप से झलकता है। वे अपने जीवन के अन्तिम चरण में भक्त बन गए थे, परन्तु अपने लौकिक प्रेम को विस्मृत नहीं कर पाए। इस विषय में **आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ठीक ही कहते हैं—"घनानन्द ने अन्त में भक्ति-सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का 'सुजान' नाम वे

भूल न सके। श्रीकृष्ण के 'सुजान', 'जान' आदि विशेषण रखकर उनकी प्रेममयी गाथा निरन्तर गाते रहे।'' इस प्रकार घनानन्द साक्षात् प्रेम के अवतार हैं।

3. **घनानन्द में लौकिक प्रेम**—घनानन्द मूलत: लौकिक प्रेम के रसिक थे, इसी कारण हृदयगत प्रेम की जो लहर उनकी कविता में दृष्टिगोचर होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी लौकिक प्रेमिका 'सुजान' के प्रति घनानन्द का प्रणय-निवेदन हिन्दी-काव्य की स्थायी निधि है। वैसा आत्मनिवेदन, वैसी प्रेम-पीड़ा, वैसी विरहानुभूति, वैसी आत्माभिव्यंजना से युक्त काव्य मध्य युग में नहीं लिखा गया। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी-काव्य के इतिहास में भी ऐसी प्रेम-विह्वलता का चितेरा दूसरा न मिलेगा। घनानन्द का काव्य आत्म-पीड़ा का ही दूसरा नाम है। पुरातनकाल में कविजन आत्मव्यथा अथवा उल्लास को गोपी-कृष्ण आदि अन्य माध्यमों से मुखर करते रहे हैं, परन्तु लौकिक प्रेम-भावना का नितान्त आत्मगत पद्धति पर प्रकाशन घनानन्द का ही काम था। हिन्दी-काव्य परम्परा में कदाचित् सर्वप्रथम इतने भावोन्मेष के साथ किसी कवि ने अपने लौकिक हर्ष-विषाद का चित्रण ऐसी व्यक्तिनिष्ठ शैली में किया था। घनानन्द के महत्त्व को चिरकाल तक अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उनका एक यही गुण पर्याप्त है।

4. **घनानन्द और प्रेम-सम्बन्धी आदर्श**—घनानन्द की प्रेम-विषयक मान्यताओं का निर्धारण उनके काव्य के आधार पर किया जा सकता है। प्रासंगिक रूप से उन्होंने कुछ छन्द ऐसे अवश्य लिख दिए हैं, जिनमें प्रेम-विषयक धारणा बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है, पर विधिवत् प्रेम-तत्त्व का विवेचन कवि ने किसी भी कृति में नहीं किया है।
घनानन्द ने प्रेम को संसार और जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है, उनकी दृष्टि में प्रेम के बिना जीवन निरर्थक है। प्रेम के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता। जिसके हृदय में प्रेम नहीं होता, उसका हृदय मलिन होता है और मलिन बातों अथवा कामों में ही वह निरन्तर लगा रहता है। ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिए; क्योंकि ये सब सद्विवेक से रहित होते हैं। घनानन्द एक सच्चे प्रेमी थे। उन्होंने जिस प्रेम की अनुभूति की थी, वह वास्तव में प्रेम का उच्चादर्श था।

प्र.7. निम्नलिखित पद्यांश की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए। **(2021)**

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे॥

उत्तर

पद की व्याख्या

रूपनिधान ..... **तारे॥**

शब्दार्थ—रूपनिधान = रूप का खजाना; **नेकु** = भली-भाँति; **निहारे** = देखा है; **दीठि** = दृष्टि, नजर; **मति** = बुद्धि, मन, मान; **बिसारे** = भुला दिया है; **भयौ** = हुआ; **पल-पाट** = पलकरूपी पट अथवा कपाट; **उघारे** = उघाड़ता हूँ, उठाता हूँ; **टारैं टरैं नहीं** = टाले से नहीं टलते हैं; **तारे** = पुतलियाँ; **मनमोहन** = मन को मोहनेवाली सुजान, मन को मोहनेवाले श्रीकृष्ण; **मोह के तारे** = स्नेह के तारे, आँखों के तारे मुहावरा।

संदर्भ—रीतिमुक्त काव्य के प्रतिनिधि कवि, प्रेम के उन्मुक्त गायक और शृंगार रस के अद्भुत चितेरे **महाकवि घनानन्द** की प्रेम और शृंगारपरक रचना **'सुजानहित'** से प्रस्तुत पद उद्धृत है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में कवि घनानन्द अपनी प्रेमिका सुजान अथवा आराध्य श्रीकृष्ण के सौन्दर्य एवं अपने निश्छल प्रेम की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

व्याख्या—मेरी प्रियतम सखी अथवा प्रेमिका सुजान तो रूप—सौन्दर्य का अद्भुत खजाना है। उसके समान अनुपम सुन्दरी संसारभर में कोई दूसरा नहीं है। जबसे मैंने उसकी आँखों में आँखें डालकर देखा है, मैं उससे अपनी दृष्टि नहीं हटा पाता हूँ। उसे देखते-देखते मेरी दृष्टि थक जाती है, किन्तु आँखें उसके सौन्दर्यपान से तृप्त ही नहीं हो पाती। वे निरन्तर टकटकी लगाए उसे देखती रहती हैं, एक पल के लिए भी उसे अपनी आँखों से अदृश्य नहीं होने देना चाहती हैं। वे उसके प्रेम में इस तरह डूब गई हैं कि उन्होंने समाज की मान-मर्यादा को भी भुला दिया है। घनानन्द कहते हैं कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मैं नित प्रतिदिन जब भी अपनी पलकों को उठाता हूँ अर्थात् पलकों के पट खोलता हूँ तो मुझे सब ओर उसी के दर्शन होते हैं। मेरी आँखों के तारे अथवा पुतलियाँ उसकी ओर से हटाए से भी नहीं हटते हैं अर्थात् उन पर मेरा कोई नियन्त्रण नहीं रह गया है। मेरे मन को

मोहनेवाली अथवा मनमोहन कृष्ण के मोह से ये आँखों के तारे पता नहीं हटेंगे भी या नहीं। यहाँ यह अर्थ भी ध्वनित हो रहा है कि घनानन्द कहते हैं कि ये मेरे नेत्र मनमोहन के दर्शन से टारे नहीं टरेंगे अर्थात् ये आजीवन इन्हीं के दर्शनों में अनुरक्त रहेंगे, भले ही इनका उद्धार हो अथवा नहीं।

विशेष—1. यहाँ कवि ने अपनी प्रेमिका के लिए अपना अनन्य प्रेम व्यक्त किया है। यदि सुजान का अर्थ श्रीकृष्ण करते हैं तो यह पद उनकी भक्ति-भावना के चरमोत्कर्ष को भी व्यक्त करता है। 2. स्वच्छन्द प्रेम की निश्छल परिपाटी का पालन किया गया है; क्योंकि सच्चा प्रेम समाज की परवाह नहीं करता कि यह समाज उसके विषय में क्या कहेगा। 3. **भाषा**—शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा, जिसमें 'टारैं टरैं नहीं' लोकोक्ति का मंजुल प्रयोग किया गया है। 4. **अलंकार**—प्रस्तुत सवैये में रूपक, अनुप्रास तथा 'मनमोहन' में श्लेष अलंकार का सुन्दर प्रयोग दिखाया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केशवदास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व एवं रचनाओं के विषय में लिखिए।

उत्तर

केशवदास का जीवन-वृत्त

जन्मस्थान एवं जन्मकाल—महाकवि केशवदास 'कठिन काव्य का प्रेत' कहे जाते हैं। उनका जन्म संवत् 1612 (सन् 1555 ई०) में ओरछा के सुप्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में **पं० काशीनाथ मिश्र** के घर हुआ था। उनके पितामह का नाम पं० कृष्णदत्त था। ये ब्रज के डीग-कुम्हेर गाँव के रहने वाले थे जो ओरछा में आकर बस गए थे। राजा रुद्रप्रताप के पुत्र मधुकरशाह इनका बड़ा सम्मान किया करते थे। मधुकरशाह के पश्चात् रामशाह ओरछा के सिंहासन पर बैठे। परन्तु राज्य की बागडोर इनके छोटे भाई इन्द्रजीत सँभाला करते थे। कविश्रेष्ठ केशवदास के पिता तथा पितामह संस्कृत भाषा के विद्वान् थे, इसलिए इन्हें भी संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। केशवदास ओरछा-नरेश के दरबारी कवि थे। ओरछा-नरेश राजा इन्द्रजीत इनको अपना गुरु मानते थे और इनका बहुत अधिक सम्मान करते थे। केशव की कविता से प्रसन्न होकर इन्द्रजीत ने इन्हें इक्कीस गाँव पुरस्कार स्वरूप दे दिए थे। कहा जाता है कि एक बार सम्राट अकबर ने क्रुद्ध होकर राजा इन्द्रजीत पर एक लाख रुपये का जुर्माना कर दिया। केशवदास ने यह जुर्माना माफ करा दिया। इससे उनका मान और भी अधिक बढ़ गया।

इन्द्रजीत के दरबार में एक एक वेश्या भी रहती थी जिसे इन्होंने ही शिक्षित किया था और इसके पश्चात् ही उन्होंने 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थ की रचना की। कुछ विद्वानों ने इन्हें तुलसी का समकालीन माना है। संवत् 1674 (सन् 1617 ई०) में उन्होंने अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।

साहित्यिक व्यक्तित्व—महाकवि केशवदास रीतिवादी काव्यधारा के प्रवर्तक तथा प्रचारक समझे जाते हैं। इन्होंने कविता के भाव-पक्ष को अधिक महत्त्व देने के स्थान पर कला-पक्ष की प्रधानता को स्वीकार किया एवं तत्कालीन काव्यधारा के क्षेत्र में एक नए युग का सूत्रपात किया। इनके काव्य की कलात्मकता अद्भुत है। 'रामचन्द्रिका' नामक रचना में इनकी पाण्डित्यपूर्ण काव्य-कला परिलक्षित होती है। इन्होंने संस्कृत के अनेक छन्दों एवं अलंकारों को ब्रजभाषा में ढालकर हिन्दी-काव्य का अनोखा अलंकृत रूप प्रस्तुत किया। रस-विवेचन, नायिका-भेद, अलंकार एवं छन्दों के शास्त्रीय स्वरूप से काव्य को अलंकृत करनेवाले केशवदास, भाव तथा मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक सफल नहीं रहे हैं। इस कारण प्राय: लोग इन्हें 'हृदयहीन कवि' कहते हैं। यद्यपि अनेक विद्वानों ने इन्हें हृदयहीन कहे जाने पर आपत्ति की है, तथापि यह सत्य है कि केशवदास के काव्य में भाव-पक्ष का अभाव था और यह अभाव इनके काव्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशव ने काव्य के शास्त्रीय अलंकृत स्वरूप की रचना करने में ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया, जिसके कारण इनको काव्य के भाव-पक्ष को विकसित करने का समय ही नहीं मिला।

वस्तु-निरूपण, अलंकार-योजना, शब्द-योजना एवं छन्द-विधान के शास्त्रीय रूप को अपने काव्य में स्थान देकर काव्य का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत करनेवाले केशवदास काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित समझे जाते हैं।

केशवदास की रचनाएँ

महाकवि केशवदास ने 16 ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से आठ ग्रन्थ नि:सन्देह इन्हीं के द्वारा लिखे हुए माने जाते हैं, शेष की प्रामाणिकता अभी सन्देहास्पद है। इनकी प्रामाणिक रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **रामचन्द्रिका**—यह ग्रन्थ राम-सीता को इष्टदेव मानकर पाण्डित्यपूर्ण भाषा-शैली में लिखा गया है।
2. **विज्ञान-गीता**—यह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

3. **नश-शिख।**
4. **रतन-बावनी।**
5. **वीरसिंहदेवाचरित।**
6. **जहाँगीर-जसचन्द्रिका।**
7. **रसिकप्रिया**—इसमें रस-विवेचन किया गया है।
8. **कविप्रिया**—इसमें कवि-कर्त्तव्य एवं अलंकार का वर्णन है।

आचार्य केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक माना जाता है। इन्होंने चमत्कार को काव्य का सर्वस्व और अलंकार को काव्य की आत्मा माना है। इस दृष्टि से उनके काव्य में कला-पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष थोड़ा दब-सा गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केशव के काव्य पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं—"केशव को कवि-हृदय नहीं मिला। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए।"

प्र.2. केशवदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उनके हिन्दी साहित्य में स्थान का विवेचन कीजिए।

उत्तर

केशवदास की काव्यगत विशेषताएँ

आचार्य केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने चमत्कार को काव्य का सर्वस्व एवं अलंकार को काव्य की आत्मा माना है। इस दृष्टि से उनके काव्य में कला-पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष थोड़ा दब-सा गया है। केशव के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(अ) भाव-पक्ष की विशेषताएँ

1. **भाव-व्यंजना**—भाव-व्यंजना किसी भी सरस काव्य के लिए अनिवार्य है। इसके लिए कवि का सहृदय होना आवश्यक है। यद्यपि इनके सभालोचकों ने इन्हें हृदयहीन सिद्ध करने का प्रयास किया है, फिर भी उनके काव्य में अनेक ऐसे स्थल मिल जाते हैं, जो उन्हें सरस और सहृदय कवि सिद्ध कर सकते हैं। केशवकृत 'रामचन्द्रिका' में विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम को लेने के लिए आते हैं। उस स्थल पर राजा दशरथ की विवशता देखने योग्य है। राजा दशरथ के लिए सिंहासन पर बैठना भी कठिन हो जाता है। इसी प्रकार सीता-हरण के उपरान्त राम का जो करुण विलाप केशव ने अंकित किया है, वह भी विरही मानव-मन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। जब रावण मेघनाद के कटे हुए सिर को देखता है तो वह स्वयं को अत्यन्त असहाय अनुभव करता है। पुत्र-शोक के कारण वह अत्यधिक निराशा तथा अवसाद की मन:स्थिति में पहुँच गया है। अशोक वाटिका में सीता को अपनी कुशलता की ही नहीं, राम की कुशलता की भी चिन्ता है। वे राम की मुद्रिका से राम की कुशलता पूछती हैं—

   कहि कुसल मुद्रिके राम गात। सुभ लक्ष्मणसहित समान तात॥

2. **रस-निरूपण**—महाकवि केशवदास मुख्य रूप से अलंकारवादी थे। वे अलंकारों के प्रयोग में अधिक विश्वास करते थे, इसलिए रस-निरूपण में वे अधिक सफल नहीं रहे हैं। उनके काव्य का रस-पक्ष अपेक्षाकृत कमजोर रह गया है। केशवदास ने शृंगार, वीर, करुण और शान्त रसों का अत्यधिक प्रयोग किया है। अन्य रस भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं, लेकिन उपर्युक्त रसों में ही इनका मन अधिक रमा है। इनमें से भी शृंगार रस कवि को अधिक प्रिय है। कृष्ण के अनन्य प्रेम में मान अपनी सुध-बुध खोई राधा के वर्णन में शृंगार रस का निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

   केशव चौंकति-सी चितवै, छतिया धरकै तरकै तकि छाँही।

   कवि को वीर रस भी प्रिय है। रामचन्द्रिका में अनेक ओजपूर्ण प्रसंग देखे जा सकते हैं। कवि ने शत्रुघ्न एवं लव के बीच हुए युद्ध का वर्णन निम्न पंक्तियों में किया है—

   घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी।
   बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यौ। यों कहि कै धनुसायक साध्यौ॥

   कवि ने कारुणिक प्रसंगों का भी बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। लव की मूर्च्छास्था का समाचार पाकर सीता व्याकुल होकर अचेत हो जाती हैं। उनकी अवस्था को व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

   मनो चित्र की पुत्तिका, मन क्रम वचन समेत।

इस प्रकार शृंगार, करुण एवं वीर रस के विविध दृश्य केशव ने अंकित किए हैं। केशवकृत 'विज्ञान-गीता' में शान्त रस का प्रयोग हुआ है।

3. **प्रकृति-चित्रण**—केशव ने प्रकृति-चित्रण में परम्परागत सभी विधियों को अपनाया है। उन्होंने काव्य एवं प्रकृति के मध्य अटूट सम्बन्ध माना है, यहाँ तक कि प्रकृति-चित्रण के लिए केशव ने कहीं-कहीं बलात् भी अवसर बना लिए हैं। केशवदास ने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, आलंकारिक, बिम्ब-प्रतिबिम्ब और परिगणनात्मक रूप में वर्णन किया है। सीता से वियुक्त होने पर राम को चन्द्रमा भी सूर्य के समान दाहक प्रतीत हो रहा है। चन्दन आदि के शीतल लेप भी उन्हें आग की तरह जलाते हैं। ऐसा ही एक दृश्य देखिए—

हिमांसु सूर सो लगै सो बात वज्र-सी बहै।
दिशा लगैं कृसानु ज्यों, बिलेप अंग कौ दहै॥

4. **संवाद-सौष्ठव**—केशवदास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' नाटकीय तत्त्वों से अनुप्राणित है। केशवदास दरबारी कवि थे। इसलिए उन्होंने दरबार की संवादपटुता को बहुत निकट से देखा था; अत: यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने काव्य में संवादों को प्रमुख स्थान देते। 'रामचन्द्रिका' का कथानक वस्तुत: संवादों के माध्यम से ही आगे बढ़ता है। संवादों के माध्यम से ही पात्रों के चरित्र का उद्घाटन हुआ है। केशव के संवादों में वाग्वैदग्ध्य, वाक्पटुता, भावानुकूलता और व्यंग्यात्मकता देखने को मिलती है। उनमें राजनीति के दाँव-पेच भी हैं।

इस प्रकार केशवदास का काव्य भाव-पक्षीय विशेषताओं की दृष्टि से किसी भी उच्चकोटि के कवि से कम नहीं है। यद्यपि वे कला-पक्ष के पण्डित हैं तथापि उनका भाव-पक्ष भी दबा हुआ नहीं है।

(ब) कला-पक्ष की विशेषताएँ

केशवदास ने अपने काव्य के कला-पक्ष को जितना अधिक पुष्ट किया है, उतना भाव-पक्ष को नहीं। उनके काव्य के कला-पक्ष की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **भाषा**—केशव की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें बुन्देलखण्डी का पुट है। केशवदासजी का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में विषय के अनुरूप प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण विद्यमान हैं। ओजस्विता, लाक्षणिकता तथा प्रवाह उनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अधिकांश आलोचकों ने उनकी भाषा को 'बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा' कहना अधिक उचित समझा है। केशवदास ने पाण्डित्य-प्रदर्शन और चमत्कार दिखाने के लिए संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। यत्र-तत्र अरबी-फारसी के शब्द तथा मुहावरों का भी प्रयोग किया है। यद्यपि केशव की भाषा शुद्ध साहित्यिक है, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से उसमें अनेक दोष भी विद्यमान हैं। कवि ने शब्दों को इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा भी है। समग्र रूप में भाषा प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावशाली है। वस्तुतः केशव में भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने की पूर्ण क्षमता है।
2. **शैली**—केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया है। 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध शैली है तो 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में मुक्तक शैली है।
3. **अलंकारप्रियता**—अपने काव्य में केशव ने अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि उन्हें 'अलंकारवादी' कहा जाता है। केशव का दृष्टिकोण था—**"भूषण बिनु न बिराजई, कबिता वनिता मित्त"**; अर्थात् आभूषण के अभाव में कविता और नारी का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। उनके काव्य में रूपक, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, सन्देह एवं अनुप्रास आदि अलंकारों के बहुत अधिक प्रयोग हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि केशव ने अलंकारों का प्रयोग साधन के रूप में न करके साध्य के रूप में किया है।
4. **विविध छन्दों का प्रयोग**—केशवदास के समान हिन्दी के किसी अन्य कवि ने इतने अधिक छन्दों का प्रयोग नहीं किया। हिन्दी साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध सभी छन्द 'रामचन्द्रिका' में प्राप्त हो जाते हैं। केशव ने तो 'रामचन्द्रिका' के आरम्भ में ही अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

जागति जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, बरनत हौं बहुछन्द॥

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में लगभग 82 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, जिनमें 24 मात्रिक और 58 वर्णिक छन्द हैं। डॉ० बड़थ्वाल ने तो 'रामचन्द्रिका' को 'छन्दों का अजायबघर' कहा है।

केशव को इस बात का भली प्रकार ज्ञान था कि किस भाव को व्यक्त करने के लिए कौन-सा छन्द उपयुक्त होगा। यश-वर्णन करने के लिए उन्होंने कवित्त और सवैया का प्रयोग किया, जबकि वीर रस का वर्णन छप्पय में किया गया है।
इस प्रकार स्पष्ट है कि भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से केशवदास का काव्य उत्कृष्ट है।

हिन्दी-साहित्य में स्थान

केशवदास रीतिकालीन युग के एक विशिष्ट कवि माने जाते हैं। हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत रीतिग्रन्थों का सृजन करने का श्रेय सर्वप्रथम उन्हीं को दिया जाता है। काव्य को काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुरूप ढालने एवं उसके वस्तु-निरूपण, शब्द-योजना, अलंकार-योजना एवं छन्द-विधान आदि को नियमबद्धता प्रदान करने के लिए महाकवि आचार्य केशवदास को सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। उन्हें रीतिकालीन काव्य का प्रवर्तक भी माना जाता है। काव्य के कला-पक्ष पर उनका अद्भुत स्वामित्व था। उनके कला-पक्ष की विलक्षणता को देखकर ही उन्हें आचार्य केशवदास के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

प्र.3. केशवदास को 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा जाता है। इस कथन को सम्पुष्टि प्रदान करने वाले कारणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

केशवदास : कठिन काव्य का प्रेत

केशवदास को निम्नलिखित कारणों से 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा जाता है—

1. **अलंकारप्रियता**—अलंकारों के कारण केशव के काव्य की क्लिष्टता द्रष्टव्य है—

चंडकर कलित, बलित बर सदागति,
कंदमूल फल फूल दलनि कौ नासु है।
कीच बीच बचें मीन, व्याल बिल कोल कुल,
द्विरद दरीन, दिनकृत को बिलासु है।

अपने अलंकारों से चमत्कार उत्पन्न करने में केशव को परम आनन्द आता है। इस कारण भी उनका काव्य क्लिष्टता के समीप पहुँच गया है। सन्देह अलंकार का वैचित्र्य यदि रूप, वर्ण्य, धर्म आदि के साम्य पर आधारित हो तो सौन्दर्य की सृष्टि करता है, परन्तु यहाँ सन्देह का साम्य केवल शब्द-वैचित्र्य पर आश्रित है; अतः प्रस्तुत श्लेष-पुष्ट सन्देह केवल दिमागी कसरत भर है।

वे सादृश्य अथवा कल्पना के बल पर श्लेष का आलम्बन लेकर कुछ-का-कुछ कर दिखाते हैं—

बेर भयानक-सी अति लगै,
अर्क समूह जहाँ जगमगै।
पांडव की प्रतिमा सम लेखो,
अर्जुन भीम महामति देखो।

यहाँ बेर (बेर का फल और काल), अर्क (आक का पौधा, सूर्य), अर्जुन (पाण्डु पुत्र, कुकुभ वृक्ष), भीम (पाण्डु पुत्र, अम्लबेतस वृक्ष) के दो-दो अर्थ हैं। उनको जाने बिना हम भाव तक नहीं पहुँच सकते।

निम्नलिखित पंक्तियों में यमक एवं अनुप्रास के अलंकार के प्रयोग से अर्थ-सौन्दर्य की हानि के साथ ही क्लिष्टता भी आ गई है—

जब जाति फटी दुःख की दुपटी,
कपटी न रहें जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी,
जग जीव जतीनि की छुटि तटी।
अघ ओघ की बैरी कटी विकटी,
निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्त नटी,
गुन धूर्जटी बन पंचवटी।

केशवदास ने व्यर्थ की अलंकार-योजना का आश्रय लेकर गोदावरी चित्रण में विरोधाभास उत्पन्न कर दिया है—

विषमय यह गोदावरी, अमृतन के फल देत।
केसव जीवनहार के, दुःख असेष हरि लेत॥

2. **संस्कृतनिष्ठ भाषा**—कविवर केशव संस्कृत भाषा की परम्परा में पले थे। इसलिए इनके काव्य के काठिन्य का एक कारण यह भी है। संस्कृत उनकी पारिवारिक भाषा थी। उन्हें परिस्थितिवश हिन्दी भाषा में काव्य-सृजन करना पड़ा। उन्होंने स्वयं कहा है—

भाषा बोलि न जानहीं जिन के कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्द मति तेहि कुल केशवदास॥

ऐसी परिस्थिति में केशवदास ने अपनी भाषा के स्तर को चाहे कितना ही गिराया हो, लेकिन संस्कृत के प्रभाव के कारण उसमें क्लिष्टता स्वाभाविक ही थी। भाषागत क्लिष्टता का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

रामचन्द्र पदपद्म वृंदारक वृंदाभिवंदनीयम्।
केसव अतिभूतनया लोचनं चंचरीकायते॥

3. **पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति**—केशव के हृदय में आचार्य-पद के लिए तीव्र लालसा थी। इसीलिए वे अपने काव्य में पाण्डित्य का प्रदर्शन करना चाहते थे। उन्होंने आचार्य-पद को पाने के लिए 'रामचन्द्रिका' में छन्दों का मेला-सा लगा दिया है—

रामचन्द्र की चन्द्रिका, बरनत हौं बहु छन्द।

'रामचन्द्रिका' की रचना करते समय उनके सामने रामकथा का गुणगान ही मुख्य कार्य न था। उनका मुख्य कार्य था, अलंकारों और छन्दों की विविधता का प्रदर्शन कर आचार्यत्व ग्रहण करना।

पाण्डित्य-प्रदर्शन की इस प्रवृत्ति को प्रकट करते हुए **डॉ० श्यामसुन्दरदास** लिखते हैं—"पाण्डित्य प्रदर्शन की रुचि, चमत्कार-विधान की प्रेरणा और शृंगार के नंगे दृश्यों को अंकित करने में आनन्द की भावना ने केशव को काव्योचित कल्पना, सहृदयता और मार्मिकता से काम नहीं लेने दिया।"

केशव द्वारा प्रयुक्त सबसे छोटा छन्द श्रीछन्द है, जिसका अर्थ लगाने में बुद्धि अक्षम है—

सी, धी। री, धी।

4. **भाव-गाम्भीर्य का अभाव**—भाषा और छन्दों को प्रयत्नपूर्वक समझते हुए पाठक को केशव के काव्य में इतना भाव-गाम्भीर्य नहीं मिलता है, जिसकी प्राप्ति के लिए उसने उनके काव्य का अध्ययन किया है। जैसा कि **पं० कृष्णशंकर शुक्ल** ने लिखा भी है—"क्लिष्टता यदि केशव में है तो इसी बात की कि उनमें उतना भाव-गाम्भीर्य नहीं कि लोग भाषा की क्लिष्टता को दूरकर जब भाव तक पहुँचें तो उन्हें अपना परिश्रम उतना न अखरे।"
5. **क्लिष्ट कल्पना**—अपने काव्य में केशव ने अनेक क्लिष्ट कल्पनाएँ की हैं। इसलिए उनका पाठक भाव के सामीप्य तक पहुँचने में असमर्थ-सा हो जाता है। एक स्थल पर स्मरण अलंकार द्वारा क्लिष्ट कल्पना की चरम-सीमा द्रष्टव्य है।

भाल के लाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीनें।
शासन पीय सवासन सीय हुतासन में ज्यों आसन कीनें।

6. **दरबारी कवि**—पूर्वविदित है कि, केशव एक दरबारी कवि थे। दरबार के अन्य विद्वानों के समक्ष अपना उच्चपद बनाए रखने की दृष्टि से उन्होंने चमत्कार से काम लिया। अलंकारों की भरमार, छन्दों की विविधता और पाण्डित्य के प्रदर्शन के कारण उनकी कविता केवल विद्वानों की वस्तु बन गई और जनसाधारण से दूर हो गई।

प्र.4. 'कविप्रिया' का परिचय देते हुए इससे अवतरित निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) देस, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, ससि, सागर, भूमि के भूषन, रितु सब काल॥
समझें बाला बालकहु, वर्णन पंथ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, छमिये कबि अपराध॥1॥

(ख) चरण धरत चिंता करत नींद न भावत शोर।
सुबरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥4॥

उत्तर 'कविप्रिया' परिचय—रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि केशवदास द्वारा रचित 'कविप्रिया' रीतिकाल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रीति-ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कवियों का मार्गदर्शक ग्रन्थ कहलाता है; क्योंकि इसमें कवि के कर्तव्यों तथा अलंकारों आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसी के साथ कवि ने अपने इस ग्रन्थ में अपने वंशानुक्रम का वर्णन भी किया है। इस दृष्टि से यह कवि का परिचय देनेवाला प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ सोलह 'प्रभावों' में विभाजित है। इस ग्रन्थ के सम्पादक लाला भगवानदीन ने इस पुस्तक का नामकरण 'प्रिया-प्रकाश' अर्थात् 'कविप्रिया' किया है।

पद्यांशों की व्याख्या

(क) देस, नगर, ... कबि अपराध॥1॥

शब्दार्थ—बाला = स्त्री; **बालकहु** = बालक भी; **छमिये** = क्षमा करें; **पंथ** = मार्ग, रहस्य।

संदर्भ—प्रस्तुत पद हिंदी साहित्य के रीतिकाल के रीतिबद्ध कवि केशवदास द्वारा रचित कविप्रिया के तीसरा प्रभाव से लिया गया है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद के द्वारा केशवदास क्षमा माँगते हुए इस 'कविप्रिया' को लिखने की आज्ञा माँगते हैं।

व्याख्या—इस पद में केशवदास जी कहते हैं कि मैंने इस कविप्रिया पुस्तक को इसलिए लिखा है कि जिससे कविता के अगाध रहस्य को स्त्री तथा बालक भी समझ सके, अतः कविगण मेरा अपराध क्षमा करें।

विशेष—कविप्रिया के टिप्पणीकार **लाला भगवानदीन** कहते हैं—जो बात केवल धुरंधर कवियों के समझने की वस्तु है, उसे इतनी सरल कर देना कि उसे स्त्रियाँ और बालक भी समझ सकें, वास्तव में अपराध है। इसके लिए केशव जी कवियों से क्षमा माँगते हैं। अब उस सरल बात को (टीका करके) और सरल कर देना तो महा अपराध ठहरेगा।

(ख) चरण धरत ..... व्यभिचारी चोर॥4॥

शब्दार्थ—चरण = पाँव, छंद का एक पद; **सुबरण** = सुंदर वर्ण; **सुनदर** = रंगवाली नायिका, सोना; **सोधत फिरत** = खोजा करता है।

संदर्भ—पूर्ववत।

प्रसंग—प्रस्तुत पद के माध्यम से कवि ने तीन अर्थ किए हैं। यह तीन अर्थ तीन लोगों (कवि, व्यभिचारी और चोर) के संदर्भ में हैं।

व्याख्या—कवि पक्ष—कवि कविता के प्रत्येक चरण को लिखते समय बहुत चिंतन करता है। उसे नींद और शोर नहीं सुहाता। कवि केवल 'सुबरण' अर्थात् रस के अनुकूल वर्ण को ढूँढता रहता है।

व्यभिचारी पक्ष—व्यभिचारी व्यक्ति बहुत सोच-विचारकर काम करता है। अन्य लोग सोते रहें और शोर न करें, ऐसी स्थिति उन्हें अपने अनुकूल लगती है। वह 'सुंदर रंग वाली' नायिका को खोजता रहता है।

चोर पक्ष—चोर खूब सोच-समझकर कदम रखता है। वह दबे पाँव चलता है जैसे कोई उसकी आहट न सुन सके। चोर को भी लोगों का सोते रहना पसंद है। कुछ भी शोर नहीं पसंद आता। वह 'सुबरन' अर्थात् सोना खोजता रहता है।

विशेष—इस छंद में सुंदर श्लेष अलंकार का वर्णन है।

प्र.5. बिहारी के काव्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं की विवेचना कीजिए। हिन्दी साहित्य में उनको क्या स्थान दिया गया है?

उत्तर

बिहारी का काव्य-सौष्ठव

गागर में सागर भरनेवाले रीतिकालीन कवि बिहारी एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने केवल एक ग्रन्थ लिखकर ही रीतिकाल में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। उनके द्वारा दोहे-जैसे छोटे छन्द में एकसाथ अनेक भावों को गूँथ दिया गया है। भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टिकोणों से उनका काव्य श्रेष्ठ है।

कविवर बिहारीलाल जयपुर-नरेश महाराजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। कहते हैं कि महाराजा जयसिंह ने दूसरा विवाह किया था। उसके पश्चात् वे अपनी नवोढा पत्नी के साथ विलास में मग्न रहने लगे थे और राज-काज का पूर्णतः त्याग कर चुके थे। बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखकर उनके पास भेजा—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल?

जब राजा जयसिंह ने उपर्युक्त दोहा पढ़ा तो वह बहुत प्रभावित हुए और बिहारी को सम्मान देकर अपने दरबार में बुला लिया। अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बिहारीलाल भक्ति और वैराग्य की ओर अग्रसर हो गए और दरबार का परित्याग करके वृन्दावन चले गए।

बिहारी की काव्यगत विशेषताएँ

भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष की दृष्टि से बिहारी के काव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

(अ) भाव-पक्ष की विशेषताएँ

1. **गागर में सागर**—कविश्रेष्ठ बिहारीलाल 'गागर में सागर' भरने के लिए सुप्रसिद्ध हैं। गागर में सागर का अभिप्राय है कि बिहारी ने कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कह दी है। वास्तव में इन्होंने 'दोहा' जैसे छोटे छन्द में एकसाथ विविध भाव भर दिए हैं; यथा—

   दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
   परति गाँठि दुरजन हियैं, दई, नई यह रीति?

2. **भक्ति एवं नीतिप्रधान रचनाएँ**—बिहारी ने शृंगारिक कवि होने पर भी भक्ति और नीति-सम्बन्धी अनेक दोहों की रचना की है। उन्होंने राधा-कृष्ण की स्तुति के अनेक दोहे प्रस्तुत किए हैं। कृष्ण के प्रति इन्होंने सख्य, दास्य और दैन्य आदि सभी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। कृष्ण को दिए गए इस उलाहने और व्यंग्य में उनका कौशल दृष्टव्य है—

   कब कौ टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाइ।
   तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक जग-बाइ॥

3. **शृंगार-वर्णन**—कविवर बिहारीलाल शृंगार रस के अद्वितीय कवि माने जाते हैं। इन्होंने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण किया है तो कहीं नायक-नायिका के मिलन-प्रसंगों, नायिका के अंगों, विविध मुद्राओं और विविध हाव-भावों का चित्रण अनुपम एवं मनोहारी ढंग से किया है। नख-शिख-वर्णन की परम्परा का पालन करते हुए बिहारी ने ऐसे अनेक रसपूर्ण दोहे लिखे हैं, जो इन्हें श्रेष्ठ शृंगारी कवि घोषित करते हैं; जैसे—

   कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
   भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सौं बात॥

4. **प्रकृति-चित्रण**—बिहारी ने शृंगार रस में प्रकृति के विविध मनोहारम चित्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भी प्रकृति का वर्णन किया है। मुख्यत: उन्होंने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन, आलंकारिक और उपदेशात्मक रूप में वर्णन किया है। ऐसे वर्णनों में सरसता सर्वत्र विद्यमान है; यथा—

   चुबतु स्वेद मकरन्द कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ।
   आवतु दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटोही बाइ॥

5. **नायिकाभेद-निरूपण**—बिहारीलाल ने अपने काव्य में विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का अपूर्व वर्णन किया है; जैसे-मुग्धा, प्रौढ़ा, स्वकीया, परकीया, कनिष्ठा, नवोढ़ा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका आदि।

6. **कल्पना की समाहार-शक्ति**—बिहारी के काव्य में कल्पना की समाहार-शक्ति विद्यमान है। दोहे जैसे छन्द में अधिक भावों को गूँथने के लिए इस गुण का होना आवश्यक है। संयोग-वियोग के प्रसंगों में बिहारी ने इस गुण का प्रयोग किया है। नायिका की चेतना और विनोदप्रियता का यह गुण निम्नलिखित दोहे में देखिए—

   बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
   सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहै नटि जाइ॥

7. **सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति**—बिहारी की दृष्टि से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथ्य भी बच नहीं पाया है। आन्तरिक सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में वे बहुत सफल हुए हैं। नायिका के झरोखे से झाँककर चले जाने का कितना स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है—

   सटपटाति सैं ससिमुखी, मुख घूँघट पटु ढाँकि।
   पावक-झर-सी झमकि कै, गई झरोखा झाँकि॥

8. **उक्ति-वैचित्र्य**—बिहारी की उक्तियों में वैचित्र्य है, जिससे उनके दोहों में अनुपम आकर्षण, सरलता एवं विलक्षण चमत्कार उत्पन्न हो गया है। ऐसे स्थलों पर अर्थगाम्भीर्य भी दृष्टिगत होता है; जैसे—

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परै, स्यामु हरत-दुति होइ॥

9. **बहुज्ञता**—बिहारी बहुज्ञ थे। उन्हें कवि होने के साथ-साथ ज्योतिष, दर्शन और गणित का भी भरपूर ज्ञान था। अपने उस ज्ञान का प्रयोग उन्होंने शृंगार रस के वर्णन में किया है। नायिका की बिन्दी, मुख पर तिलक के वर्णन में उनके ज्योतिष-ज्ञान का प्रयोग निम्नलिखित सोरठा छन्द में देखिए—

मंगल बिन्दु सुरंगु, मुख ससि केसर-आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन-जगत॥

10. **सूक्ति-प्रयोग**—बिहारी द्वारा नीति-सम्बन्धी सूक्तियों का प्रयोग भी प्रचुरता से किया गया है। स्वर्ण का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि लोग धतूरे को तो खाकर पागल होते हैं, लेकिन स्वर्ण को तो पाकर ही पागल हो जाते हैं—

कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाइ।
उहि खाए बौराय जगु, इहिं पाए बौराइ॥

(ब) कला-पक्ष की विशेषताएँ

1. **भाषा**—कविवर बिहारीलाल की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। इसमें पूर्वी हिन्दी, बुन्देलखण्डी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं का भी समावेश हुआ है। बिहारी शब्द-चयन में अद्वितीय हैं, मुहावरों और लोकोक्तियों की दृष्टि से उनका भाषा-प्रयोग अद्वितीय है।
2. **शैली**—बिहारी ने मुक्तक काव्य शैली को अपनाया है, जिसमें समास शैली का अनूठा योगदान है। इसीलिए 'दोहा' जैसे छन्द में उन्होंने अनेक भावों को भर दिया है।
3. **छन्द**—बिहारी को 'दोहा' छन्द ही प्रिय है। उनका सम्पूर्ण काव्य इसी छन्द में रचा गया है।
4. **अलंकार**—बिहारी अलंकारों के प्रयोग में दक्ष थे। उन्होंने छोटे-छोटे दोहों में अनेक अलंकारों को पिरो दिया है। उन्होंने श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति और अतिशयोक्ति का अत्यधिक प्रयोग किया है। श्लेष और सांगरूपक का एक उदाहरण देखिए—

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर।
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

बिहारी की रचना—महाकवि बिहारीलाल की केवल एक ही रचना है—'बिहारी सतसई' और इसमें भी केवल 700 दोहे हैं।

हिन्दी-साहित्य में स्थान

रीतिकालीन कवि बिहारी अपने ढंग के अद्वितीय और अप्रतिम कवि हैं। तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर उन्होंने जिस साहित्य का सृजन किया, वह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। सौन्दर्य-प्रेम के चित्रण, भक्ति तथा नीति के समन्वय, ज्योतिष-गणित-दर्शन के निरूपण एवं भाषा के लाक्षणिक एवं मधुर व्यंजक प्रयोग में बिहारी बेजोड़ हैं। भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से उनका काव्य श्रेष्ठ है। एक विद्वान् आलोचक ने सत्य लिखा है—यदि 'श्रीरामचरितमानस' एवं 'सूरसागर' भक्तों के गले का हार हैं तो 'बिहारी सतसई' 'रसिक-जन-मन-रंजक' है। वास्तव में बिहारी की सतसई रस का अपार सागर है, जिसे पढ़कर रसिक-जन अनोखे आनन्द का अनुभव करते हैं। ब्रजभाषा का यह श्रेष्ठ काव्य अमर है। इसीलिए इसे 'ब्रजभाषा का भूषण' कहा गया है—

ब्रजभाषा बरनी सबै, कविता बुद्धि विशाल।
सबकी भूषण सतसई, रची बिहारीलाल॥

प्र.6. 'रीतिकालीन कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए। (2021)

उत्तर

बिहारी की लोकप्रियता

पिछले एक हजार-वर्ष की काव्य-निधि में से यदि हम दस श्रेष्ठ ग्रन्थों को चुनना चाहें तो उसमें 'बिहारी सतसई' का नाम जरूर आएगा।

'बिहारी सतसई' में कुछ ऐसा प्रबल आकर्षण है कि इसकी आज तक अनेक टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। विद्वानों को एक-एक दोहे के अनेक अर्थ लगाने पर भी शान्ति नहीं होती; क्योंकि बिहारी ने अपनी गागर में जो सागर भर दिया है, उसको किसी के द्वारा पूर्णतया व्यक्त नहीं किया जा सका। सम्भवत: इसी आधार पर पं० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा था—"बिहारी के दोहों के अर्थ गंगा की विशाल जलधारा के समान हैं, जो शिव की जटाओं में तो समा गई थी, परन्तु उससे बाहर निकलते ही वह इतनी असीम और विस्तृत हो गई कि लम्बी चौड़ी धरती में भी सीमित न रह सकी।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी बिहारी की इस विशेषता को महत्त्व दिया है। उनके शब्दों में—"मुक्तक रचना ही सफलता के लिए भाषा की जिस समास-पद्धति और भावों की समाहारशक्ति की आवश्यकता रहती है, बिहारी में उसकी प्रचुरता पाई जाती है। थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक भाव प्रदर्शित करने की ऐसी योग्यता हिन्दी के किसी अन्य कवि में देखने को नहीं मिलती।"

बिहारी की लोकप्रियता के कारण

'बिहारी सतसई' का सम्यक् वर्णन करने पर पाठक को उसका रहस्य स्पष्ट हो जाता है एवं उसमें बिखरे हुए अनेक गुण उसको प्राप्त होते हैं। ये गुण ही 'बिहारी की सतसई' की लोकप्रियता का मुख्य कारण हैं।

(1) शृंगार रस—'बिहारी सतसई' की मूल प्रवृत्ति शृंगारी है। संयोगकाल की कोई ऐसी स्थिति नहीं, जो बिहारी की दृष्टि में ना आई हो। उन्होंने नखशिख, नायिकाभेद, मान, प्रवास आदि सभी विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। अन्य शृंगारी कवियों की अपेक्षा बिहारी द्वारा सौन्दर्य का व्यापक रूप ग्रहण किया गया है—

अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान॥

बिहारी ने शृंगार के दोनों रूपों का अत्यधिक आकर्षक वर्णन अपने काव्य में करके रसिकों के मनों को रस से आप्लावित कर दिया है। इन दोनों का वर्णन संक्षेप में निम्न प्रकार है—

(क) विप्रलम्भ शृंगार—विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद किए गए हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास-गमन और शाप या करुण स्थिति। 'सतसई' के विरह-वर्णन में विप्रलम्भ के इन चारों रूपों को स्थान मिला है। दर्शनजन्य पूर्वानुराग का एक चित्र देखिए—

हरि-छबि-जल जब तें परे, तब ते छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत बूढ़त तरत, रहत घरी लौं नैन॥

परन्तु बिहारी द्वारा प्रवास विप्रलम्भ को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। उन्होंने कामशास्त्र के अनुसार विरह की दस अवस्थाओं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण—का यथोचित वर्णन अपनी 'सतसई' में किया है। इस प्रकार उनके द्वारा विरह-वर्णन को शास्त्रीय ढाँचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी तत्कालीन परम्परा और मौलिक प्रतिभा के कारण बिहारी की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। उनका वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण और अत्यधिक ऊहात्मक है। वियोगावस्था में पहुँचते ही बिहारी की नायिका कभी अपने प्राण बचाने के लिए चन्द्रमा और समीर के सामने दौड़ती फिरती है। साँस लेती है तो कभी छह-सात हाथ इधर, कभी उधर खिसक जाती है। रोती है तो आँसू वक्षस्थल पर पड़ते ही भाप बनकर उड़ने लगते हैं। कोई उस पर गुलाब-जल छिड़क देता है तो वह बीच में ही सूख जाता है। वह कमजोर इतनी हो गई है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे देखना चाहे तो नहीं देख पाती। पड़ोसी भी उससे बहुत परेशान हैं। परन्तु 'सतसई' में वियोग का स्वाभाविक वर्णन भी है। नीचे के दोहे में शारीरिक दशा और मन की हलचल को किस स्वाभाविक और मार्मिकता से व्यक्त किया गया है—

जब-जब वै सुधि कीजियै, तब-तब सब सुधि जाँहिं।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखें लागति नाँहिं॥

(ख) संयोग शृंगार—बिहारी की नायिका क्षण-क्षण नवीनता को धारण करनेवाली है। उसका सौन्दर्य अलौकिक है—

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

'सतसई' में प्राय: सभी भावों का विवेचन किया गया है; परन्तु प्रधानता विलास-भावों की ही रही है—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे भौंहनु, हँसे, दैन कहै नटि जाइ॥

प्रेमपात्र को आकर्षित करने तथा उसमें प्रेम का आविर्भाव करने में रूप सर्वाधिक महत्त्व रखता है; अत: कवियों ने संयोग-वर्णन के अन्तर्गत रूप-वर्णन को विशेष महत्त्व दिया है। बिहारी द्वारा रूप-वर्णन के अन्तर्गत नखशिख-वर्णन, विभिन्न अलंकारों का वर्णन और सौन्दर्य के प्रभाव का वर्णन किया गया है। उनके नखशिख-वर्णन में नेत्रों को अधिक महत्त्व प्राप्त है। ऐसे स्थलों पर अलंकारों का चमत्कार भी प्रदर्शित किया गया है; यथा—

रस सिंगारु मंजन किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन॥

शरीर के स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ अलंकार और वस्त्रों का वर्णन भी बिहारी द्वारा किया गया है। इसमें बिहारी की प्रतिभा व सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति ने पाठक की कल्पना को भी कार्य करने के लिए विवश कर दिया है। श्वेत साड़ी में लिपटी नायिका के सौन्दर्य को देखिए—

सहज सेत पचतोरिया, पहरै अति छवि होति।
जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन जोति॥

इस प्रकार, 'सतसई' में संयोग के सभी पक्षों का चित्रण किया गया है। बिहारी के संयोग-वर्णन में रीतिकालीन परम्परा, फारसी की नाजुक खयाली और बिहारी की मनोवैज्ञानिक सूझ की सुन्दर त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

(2) शृंगार भक्ति और नीति का समन्वय—बिहारी की 'सतसई' केवल शृंगार से ही पूर्ण नहीं, वरन् उसमें भक्ति और नीति के भी पर्याप्त दोहे मिल जाते हैं और वे भी इस विशिष्टता के साथ कि उनमें भक्ति को शृंगारिक पुट दिया गया है। यही कारण है कि बिहारी अपनी 'सतसई' के प्रारम्भ में कृष्ण की स्तुति करने के स्थान पर राधिका की वन्दना करते हैं—

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरिक सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ॥

बिहारी के नीतिपूर्ण दोहे भी शुष्क उपदेश-कथन-मात्र नहीं, जिन्हें पढ़ने की इच्छा ही न हो, वरन् वे शक्कर-लपेटी कुनैन की गोली के समान हैं, जो सुविधा से खा ली जाती हैं और अपना पूर्ण प्रभाव भी दिखाती हैं। शक्कर का काम बिहारी ने शृंगार रस से लिया है। उनका शृंगार से परिपूर्ण निम्नलिखित दोहा जयसिंह के लिए किसी नीति-काव्य से कम प्रभावोत्पादक नहीं हुआ—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

शृंगार, भक्ति और नीति का ऐसा सुन्दर समन्वय प्राय: सभी कवियों में नहीं पाया जाता। 'सतसई' की यह विशेषता भी उसकी लोकप्रियता में सहायक हुई।

(3) श्रेष्ठ मुक्तककाव्य की विशेषताएँ—बिहारी में कल्पना की समाहार शक्ति तथा समास-पद्धति में अपनी वाणी को व्यक्त करने की पूर्ण सामर्थ्य है। बिहारी ने दोहे-जैसे छन्द में रसोत्पादन की पूर्ण सामग्री उपस्थिति करके अपनी सफलता का परिचय दिया है। बिहारी की समास-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके द्वारा दोहे के छोटे साँचे में सांगरूपकों का निर्वाह बहुत सुन्दर ढंग से किया है और पर्याय व्यापारों को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है कि वे जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं, वह भली-भाँति व्यक्त हो जाता है। एक उदाहरण देखिए—

खौरि-पनिच भ्रकुटी-धनुष, बधिकु समरु तजि कानि।
हनति तरुनु-मृग तिलक-सर, सुरक-भाल भरि-तानि॥

सिर पर लगी खौर प्रत्यंचा है, भृकुटी धनुष, तिलक बाण और सुरक भाल बनी है। चलानेवाला बधिक कामदेव मर्यादा का उल्लंघन करके, तानकर इनसे तरुण मृगों का वध कर रहा है। इस प्रकार एक ही दोहे में बाण चलाने का व्यापार, लक्ष्य-भेद एवं नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं का पूर्ण चित्रण किया गया है।

(4) प्रकृति-चित्रण—'सतसई' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि बिहारी का प्रकृति-पर्यवेक्षण अत्यन्त सूक्ष्म था। उन्होंने प्रकृति-सम्बन्धी कुछ चित्र तो ऐसे प्रस्तुत किए हैं, जो हिन्दी के आधुनिक काव्य की तुलना में भी कम शक्तिशाली नहीं होते। प्राचीन कवियों में सेनापति जैसे एकाध कवि को छोड़कर स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण नहीं पाया जाता; परन्तु बिहारी ने लोक की क्रीडा को चित्रित करने के उपरान्त प्रकृति में चलने वाली क्रीडा का भी वर्णन किया गया है—

रनित भृंग-घंटावली, झरति दान मधु नीर।
मंद-मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर॥

(5) अलंकार-योजना—'सतसई' रीतिकालीन रचना है, इसलिए उसमें बिहारी ने अपनी अलंकारप्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई है। रीतिकालीन प्रभाव के कारण बिहारी की कुछ रचनाएँ शुद्ध चमत्कार उत्पन्न करनेवाली हैं; परन्तु अनेक स्थलों पर अलंकार भावों के सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे स्थलों पर बिहारी ने अर्थ की रमणीयता का विशेष ध्यान रखा है। वस्तुत: 'सतसई' में अलंकार-योजना परतन्त्र रूप में अधिक हुई है, जहाँ अलंकार भावों के सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं और अर्थालंकार भावों को हृदयंगम कराने में विशेष सहायक होते हैं; अत: 'सतसई' में उनका विशेष प्रयोग बिहारी द्वारा किया है। साम्यमूलक, वैषम्यमूलक, शृंखलामूलक और न्यायमूलक चारों श्रेणियों के अर्थालंकारों के उदाहरण 'बिहारी-सतसई' में खोजे जा सकते हैं, किन्तु साम्यमूलक और वैषम्यमूलक अलंकार बिहारी को विशेष प्रिय थे। असंगति अलंकार का उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित्त प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हियैं, दई, नई यह रीति॥

यद्यपि 'सतसई' की रचना अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए नहीं की गई, फिर भी उसमें से अलंकारों के उदाहरण छाँटकर एक लक्षण-ग्रन्थ की रचना अवश्य की जा सकती है। इन अलंकारों ने जहाँ काव्य में चमत्कार उत्पन्न किया है, वहीं ये भावों के सहायक होकर भी आए हैं।

(6) दोहे के अनुरूप भाषा की सुगठितता—बिहारी की इस समास-पद्धति की सम्पूर्ण शक्ति उनकी भाषा के गठन और सामर्थ्य में है। उनके प्रत्येक दोहे का एक स्वतन्त्र लक्ष्य है। उसी तक पहुँचने का प्रयत्न उस दोहे में किया गया है। भावों की पुनरुक्ति उसमें कहीं नहीं है। मुक्तक-रचना में भाषा की जितनी भी विशेषताएँ होनी चाहिए, वे सभी बिहारी की भाषा में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती हैं। यही कारण है कि उनकी कविता के सामने किसी अन्य मुक्तक रचनाकार की रचना जँचती ही नहीं और सभी इस गुलदस्ते से अपनी भावभूमि को सजाना चाहते हैं। भाषा की समास-शक्ति को स्पष्ट करने के लिए 'सतसई' का निम्न उदाहरण पर्याप्त होगा, जिसमें नायक-नायिका की सम्पूर्ण चेष्टाएँ केवल आँखों-ही-आँखों में हुई हैं—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु ही सौं बात॥

(7) लोकरुचि—'बिहारी-सतसई' की लोकप्रियता का एक सबसे बड़ा कारण यह भी है कि बिहारी द्वारा इसमें लोकरुचि का सबसे अधिक ध्यान रखा गया है। सभी रुचियों के व्यक्ति इसमें से अपने भावों की सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। शृंगार, भक्ति, नीति, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, दर्शन सभी पक्ष इसमें पुष्ट हुए हैं। कहीं बिहारी एक दार्शनिक के रूप में नजर आते हैं तो कहीं ज्योतिष की पहेलियाँ सुलझाते हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं वैद्य बने नाड़ी-ज्ञान का परिचय देते हैं तो कहीं गणितज्ञ बन अंकों का मूल्यांकन करते हैं। कहीं वे पौराणिक हैं तो कहीं वैज्ञानिक। उनके इसी रूप पर मुग्ध होकर सभी रसिक आज भी 'सतसई' को बड़े चाव से पढ़ते हैं और अपनी रुचि के अनुकूल रसानुभूति प्राप्त करते हैं।

'बिहारी-सतसई' की इन्हीं विशेषताओं के कारण आज भी यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य का गौरव-ग्रन्थ बना हुआ है। 'बिहारी-सतसई' की प्रशंसा केवल भारतीयों द्वारा ही नहीं की गई है, वरन् विदेशी विद्वानों द्वारा भी मुक्त कण्ठ से इसका गुणगान किया गया है।

प्र.7. कविवर बिहारी की रचना 'सतसई' पर प्रकाश डालते हुए निम्नांकित पद्यांशों की व्याख्या कीजिए–

(क) यह जगु काचो कांच सो, मैं समुझ्यो निरधार।
प्रतिबिंबित लखिये जहाँ, एकै रूप अपार॥6॥

(ख) चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न स्नेह गम्भीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥9॥

उत्तर

कविवर बिहारी

बिहारीजी द्वारा रचित एकमात्र रचना सतसई (सप्तशती) है। इसमें 719 दोहे संकलित हैं। यह मुक्तक काव्य है। कतिपय दोहे संदिग्ध भी माने जाते हैं। सभी दोहे सुंदर और प्रशंसनीय हैं तथापि विचारपूर्वक सूक्ष्मता से देखने पर लगभग 200 दोहे अति उत्कृष्ट ठहरते हैं। 'सतसई' में इन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उस समय उत्तर भारत की एक सर्वमान्य तथा सर्व-कवि-सम्मानित ग्राह्य काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा ही प्रतिष्ठित थी। इसका प्रचार और प्रसार इतना हो चुका था कि इसमें अनेकरूपता का आ जाना सहज संभव था। बिहारी ने एकरूपता के साथ रखने का स्तुत्य प्रयास किया और इसे निश्चित साहित्यिक रूप में रख दिया। इससे ब्रजभाषा मँजकर निखर उठी। इस सतसई को तीन मुख्य भागों में विभाजित कर सकते

हैं—नीति विषयक, भक्ति और अध्यात्म भावपरक तथा शृंगारपरक। इनमें से शृंगारात्मक भाग अधिक है। अनेक कवियों और लेखकों ने 'सतसई' पर टीकाएँ लिखीं। जिनमें कुल 54 टीकाएँ मुख्य रूप से प्राप्त होती हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर जी की 'बिहारी रत्नाकर' नामक अंतिम टीका है, यह सर्वांग सुंदर है।

पद्यांशों की व्याख्या

(क) यह जगु .... रूप अपार॥6॥

शब्दार्थ—निरधार = जिसका सहारा न हो; **जगु** = संसार; **अपार** = अनेक; **प्रतिबिम्बित** = छाया, परछाई; **लखियतु** = दिखाई देता है।

संदर्भ—प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के प्रतिनिधि रीतिसिद्ध कवि बिहारी जी द्वारा विरचित है।

प्रसंग—इस दोहे में अद्वैतवाद वेदान्त के दर्शन होते हैं।

व्याख्या—कवि कहते हैं मैंने यह भली-भाँति समझ लिया है कि यह संसार कच्चे काँच के समान (नश्वर और क्षणभंगुर है) जहाँ एक ही रूप (ईश्वर) अनन्त रूपों में प्रतिबिम्बित होता है।

काव्य-सौन्दर्य—1. इस दोहे में अद्वैत वेदान्त, ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैवना प्रर:, सर्व खल्विदं ब्रह्म, एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति की प्रतिष्ठा काव्य रूप में की गई है।

2. उपमा तथा प्रमाण अलंकार।
3. सोरठा-छन्द।
4. शान्त रस।
5. ब्रजभाषा।

(ख) चिरजीवौ जोरी .... के बीर॥9॥

शब्दार्थ—चिरंजीवौ = चिरंजीवी हो; **जुरै** = जड़ा रहे, स्थापित रहे; **को घटि** = कौन, किससे कम है; **वृषभानुजा** = वृषभानु + जा = वृषभानु की पुत्री; वृषभ + अनुजा = बैल की छोटी बहन; **हलधर के बीर** = हल मूसल धारण करने वाले बलराम के भाई कृष्ण, हल को धारण करने वाला बैल जो गाय का भाई है।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—इस दोहे में गोपियों द्वारा विनोदपूर्ण परिहास शैली में राधा और कृष्ण की जोड़ी की उपयुक्तता सिद्ध की गई है।

व्याख्या—राधा और कृष्ण के गहन गम्भीर प्रेम को देख, कवि प्रेमी युगल के चिरंजीवी होने की कामना करता हुआ कहता है कि इन दोनों की जोड़ी दीर्घजीवी हो। भला इनमें परस्पर गम्भीर स्नेह कैसे न होगा? दोनों में एक दूसरे से कम कौन है? ये राधा नर श्रेष्ठ वृषभानु की पुत्री हैं तो ये कृष्ण पुरुष रत्न बलराम के भ्राता हैं।

द्वितीय अर्थ—राधा कृष्ण के प्रेम के प्रति उनकी सखियाँ परिहासपूर्वक कहती हैं कि उग्र प्रकृति वालों का प्रेम भला कैसे निभ सकेगा। यह जोड़ी चिरंजीवी हो। भला इन दोनों में गम्भीर स्नेह क्यों नहीं होगा। आखिर इन दोनों में से (स्वभाव की उग्रता में) कम ही कौन है? ये राधा वृषराशि के सूर्य में जन्मी है तो ये कृष्ण शेषावतार के भ्राता हैं।

तृतीय अर्थ—राधा कृष्ण की सखियाँ उन दोनों के गहन गम्भीर स्नेह पर परिहास करती हुई कहती हैं कि इन दोनों की जोड़ी तो गाय और बैल जैसे जोड़ी है। इनमें एक-दूसरे से कम ही कौन है? एक से एक बढ़कर ही हैं? देखो न। ये राधा यदि वृषभ अनुजा (बैल की बहन) गाय है तो ये कृष्ण भी तो हलधारी बैल के भ्राता (अत: बैल ही) हैं।

काव्य-सौन्दर्य—1. इस दोहे में शृंगार तथा हास्य रसों का संगम वृषभानुजा और हलधर के वीर शब्दों के प्रयोग में बिहारी का भाषाधिकार एवं उत्कृष्ट कोटि की कलात्मकता प्रसंशनीय है।

2. वृष राशि के सूर्य में जन्म लेने वाला व्यक्ति ज्योतिष के अनुसार उग्र स्वभाव वाला होता है।
3. श्लेष, वक्रोक्ति तथा अनुप्रास अलंकार।
4. शृंगार एवं हास्य रस।
5. बिहारी की समास शैली दर्शनीय है।
6. दोहा-छन्द।

प्र.8. महाकवि घनानन्द की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

घनानन्द की काव्यगत विशेषताएँ

रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा के आधार पर घनानन्द के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(अ) घनानन्द का अनुभूति अथवा भाव-पक्ष

1. **भावना का प्राधान्य**—घनानन्द के काव्य में भाव की प्रधान है। उन्होंने अपनी अभिव्यंजना शैली के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—

   लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
   मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत।

   उनका मानना है कि रीतिकाल के अन्य कवि प्रयत्नपूर्वक काव्य-रचना करते हैं, पर मेरी कविता की रचना भाव के बल पर होती है, स्वयं कविता ने ही मुझे कवि बना दिया। अर्थात् घनानन्द में बौद्धिकता के स्थान पर भावना की प्रधानता है।

2. **प्रेम का स्वरूप**—घनानन्द ने अन्य रीतिमुक्त कवियों के समान प्रेम के जिस मार्ग को अपनाया, वह बन्धनरहित, सरल और सीधा है, भक्तों के प्रेम के समान एकनिष्ठ गूढ़, और ऐकांतिक नहीं है। इनके प्रेम में सन्देह, वक्रता और चतुराई नाममात्र का भी नहीं है—

   अति सूधौ सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
   तहाँ साँचे चलें तजि आपुनपौ, झझकैं, कपटी जे निसाँक नहीं।

3. **एकपक्षीय प्रेम**—रीतिमुक्त काव्य के रचयिता 'प्रेम की पीर' का अनुभव करनेवाले रहे हैं। इनमें से लगभग प्रत्येक के साथ कोई-न-कोई प्रेम-प्रसंग जुड़ा हुआ है और उनकी प्रेमिकाएँ ही उनके काव्य की मूल प्रेरक-शक्ति रही हैं। इनका प्रेम एकपक्षीय था। घनानन्द ने अपने एकाकी प्रेम को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए लिखा है—

   चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
   प्रीति रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।

4. **सौन्दर्य-चित्रण**—घनानन्द द्वारा अपनी प्रेयसी के रूप और सौन्दर्य के कितने ही मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। प्रत्येक अंग के अलग-अलग चित्रण के स्थान पर सम्पूर्ण अंगों की रमणीयता ही उसमें दिखाई गई है। **डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना** के अनुसार—"घनानन्द के इन सौन्दर्य-चित्रों में सुजान का रूप, उसका लावण्य, उसका यौवन, उसकी छवि, उसकी कान्ति, उसकी अंग-दीप्ति आदि मानो साकार हो उठे हैं और ये सभी चित्र गत्यात्मक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं, जिनमें संश्लिष्टता है, मादकता है, अतिशयता है और सर्वाधिक भाव-प्रेषणीयता है।" संश्लिष्ट रूप-छवि का कितना मोहक चित्र घनानन्द ने प्रस्तुत किया है—

   झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके-दृग राजत काननि छ्वै।
   हँसि बोलनि में छवि-फूलन की, बरषा, उर ऊपर जाति है ह्वै।
   लट लोल कपोल कलोल करें, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
   अँग-अँग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।

5. **संयमित संयोग-वर्णन**—घनानन्द के काव्य में संयोग शृंगार रस का अंकन भी हुआ है, लेकिन संयोग के क्षण कम रहने के कारण इस प्रकार के चित्र कम ही हैं। जहाँ कहीं संयोग का चित्रण हुआ है, वहाँ उन्होंने अपनी प्रेयसी के शारीरिक अंगों तथा केलिक्रीडा के अनेक रूपों का चित्रण करने के स्थान पर प्रिय के रूप और गुणों का अनूठा वर्णन किया है। इसी कारण इनमें संयमितता, भावनाप्रधानता तथा पवित्रता अधिक है। एक विचित्रता यह भी है कि वे संयोग के समय भी वियोग की आशंका से ग्रस्त रहते हैं—

   यह कैसो संजोग न बूझि परै,
   कि वियोग न क्यौ हूँ बिछोहत है।

6. **वियोग-वर्णन**—घनानन्द के काव्य में वियोग का परिपाक धार्मिकता और सजीवता से हुआ है। उनके हृदय में व्याप्त वियोग की कल्पना सहज नहीं है, जो संयोग में भी वियोग की आशंका से त्रस्त रहता है। उनकी पीड़ा इतनी मार्मिक है कि

शीतल उपादान भी उन्हें दग्ध करते प्रतीत होते हैं; सोने के समय नींद नहीं आती, जगने पर जाग नहीं पाते, उन्हें औषधि भी विष के समान लगती है—

सुधा तें स्रवत विष, फूल में जमत सूल,
तम उगिलत चंदा, भई नई रीति है।
जल जारे अंग और राग कर सुरभंग,
सम्पति विपति पाग, बड़ी विपरीति है॥

घनानन्द ने वियोग के चार भेदों—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण के स्थान पर प्रेयसी के निर्मोह और निष्ठुरता का चित्रण अधिक किया है। उनमें ऊहात्मकता और विरह के अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों का अभाव है।

7. **भक्ति-भावना का निरूपण**—घनानन्द का हृदय लौकिक प्रेम में ही अनुरक्त था, लेकिन प्रिय की निष्ठुरता, निर्दयता और विश्वासघात ने उनके मन में ईश्वर के प्रति गहन आस्था को उत्पन्न कर दिया। उनकी सर्वाधिक रुचि माधुर्य-भाव की भक्ति की ओर रही है। लौकिक प्रेयसी का उत्कट प्रेम ही उनकी मधुरा-भक्ति में दिव्य भाव भरता हुआ प्रकट हुआ है। घनानन्द की भक्ति में अनन्य प्रेम और एकनिष्ठता का भाव भी अत्यधिक मात्रा में भरा हुआ है। घनानन्द चातक और मीन की भाँति अनन्य प्रेम को धारणकर भगवान् कृष्ण से निवेदन किया है—

तुम ही गति हौ, तुम ही मति हौ,
तुम ही पति हौ, अति दीनन की।

8. **घनानन्द और प्रकृति**—रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों के समान घनानन्द ने प्रकृति के आलम्बन रूप की अपेक्षा उसके उद्दीपन रूप का सरसता और मार्मिकता के साथ अंकन किया है। उनका अधिकांश काव्य विरह-काव्य है; अत: उनकी प्रकृति सदैव उनके विरह को उद्दीप्त करती है। इसका उदाहरण देखिए—

लहकि लहकि आवें ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकें हियौ,
गहकि गहकि गहबरनि गरै मचै॥

(ब) घनानन्द की अभिव्यक्ति अथवा कला-पक्ष

1. **भाषा**—लाक्षणिकता, वचनवक्रता, प्रांजलता तथा रमणीयता आदि गुण पूर्णरूप से घनानन्द की भाषा में प्रस्फुटित हुए हैं। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है—"भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव-भंगी (भंगिमा) के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नवीन गतिविधि का आभास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी।"

घनानन्द द्वारा बड़ी सुन्दरता और सफाई के साथ ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। ब्रजभाषा पर ऐसा अधिकार अन्य किसी कवि का दिखाई नहीं देता। इनकी भाषा में उक्ति-चमत्कार पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इनकी उक्तियाँ भावों की अभिव्यंजना में योग देती हैं—

(i) तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

(ii) मीत दौरी थकी न लगै ठिक ठौर, अमोही के मोह-मिठास ठगी।

2. **शब्द-शक्ति**—घनानन्द के काव्य में अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना की प्रधानता है। उन्होंने उक्ति-चमत्कार, भावों की सघनता तथा सरसता के लिए पर्याप्त लाक्षणिक प्रयोग किए हैं; यथा—

मीत सुजान अनीत की पाटी
इतै पैन जानिये कौनें पढ़ाई।

3. **अलंकार**—घनानन्द द्वारा रचित काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए हुआ है, अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति सौन्दर्यानुरागिता के प्रदर्शन के लिए नहीं। घनानन्द के काव्य में यमक, अनुप्रास, श्लेष,

दृष्टान्त, विभावना, परिकरांकुर, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, सन्देह, प्रतीप, व्यतिरेक, असंगति, अपह्नुति, तद्गुण, अनन्वय आदि कितने ही अलंकारों के उदाहरण खोजे जा सकते हैं। निम्नलिखित उदाहरण पढ़िए—

उपमा— चातक लौं चाहै घनआनन्द तिहारी ओर।

दृष्टांत— चंद चकोर की चाह करे,
घनआनन्द स्वाति पपीहा कों धावै।
त्यों त्रसरेनि के ऐन बसै रवि,
मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।।

असंगति— नैनन में लागै जाय, जागै करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोट-पोट है।

विभावना— नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड्यौ रहै।

प्रतीप— तेरे आगे चंद्रमा कलंक सो लगत है।

इस प्रकार घनानन्द की अलंकार-योजना का लक्ष्य चमत्कार एवं कौतूहल उत्पन्न करना नहीं है, अपितु उससे भावों के उत्कर्ष में सहायता मिली है और कविता स्वाभाविक रूप से प्रभावोत्पादक हो गई है।

4. **छन्द-विधान**—घनानन्द द्वारा अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है; जैसे—सवैया, सुमेर, दोहा, कवित्त, ताटंक, घनाक्षरी चौपाई आदि। इनमें से सवैया तथा कवित्त का प्रयोग घनानन्द के काव्य में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है। उनका सवैया तो हिन्दी-जगत् में सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

इस प्रकार घनानन्द के काव्य का अनुशीलन करने के उपरान्त उनके काव्य में विद्यमान भाव-पक्ष और कला-पक्ष सम्बन्धी अनेकानेक विशेषताओं की ओर संकेत किया जा सकता है। ये वही विशेषताएँ हैं, जो रीतिमुक्त काव्य में व्याप्त हो गई हैं।

इस प्रकार हिन्दी-काव्य की स्वच्छन्द प्रेमधारा में घनानन्द का शीर्षस्थ स्थान है।

प्र.9. घनानन्द द्वारा रचित पदों के ग्रन्थ का नाम लिखिए तथा इसका सम्पादन किस विद्वान् क्या नाम देकर किया है? निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) हीन भए जल मीन अधीन, कहा कछु मौ अकुलानि-समानै।
नीर-सनेही कों लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझे जड़, मीत के पानि परे को प्रमानै।
यह मन की जु दसा घनानन्द जीव को जिवनि जान ही जानै।।4।।

(ख) इस बाँट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसैं उराहनो दीजिये जू।
अब तो सब सीस चढ़ाय लई जु कछु मन भाई सु कीजियै जू।
घनानन्द जीवन प्रान सुजान तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमरियौ लीजियै जू।।7।।

उत्तर घनानन्द द्वारा रचित पदों के ग्रन्थ का नाम 'घनानन्द के पद' है, जिसके अन्तर्गत 'सुजानहित' के नाम से पद संकलित हैं। इस ग्रन्थ का सम्पादन विश्वनाथनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द ग्रन्थावली' के नाम से किया है।

पद्यांशों की व्याख्या

(क) हीन भए ..... ही जानै।।4।।

शब्दार्थ—हीन भए जल = जल से हीन होने पर, जल से बिछुड़ने पर; **मीन अधीन** = विवश मछली; **कहा** = क्या; **कछु** = कुछ; **मो** = मेरी; **अकुलानि** = व्याकुलता; **समानै** = समानता करती है; **लाय** = लगाकर; **है** = होकर; **जड़** = मूर्ख; **मीत** = मित्र; **पानि परै** = हाथों में पड़ना; **प्रमानै** = प्रमाणित करना; **जीव को जिवनि प्राणों** = को जिलाने वाली; **जान** = सुजान।

संदर्भ—प्रस्तुत सवैया रीतिकालीन कवि घनानन्द द्वारा रचित 'घनानन्द के पद' नामक काव्य से लिया गया है।

प्रसंग—प्रेम के दो आदर्श माने गये हैं—मछली और पतंग। प्रस्तुत पद में घनानन्द कहते हैं कि मेरा प्रेम मछली के प्रेम से भी महान है क्योंकि वह प्राण त्याग कर तो शांति प्राप्त कर लेती है लेकिन मैं प्रिय के वियोग में तड़प रहा हूँ। प्रेम की उच्चता प्राण देने में नहीं, जीवित रहते हुए पीड़ा सहने में है।

व्याख्या—मछली जल से अलग होकर विवश हो जाती है और प्राण त्याग देती है। इसी कारण उसके प्रेम को महान कहा जाता है लेकिन वास्तविकता यह है कि उसका प्रेम मेरे प्रेम से उच्च नहीं है। मेरी व्याकुलता विवशता और पीड़ा और विह्वलता की समानता उसकी विवशता और पीड़ा नहीं कर सकती। वह अपने प्रेमी जल के प्रेम पर कलंक लगाती है, जो अपने प्राण छोड़ देती है। यह उसकी निराशा के कारण होता है। सच तो यह है प्राण त्याग देना प्रेम के उच्च होने का सूचक नहीं है। प्रेम की उच्चता तो प्रिय के वियोग में पीड़ा सहते रहने में है। मछली तो मूर्ख है, वह प्रेम की सच्ची रीति को क्या जाने? वह प्रेमी के हाथों में पड़े रहने को ही प्रमाण मानती है। प्रिय के सामने रहते हुए ही प्रेम करने की उसमें सामर्थ्य है उसके वियोग में नहीं। लेकिन प्रेम की वास्तविक पहचान वियोग में ही होती है। घनानन्द कहते हैं कि प्रिय के बिना मेरे मन की जो दशा है, जिस विरह व्यथा की पीड़ा मुझे भोगनी पड़ रही है, उसे प्रिय सुजान! मेरे प्राणों के भी प्राण ही समझते हैं।

काव्य-सौन्दर्य—1. घनानन्द को अपने प्रेम पर गर्व है कि प्रेम का आदर्श रूप मछली का प्रेम भी उसकी समानता नहीं कर सकता।

2. व्यतिरेक, सभंगपद यमक, छेकानुप्रास अलंकार।
3. पदमैत्री तथा मुहावरों का प्रयोग।
4. वियोग शृंगार रस।
5. सवैया छन्द।
6. भाव-साम्य-ऊधो, विरही प्रेम करै। —सूरदास

(ख) इस बाँट ..... **लीजियै जू।।7।।**

शब्दार्थ—बाँट = भाग; **सुधि** = याद; **रावरे** = आपके; **भूलनि** = विस्मृत; **उराहनौ** = उलाहना; **सीस चढ़ाय लई** = स्वीकार करना; **तिहारियै** = तुम्हारी; **असीस** = आशीर्वाद; **हमरियौ** = हमारा।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के कठोर व्यवहार से दु:खी होकर भाग्य पर आश्रित होते हुए दु:ख को ही अपना सर्वस्व समझ लिया है।

व्याख्या—कवि कहता है यह तो भाग्य की बात है कि मैं वियोग वेदना में अपने प्रियतम की याद लगाये रहता हूँ। मेरे हिस्से में तो केवल सुजान को याद करना आया है और उसके हिस्से में मुझे भूल जाना। जब यह भाग्य की बात है तो मैं किसी को क्या उलाहना दूँ। कवि कहता है मेरे भाग्य में जो आया है, उसे मैंने स्वीकार कर लिया है; अत: हे सुजान! जो कुछ भी तुम्हारे मन को अच्छा लगता है, वही कार्य कीजिये। मुझे तुम्हारे से कोई शिकायत नहीं।

कवि घनानन्द कहते हैं, हे प्रिय सुजान! तुम मेरे जीवन के प्राण आधार हो, तुम्हारी स्मृति से ही मैंने अपना जीवन पूरा कर लिया है। तुमने तो मुझे ठुकरा दिया है परन्तु फिर भी मैं तुम्हें अपने हृदय से शुभाशीष देता हूँ।

काव्य-सौन्दर्य—1. प्रस्तुत पद में आदर्श प्रेम का चित्रण है।

2. मुहावरेदार भाषा का प्रयोग।
3. सवैया-छन्द।
4. वियोग शृंगार रस।
5. माधुर्य युक्त ब्रजभाषा।

❑

UNIT-VII

आधुनिककालीन कवि

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु द्वारा मातृभाषा के अतिरिक्त किस भाषा को सीखने पर बल दिया गया है?

उत्तर कविवर भारतेन्दु द्वारा मातृभाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा को भी सीखने पर बल दिया गया है। उनके अनुसार इस भाषा के ज्ञान के बिना व्यक्ति ज्ञान-विज्ञान की बातों को सीखने से वंचित रह सकता है। इसलिए, उन्होंने कहा है—

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन-के-हीन॥

प्र.2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। उनका मानना था कि यदि हम अपनी भाषा में विद्या देंगे तो जो भी उसे सुनेगा, उसे ही लाभ प्राप्त होगा। जबकि अन्य किसी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर यह लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। उन्होंने कहा है—

और एक अति लाभ यह, यामें प्रकट लखात।
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात॥
तेहि सुनि पावैं लाभ सब, बात सुनैं जो कोय।
यह गुन भाषा और महँ, कबहूँ नाहीं होय॥

प्र.3. भारतेन्दु द्वारा अपनी भक्ति-भावना में किस आराध्य को प्रधानता दी गई है?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित रचनाओं में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी श्रद्धा एवं भक्ति परिलक्षित होती है। उनकी भक्ति में राधा-तत्त्व की प्रधानता है। कवि ने सबसे पहले राधा के चरणों की वन्दना की—

जयति जयति श्रीराधिका, चरण युगल करि नेम।
जाकि छटा प्रकाश तें, पावत पामर प्रेम॥

एक सच्चे भक्त की दीनता, सरलता और विनय उनके भक्ति-पदों में स्पष्ट दिखाई देती है।

प्र.4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश के विकास के लिए किस बात की आवश्यकता पर बल दिया है?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश के विकास के लिए मातृभाषा के विकास की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया है। उनका मानना है कि मातृभाषा की उन्नति के बिना देश का विकास असम्भव है।

प्र.5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अपने मातृभाषा-प्रेम-सम्बन्धी दोहों में कौन-सी समस्या पर चिन्ता व्यक्त की गई है?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अपने मातृभाषा-प्रेम-सम्बन्धी दोहों में इस समस्या पर चिन्ता व्यक्त की गई है कि हमारा देश विभिन्न प्रान्तों, मत-मतान्तरों में विभाजित है। यहाँ विविध मतों को माननेवाले विभिन्न भाषा-भाषी लोग निवास करते हैं। लेकिन ये प्रान्त, धर्म (मत) और भाषा के नाम पर आपस में लड़ते रहते हैं—

भारत में सब भिन्न अति, ताही सों उत्पात।
विविध देस मतहू विविध, भाषा विविध लखात॥

प्र.6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित रचनाएँ बताइए।

उत्तर भारतेन्दु जी की श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित रचनाओं के नाम हैं—'प्रेम-तरंग', 'प्रेम माधुरी', 'प्रेमाश्रु-वर्षण', 'प्रेम-सरोवर', 'दानलीला', 'कृष्ण-चरित्र'। ये भक्ति तथा दिव्य प्रेम की रचनाएँ हैं। इन सभी रचनाओं में श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गुणगान किया गया है।

प्र.7. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित मुख्य नाटकों के नाम उल्लेख कीजिए।

उत्तर महाकवि भारतेन्दुजी के मुख्य नाटकों के नाम हैं—'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'नीलदेवी', 'भारत-दुर्दशा' तथा 'अंधेर नगरी' आदि।

प्र.8. जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' का कथानक किस दर्शन पर आधारित है?

उत्तर जयशंकर प्रसाद ने वेद, पुराण, उपनिषद्, शैवागम आदि के कथासूत्र लेकर 'कामायनी' के कथानक की रचना की है। इसमें अध्यात्म एवं विभिन्न दर्शनों का रूप स्पष्ट झलकता है।

प्र.9. श्रद्धा के शारीरिक सौष्ठव का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर श्रद्धा अत्यन्त गौरवर्ण और घने, काले, घुँघराले बालों वाली रूपवती युवती है। उसके खुले केश उसके मुखमंडल को चारों ओर से ढके किए हुए हैं। मनु को उसका मुख ऐसा लगता है, मानो वह चाँदनी से लिपटा हुआ बादल का कोई छोटा-सा टुकड़ा हो। श्रद्धा का शरीर साल के छोटे-से वृक्ष के समान अत्यन्त सुडौल और लम्बा है। उसके शरीर से निकली सुगन्ध समस्त वातावरण को उसी प्रकार मादक बना रही है, जिस प्रकार वसन्त की सुगन्धित मन्द-मन्द बहने वाली वायु वातावरण को मादक बना देती है।

प्र.10. कामायनी की श्रद्धा की वेशभूषा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर श्रद्धा गान्धार देश की भेड़ों के नीले रोमवाले चर्म के वस्त्र धारण किए हुए है। उसने जो वस्त्र पहना है, वह सामने से खुला हुआ है और उसके भीतर से उसके कोमल अंग इस प्रकार झाँक रहे हैं, मानो मेघवन के बीच गुलाबी रंग के फूल खिले हों।

प्र.11. श्रद्धा ने चंचल मन का आलस्य किसे और क्यों कहा है?

उत्तर श्रद्धा ने मनु को मन का आलस्य कहा है, क्योंकि वे जीवन से हताश और निराश से बैठे थे। उनके मन में जीवन के प्रति कोई उत्साह या जिजीविषा न रह गई थी। इसलिए वे अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में निष्क्रिय होकर मौन धारण किए बैठे थे। उनकी इस स्थिति को देखकर प्रतीत होता था कि जिस मन को चंचल कहा गया है, वह आज आलस्य के वशीभूत होकर अकर्मण्य-सा पड़ा हुआ है। वह अपनी चंचलता त्यागकर मौन धारण किए बैठा है।

प्र.12. कवि 'वर दे, वीणावादिनी वर दे!' कविता में माँ सरस्वती से क्या वरदान माँगता है?

उत्तर निरालाजी 'वर दे, वीणावादिनी वर दे!' कविता में माँ सरस्वती से यह वरदान माँगते हैं कि वह प्रत्येक भारतीय के हृदय में स्वतन्त्रता की अमर ज्योति प्रज्वलित कर दे, जिससे भारतीय युवा एक साथ एक स्वर से क्रान्ति का गम्भीर गर्जन कर उठें।

प्र.13. महाकवि निराला माँ सरस्वती से किस कलुष-भेद के तम को हरने की विनती करते हैं?

उत्तर महाकवि निरालाजी माँ सरस्वती से भारतीयों के मन में व्याप्त छुआछूत, भेदभाव और पारस्परिक विद्वेष आदि के कालुष्य को मिटाकर ज्ञान के प्रकाश द्वारा इस तम (अन्धकार) को हरने की विनती करते हैं।

प्र.14. 'तुलसीदास' कविता के प्रतिपाद्य को समझाइए।

उत्तर निरालाजी ने अपनी कविता 'तुलसीदास' में तुलसीदासकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक दशाओं का संक्षिप्त वर्णन करके मुगलों की क्रूरता का यथार्थ चित्रण किया है। मुगलों ने प्राचीन आर्य संस्कृति को किस प्रकार कुचला, इसके नग्न चित्रण के साथ-साथ अपने मन की शोभा को भी अभिव्यक्त किया है। निराला ने कविता में भक्ति-आन्दोलन के उदय के कारणों पर भी प्रकाश डाला है।

प्र.15. 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में कवि की किस प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है?

उत्तर 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में कवि निरालाजी की प्रगतिवादी प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है; क्योंकि इसमें कवि ने श्रमिक वर्ग की दीन-दशा का वर्णन करने के साथ-साथ उस व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी प्रकट किया है, जिसके चलते श्रमिक वर्ग को विषम परिस्थितियों में भी आजीविका कमाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

प्र.16. सुमित्रानन्दन पन्त की साहित्यिक उपलब्धियों को संक्षेप में बताइए।

उत्तर कविवर सुमित्रानन्दन पन्त को 'छायावादी काव्य-प्रवर्तकों में से एक माना जाता है। इन्होंने हिन्दी-कविता को नवीन रूप तथा विचार-सम्पदाओं से समृद्ध किया।

प्र.17. पन्त की दार्शनिक काव्य-रचनाएँ बताइए।

उत्तर पन्त की दार्शनिक काव्य-रचनाएँ हैं—'उत्तरा', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'स्वर्णधूलि', गीत—हंस एवं पतझर'।

प्र.18. प्रकृति के माध्यम से कवि ने 'मौन-निमन्त्रण' कविता में किसका चित्रण किया है?

उत्तर प्रकृति के माध्यम से कवि ने 'मौन-निमन्त्रण' कविता में संसार को संचालित करनेवाली रहस्यमयी सत्ता के संसार के कण-कण में व्याप्त होने का मनोहारी चित्रण किया है।

प्र.19. पन्त के अनुसार प्रथम रश्मि के आगमन को सबसे पहले किसने पहचाना?

उत्तर पन्त के अनुसार, प्रथम रश्मि के आगमन को सबसे पहले कोयल ने पहचाना और फिर उसने प्रथम रश्मि के लिए अपनी कुहुक के रूप में स्वागत गान गाया।

प्र.20. 'यह धरती कितना देती है!' कविता में कवि को किसका कौन-सा महत्त्व समझ में आया?

उत्तर 'यह धरती कितना देती है!' कविता में कवि को धरती माता का महत्त्व समझ में आया। वास्तव में यह धरती रत्नों को उत्पन्न करनेवाली है। हमें इसमें सर्वत्र सच्ची समता, क्षमता और ममता के दाने बोने हैं, जिससे सर्वत्र मानवता की सुनहली फसलें उग सकें।

प्र.21. महादेवी वर्मा ने किन पत्रिकाओं का सम्पादन किया था।

उत्तर महादेवी वर्मा ने 'चाँद' एवं 'साहित्यकार' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया था।

प्र.22. महादेवी वर्मा को 'सेकसरिया पुरस्कार' कब प्राप्त हुआ था?

उत्तर सन् 1944 ई० में महादेवी वर्मा को 'सेकसरिया पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।

प्र.23. महादेवी वर्मा को 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' कब प्रदान किया गया?

उत्तर सन् 1944 ई० में महादेवी वर्मा को 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया था।

प्र.24. महादेवी वर्मा को 'पद्म-विभूषण' की उपाधि कब मिली?

उत्तर महादेवी वर्मा को 'पद्म-विभूषण' की उपाधि सन् 1956 ई० में प्राप्त हुई।

प्र.25. 'दूर तुमसे अखण्ड सुहागिनी भी हूँ!' पंक्ति के माध्यम से कवयित्री ने क्या कहा है?

उत्तर 'दूर तुमसे अखण्ड सुहागिनी भी हूँ!' पंक्ति के माध्यम से कवयित्री ने कहा है कि भले ही वह अपने अदृष्ट प्रियतम से दूर रहें, लेकिन उसके साथ उनका नाम जुड़े रहना ही पर्याप्त है। इससे कम-से-कम वह अखण्ड सौभाग्यवती तो कहला सकेंगी।

प्र.26. 'फिर विकल हैं प्राण मेरे' गीत का परिचय संक्षेप में लिखिए।

उत्तर 'फिर विकल है प्राण मेरे' गीत सन् 1936 ई० में प्रकाशित महादेवी वर्मा के काव्य-संग्रह 'सान्ध्य गीत' में संकलित है। इस गीत की गणना उनके श्रेष्ठ गीतों में होती है। इस गीत में उन्होंने अपने अदृष्ट प्रियतम से मिलने की तड़प को व्यक्त किया है। वे अपने प्रियतम से मिलने के लिए सभी सीमाएँ अथवा वर्जनाएँ तोड़ देना चाहती हैं।

प्र.27. महादेवी वर्मा के गीत के अनुसार शाप वरदान का बन्धन कैसे बन गया है?

उत्तर महादेवी वर्मा द्वारा रचित गीत 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' के अनुसार शाप भी वरदान का बन्धन बन गया है। क्योंकि भले ही किसी के बन्धन में बँधना शाप के समान हो, लेकिन वह बन्धन प्रियतम के स्नेह का हो तो वह वरदान बन जाता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिन्दी साहित्य में क्या योगदान है? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी-साहित्य में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। भारतेन्दु जी रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को त्यागकर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। आधुनिक काल का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से त्यागकर ही माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में विख्यात

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देश की पराधीनता, गरीबी, शासकों के अमानवीय शोषण के अंकन को ही अपने साहित्य का प्रमुख लक्ष्य बनाया। उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में भी अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जी का बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उनके द्वारा 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कालवचनसुधा और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया गया। वे एक उत्कृष्ट कवि, जागरूक पत्रकार, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अतिरिक्त वे लेखक, संपादक, कवि, निबंधकार एवं कुशल वक्ता भी थे। उन्होंने मात्र चौतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकार्य पथदर्शक बन गया।

भारतेन्दु जी ने सच्चे युग-चेता कवि जिन्होंने जन-जीवन के मर्म को परखा और काव्य-वाणी प्रदान की, वहाँ उसके उद्धार और कल्याण के लिए मार्ग-दर्शन भी दिया। उनकी वाणी में देश की वाणी गूँजती थी। वह हृदय से सच्चे भक्त, स्वभाव से रसिक और साधना की दृष्टि से सफल, सजग एवं युग-प्रतिष्ठापक कवि-कलाकार थे। हिन्दी-भाषा के प्रचार और काव्य में समन्वयवादी दृष्टि से उनके महत्व को कभी नहीं भुलाया जा सकता। युग और जीवन की आन्तरिक स्थिति के अनुरूप आपने जहाँ कविता के भावपक्ष को विस्तृत किया और उसमें जन-जीवन की ध्वनि को गुंजित किया, वहाँ कलापक्ष की दृष्टि से भी अनेक नूतन प्रयोग कर विविध काव्य-रूपों को गति प्रदान की। निःसंदेह वह सच्चे समाज और राष्ट्र के प्रतिनिधि कवि थे। हिन्दी-साहित्य की प्रत्येक विधा को छूकर आपने उसे जीवन-शक्ति दी।

प्र.2. साहित्यकार के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

उत्तर

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। ये कवि, सम्पादक, नाटककार, निबन्धकार आदि के रूप में सुप्रसिद्ध जाते हैं। नाटक एवं कविता के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा का सर्वाधिक विकास हुआ। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर देश के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया।

भारतेन्दु जी अनेक भारतीय भाषाओं में कविता करते थे, लेकिन ब्रजभाषा पर इनका विशिष्ट अधिकार था। ब्रजभाषा में इन्होंने अधिकतर शृंगारिक रचनाएँ की हैं। इनके द्वारा लिखित प्रेम के विषय पर जो कविताएँ है, उनके सात संग्रह प्रकाशित हुए। इन के नाम 'प्रेमाश्रु-वर्षण', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-फुलवारी', 'प्रेम-प्रलाप', 'प्रेम-मालिका', 'प्रेम-तरंग' एवं 'प्रेम-सरोवर' हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी-साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया। इन्होंने मात्र 18 वर्ष की अवस्था में 'कवि-वचनसुधा' नामक पत्रिका का सम्पादन एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया और तत्कालीन कवियों का पथ-प्रदर्शन करने लगे। पाँच वर्ष के पश्चात् इन्होंने दूसरी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का सम्पादन तथा प्रकाशन शुरू किया। भारतेन्दुजी नौ वर्ष की अल्पायु से ही कविताएँ करने लगे थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के हृदय में अपनी मातृभाषा के प्रति अटूट प्रेम था। इन्होंने हिन्दी को तत्कालीन विद्यालयों में स्थान दिलवाने का प्रयास किया और अपने सहयोगी कवि एवं लेखकों से आग्रहपूर्वक लिखवाकर तथा स्वयं लिखकर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया। इन्हें हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है।

प्र.3. छायावाद से आप क्या समझते हैं? इसकी परिभाषा एवं इसके जनक के विषय में लिखिए।

उत्तर

छायावाद का अर्थ एवं परिभाषा

छायावाद का अर्थ उस नवीन काव्यधारा से है, जिसमें परम्परागत मान्यताओं की अपेक्षा करके प्रेम और सौन्दर्य के गीत नवीन शैली में लिखे गए तथा जिसमें लाक्षणिकता, कल्पना, भावुकता, चित्रात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता आदि की प्रधानता थी। **प्रो० विनयमोहन शर्मा** ने छायावाद को एक काव्य-शैली माना है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, "परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की परमात्मा में, यही छायावाद है।"

प्रसाद के अनुसार में—"वेदना और स्वानुभूति से युक्त काव्य छायावाद है।"

महादेवी वर्मा का मानना है—"छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद है।"

विद्वान छायावाद और रहस्यवाद को एक ही मानते हैं। **डॉ० रामविलास शर्मा** इन दोनों का अन्तर मिटाते हुए लिखते हैं—"हिन्दी की छायावादी कविता की व्याख्या करने के लिए 'छाया' से लड़ना आवश्यक नहीं। इसकी न्यूनाधिक विशेषताएँ वही हैं, जो अन्य भाषाओं की रोमाण्टिक कविताओं की हैं—रहस्यवाद, सांस्कृतिक जागरण, नए छन्द, प्रकृति पूजा, नारी की नवीन प्रतिष्ठा, नए प्रतीक आदि।"

छायावाद को स्वच्छन्दतावादी और रोमाण्टिक कविता भी कहा जाता है।

छायावाद के जनक

महाकवि जयशंकरप्रसाद को छायावाद का जनक माना जाता है। क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने ही अपने काव्य में छायावादी विशेषताओं को स्थान दिया था। इस दृष्टि से उनके 'लहर', 'झरना', 'आँसू' और 'कामायनी' काव्य विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। **प्रो० महेन्द्र रायजादा** के अनुसार, "प्रसाद की काव्य-वाटिका का शृंगार, सूक्ष्म कल्पना के बहुरंगी सुमनों की अलौकिक रूप-मधुरिमा से हुआ है। उन्होंने छायावादी काव्यधारा का पोषण कर उसे शालीनता, गम्भीरता एवं प्रौढ़ता प्रदान की। अपनी विशिष्ट कल्पना-शक्ति, नूतन अभिव्यक्ति एवं मौलिक प्रतीक-विधान आदि के कारण प्रसादजी सहज रूप से ही छायावादी कवियों में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं।"

प्र.4. छायावाद की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए एवं प्रसाद के काव्य में पाई जाने वाली किसी एक विशेषता का उदाहरण सहित परिचय दीजिए।

उत्तर हिन्दी-साहित्य में छायावादी कविता का विशेष स्थान है। उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

कलापक्षीय विशेषताएँ—1. प्रतीकात्मक शैली, 2. नवीन अलंकारों का प्रयोग, 3. नवीन छन्द का प्रयोग, 4. मूर्त में अमूर्त तथा अमूर्त में मूर्त की भावना, 5. भाषा में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता।

भावपक्षीय विशेषताएँ—1. सौन्दर्य-चित्रण, 2. प्रेम-भावना का प्राचुर्य, 3. मानवतावादी दृष्टिकोण, 4. व्यक्तिवाद की प्रधानता, 5. शृंगारप्रियता, 6. प्रकृति पर चेतनता का आरोप, 7. वेदना और निराशा का स्वर, 8. राष्ट्र-प्रेम, 9. नारी-महत्त्व का प्रतिपादन, 10. तत्त्व-चिन्तन की भावना, 11. आत्माभिव्यक्ति, 12. बौद्धिकता, 13. कल्पना की प्रधानता, 14. रहस्य-भावना।

वेदना और निराशा का स्वर—जयशंकर प्रसादजी के छायावादी काव्य में वेदना और निराशा का स्वर सुनाई देता है। 'आँसू' तो प्रसाद जी के असफल प्रेम की गाथा है ही, जिसमें वेदना स्थान-स्थान पर परिलक्षित है। ऐसा लगता है, मानो उनका जीवन पीड़ा का साकार रूप बन गया हो। उन्हें संसार में अपना कोई नहीं दिखाई देता है, अन्त में दुखी होकर वे निराशा और कराह की मार्मिक टीस के साथ कह उठते हैं—

विकल वेदना फिर आई, मेरे चौदह भवन में।
सुख कभी न दिया दिखाई, विश्राम कहाँ जीवन में।

प्र.5. निराला की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर भाषा के क्षेत्र में निराला का व्यक्तित्व अत्यन्त स्वतन्त्र और स्वच्छन्द है। निरालाजी ने विभिन्न भाषाओं से शब्द-ग्रहण करके अपनी भाषा को समृद्ध, विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण बनाया है। उनके काव्य में एक ओर सरस, सरल, व्यावहारिक भाषा का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़ एवं परिष्कृत भाषा का प्रयोग भी दृष्टिगत है। उनकी भाषा में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

सरल, सरस भाषा—निराला के काव्य में अनेक स्थलों पर सरल और सरस भाषा का प्रयोग हुआ है। **'अणिमा'** की कविताओं में इसी प्रकार का प्रयोग किया गया है। ऐसे स्थलों पर लोकोक्तियों, मुहावरों और सरल लाक्षणिक प्रयोगों का स्वाभाविक प्रयोग दिखाई देता है। 'कुकुरमुत्ता' और 'नए पत्ते' की अधिकतर रचनाओं में भी सरल भाषा उपलब्ध है। **'वह तोड़ती पत्थर'** में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है—

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

इसके अतिरिक्त **संस्कृतनिष्ठ** साहित्यिक भाषा, **समासबहुला** क्लिष्ट भाषा और **मिश्रित** भाषा का भी प्रयोग उन्होंने किया है।

प्र.6. मौन-निमन्त्रण कविता के प्रतिपाद्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

मौन-निमन्त्रण का प्रतिपाद्य

सुमित्रानन्दन पन्त की 'मौन-निमन्त्रण' कविता श्रेष्ठ छायावादी कविताओं में से एक है। कवि ने इस कविता में संसार को संचालित करनेवाली रहस्यमयी सत्ता का आकर्षक वर्णन किया है। कवि निस्तब्ध रात्रि में चारों ओर खिली चाँदनी को अबोध बालक के समान अत्यधिक आश्चर्य की दृष्टि से देखता है। उसे लगता है कि आसमान में झिलमिलाते तारे उसे मौन-निमन्त्रण देकर समझाते हैं कि कोई शक्ति है, जो सम्पूर्ण संसार के निद्रा में डूबे होने पर भी उन तारों में रोशनी भरती है। इसी तरह सघन काले मेघों के बीच

जब बादल गरजता है तो कवि को कोई रहस्यमयी सत्ता यह संकेत करती दिखाई देती है कि शून्य आकाश में जलरूपी सरसता और गर्जनरूपी स्वर में सजीवता का-सा संचार करनेवाली कोई अदृश्य शक्ति तो अवश्य है।

प्रकृति-वर्णन के माध्यम से पन्त जी बताते हैं कि वसन्त ऋतु में जब सम्पूर्ण धरती नवयौवना की भाँति मनोहारी रूप धारण करती है और फूलों पर भौंरे गुंजार करने लगते हैं, लेकिन दूसरी ओर उसे देखकर विरहीजन आह भरने लगते हैं, तब उन्हें लगता है कि फूलों की सुगन्ध के माध्यम से उन्हें कोई अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

जब व्याकुल पवन सागर की लहरों को मथकर उसे बुलबुलों से भर देता है और अगले ही पल उन्हें स्वयं ही चारों ओर बिखेरकर नष्ट कर देता है, तब कवि को लगता है कि कोई रहस्यमयी सत्ता अवश्य विद्यमान है, जो बुलबुलों की भाँति पहले सृष्टि का रचना करती है और फिर वही उसका संहार कर देती है। कवि बताता है कि प्रकृति का यह मौन-निमन्त्रण उसे यह समझाने के लिए है कि जीवन बुलबुलों की भाँति क्षणभंगुर है। मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है, इस सृष्टि का संचालन करनेवाली सत्ता कोई और ही है।

प्र.7. महादेवी वर्मा के विरह की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर आधुनिक हिन्दी में महादेवी की विरह-भावना अपनी मार्मिक अनुभूतियों तथा पीड़ा की गहनता के कारण सुप्रसिद्ध रही है। इसीलिए महादेवी को 'विरह की पीड़ा की कवयित्री' कहा जाता है।

महादेवी के विरह में वेदना और करुणा की गहन टीस अभिव्यक्त हुई है। इस टीस की अपनी विशेषता है। यह एक स्वाभाविक टीस है, जो उनकी रचनाओं के शब्द-शब्द में प्रवाहित होती परिलक्षित होती है। अतिशय भावुकता ने इस पीड़ा को और भी गहन बना दिया है।

महादेवी की विरह-भावना में उनकी वैयक्तिक पीड़ा समष्टि की पीड़ा बन गई है। यह इतनी उदात्त हो उठी है कि यह प्रकृति में व्याप्त प्राण-चेतना की पीड़ा बन गई है। यहीं इसमें रहस्यवाद का आरोपण हो गया है और यह जीवात्मा की परमात्मा के प्रति आकुलता के अर्थ में भी परिपूर्ण लगती है। इस प्रकार महादेवी की विरह-भावना में पीड़ा, रहस्यात्मकता, करुणा, वेदना, भावुकता दार्शनिकता और गहन अनुभूतियों की विशेषताएँ हैं। यह विरह-भाव स्वाभाविक है और हृदय की गहराइयों से उत्पन्न हो रहा है।

प्र.8. महादेवी वर्मा और मीरा की विरह-वेदना का तुलनात्मक परिचय दीजिए।

उत्तर कवियित्री महादेवी वर्मा और कृष्णभक्त मीरा दोनों के जीवन-काल में लगभग पाँच सौ वर्ष का अन्तर है। दोनों कवयित्रियों की परिस्थितियाँ और वैयक्तिक जीवन की विसंगतियाँ-मानसिक यातना, पति-वियोग (क्रमशः परित्याग और अकाल वैधव्य) की व्यथा, एकाकीपन, अपनी कुण्ठाओं का उन्नयनीकरण आदि भी लगभग एक-सी हैं। दोनों ने ही एक ओर यदि सामाजिक-पारिवारिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है तो दूसरी ओर भावुकता, करुणा, कल्पना, अवसाद, व्यथा आदि को काव्य द्वारा ही सन्तुष्ट या मुखरित किया है। फलस्वरूप मीरा ने संन्यास धारण किया था। लेकिन महादेवी घर में ही रहकर संन्यास में रमने लगीं, भले ही वे वपुशः 'बौद्ध भिक्षुणी' नहीं बन पाईं।

यद्यपि मीरा और महादेवी के युग, वंश और जीवन-सम्बन्धी परिस्थितियों में जितनी दूरी और अलगाव है, उनके 'अन्तर्लोक' में उतनी ही समीपता भी है। जहाँ तक इनकी काव्यगत मूल-प्रेरणा का प्रश्न है, दोनों एक दूसरे से 'अभिन्न' हैं, तथापि दो भिन्न युगों की भिन्न परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण दोनों का 'कवि-व्यक्तित्व' पृथक्-पृथक् है, लेकिन भाव की दृष्टि से दोनों की रचनाओं में पीड़ा तथा वेदना की टीस एक जैसी ही व्यक्त हुई है।

प्र.9. निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय कौ सूल॥

(ख) "कौन तुम? संसृति-जलनिधि तीर-तरंगों से फेंकी मणि एक;
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक?

उत्तर **पद्यांशों की व्याख्या**

(क) निज भाषा ..... कौ सूल॥1॥

शब्दार्थ—निज = अपनी; **अहै** = है, योग्य है; **मूल** = जड़, मुख्य उपाय; **हिय** = हृदय; **सूल** = पीड़ा, कष्ट, दुःख।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहा खड़ीबोली हिन्दी के जनक कहे जानेवाले माँ भारती के सच्चे सपूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'मातृभाषा-प्रेम' पर रचित दोहों से उद्धृत है।

प्रसंग—प्रस्तुत दोहे में कवि ने स्पष्ट किया है कि मातृभाषा की उन्नति के बिना देश और समाज की उन्नति सम्भव नहीं है।

व्याख्या—प्रस्तुत दोहे में, महाकवि भारतेन्दु जी कहते हैं कि अपनी भाषा की उन्नति से ही सब प्रकार की उन्नति सम्भव है। वास्तव में अपनी भाषा के ज्ञान के बिना हृदय की पीड़ा और कष्टों का निवारण नहीं होता है; क्योंकि व्यक्ति अपने मन के भाव या विचार अपनी भाषा में ही सफलतापूर्वक साझा कर पाता है। दूसरों की भाषा में वह अपनी बात अच्छी तरह से नहीं रख पाता। जब तक व्यक्ति अपने मन की बात को दूसरों के साथ साझा नहीं कर लेता, उसके मन पर एक बोझ बना रहता है, वह एक अनजानी और अव्यक्त पीड़ा को सहन करता रहता है।

विशेष—1. व्यक्ति के जीवन में उसकी मातृभाषा की क्या महत्ता होती है, इसको समझाने में कवि को सफल हुआ है।

2. **भाषा**—सरल तत्सम शब्दों से युक्त आमबोलचाल की ब्रजभाषा।
3. **अलंकार**—अनुप्रास का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

(ख) कौन तुम? ..... से अभिषेक?

शब्दार्थ—संसृति जलनिधि = सृष्टि रूपी समुद्र, **तीर** = किनारा, **तरंगों** = लहरों, **मणि** = प्रकाशमय रत्न, **निर्जन** = एकान्त, **प्रभा** = प्रकाश (सौन्दर्य की = चमक)। **अभिषेक** = स्नान।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश 'कामायनी' महाकाव्य के 'श्रद्धा सर्ग' से उद्धृत हैं। इसके रचयिता छायावादी युग के साहित्यकार एवं युग-प्रवर्त्तक महाकवि जयशंकर प्रसाद हैं।

प्रसंग—इस पद्यांश में कवि ने मनु की परिचय ज्ञात करने की श्रद्धा की उत्सुकता का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि मनु हिमालय की एक गुफा में अकेले बैठे हुए थे कि अचानक श्रद्धा आ जाती है और चुपचाप बैठे हुए मनु को देखकर उनसे पूछती है कि तुम कौन हो? जो इस सृष्टि रूपी समुद्र के किनारे बैठे हुए इस प्रकार इस जनशून्य (एकान्त) प्रदेश की शोभा बढ़ा रहे हो जैसे समुद्र के भीतर रहने वाली कोई मणि लहरों के द्वारा किनारे पर फेंक दी गई हो, और वह चुपचाप पड़ी हुई अपने भीतर से निकलने वाली प्रकाश की किरणों से समीप के प्रदेश को प्रकाशित कर रही हो।

विशेष—1. यहाँ 'मणि' शब्द द्वारा श्रद्धा मनु की दैहिक कांति की व्यंजना करती है।

2. 'प्रभा की धारा से निर्जन का अभिषेक करने में अभिव्यक्ति की सुकुमारता और लालित्य प्रकट होता है।
3. **अलंकार-दर्शन**—रूपक अलंकार—'संसृति-जलनिधि' में, उपमा अलंकार—तरंगों में मणि एक।

प्र.10. निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) भारत के नभ के प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तूर्य दिङ्मण्डल;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान;
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।

(ख) नव गति, नव लय, ताल-छंद नव,
नवल कंठ, नव जलद मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे!

उत्तर

पद्यांशों की व्याख्या

(क) भारत के ..... पर शतदल।

शब्दार्थ—प्रभापूर्य = कान्ति, प्रभा से भर देनेवाले; **शीतलच्छाय** = शीतल छाया देनेवाले; **अस्तमित** = अस्त होते हुए, पतन हुए; **तमस्तूर्य** = अन्धकार से शीघ्रतापूर्वक भरनेवाले; **दिङ्मण्डल** = दिशाओं का समूह; **उर** = हृदय; **शिरस्त्राण** = पगड़ी, सिर की रक्षा करनेवाला लोहे का टोप, सम्मान की प्रतीक टोपी; **ऊर्मिल** = तरंगित, आलोकित, विक्षुब्ध किया; **निश्चलत्प्राण** = निश्चेतन प्राण, मृतप्राय; **शतदल** = कमल, सौ पंखुड़ियोंवाला।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ हिन्दी-साहित्य के निडर और बेबाक कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के अद्‌भुत काव्य 'तुलसीदास' से उद्‌धृत हैं।

प्रसंग—इन पंक्तियों में महाकवि निरालाजी ने भारतीय संस्कृति के उस संक्रमणकाल का वर्णन किया है, जब मुगलों द्वारा भारतीय संस्कृति को पददलित किया जा रहा था।

व्याख्या—इन पंक्तियों में निरालाजी कहते हैं कि, भारत के सम्पूर्ण आकाश को अपनी आभापूर्ण शीतल छाया से सुख पहुँचानेवाली आर्य संस्कृति का सूर्य आज अस्त हो रहा है। सभी दसों दिशाएँ अपसंस्कृति के गहन अन्धकार से शीघ्रतापूर्वक व्याप्त हो रही हैं। तात्पर्य यही है कि सब ओर अपसंस्कृति शीघ्रतापूर्वक अपने पाँव पसार रही है। भारतीय आर्य संस्कृति, जिसे समस्त भारतीय अपने सम्मान के प्रतीक पगड़ी के रूप में सिरों पर धारण करते हैं। आज उस पगड़ी को पददलित करके उस पर मुसलमान शासन करते हैं। अर्थात् भारतीय संस्कृति का पूर्णत: पतन हो गया है और सब ओर मुसलमान शासक अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगे हैं

और सर्वत्र उन्हीं की संस्कृति का साम्राज्य दिखाई देता है। संस्कृति के इस संक्रमण के कारण सम्पूर्ण भारतीय मानस का भाव-समुद्र आलोडित है। उसमें बुरी तरह हलचल मची है, क्षोभ की ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं, किन्तु विवश भारतीय मानस निश्चेतन अर्थात् निष्प्राण होकर उसी प्रकार उस विक्षुब्ध सागर में दिशाहीन होकर तैर रहा है, जिस प्रकार जल में तरंगें उठने पर कमल उन तरंगों के ऊपर इधर-उधर हिचकोले खाता रहता है।

विशेष—1. कवि ने मुगलों के क्रूर अत्याचार की ओर संकेत किया है कि उन्होंने किस प्रकार से बलपूर्वक आर्य संस्कृति का विनाश करके भारतवर्ष में इस्लामिक संस्कृति की स्थापना की।

2. भारतीयों के भय और विवशता की कवि ने तरंगित जल के ऊपर हिचकोले खाते कमल से तुलना करके यथार्थ चित्रण किया है।
3. **भाषा**—संस्कृतनिष्ठ शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली।
4. **अलंकार**—रूपक और अन्त्यानुप्रास का मंजुल प्रयोग किया गया है।

(ख) नव गति ..... स्वर दे!

शब्दार्थ—नव = नयी; **मन्द्ररव** = गम्भीर ध्वनि; **विहग-वृन्द** = पक्षियों का समूह।

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ 'वीणावादिनि वर दे' नामक कविता से अवतरित हैं। इनके रचयिता सुविख्यात कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि निराला जी माता सरस्वती से स्वतंत्रता का अमृत मन्त्र प्रदान करने एवं अज्ञानता को दूर कर ज्ञान से परिपूर्ण बनाने के लिए विनती करते हैं।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि प्रार्थना करता है कि हे माँ सरस्वती! तुम हम भारतवासियों को नई गति, नई लय, नई ताल व नए छन्द, नई वाणी और बादल के समान गम्भीर स्वरूप प्रदान करो। तुम नए आकाश में विचरण करने वाले नए-नए पक्षियों के समूह को नित्य नए-नए स्वर प्रदान करो। हे माँ सरस्वती! हमें ऐसा ही वर दो।

विशेष—1. कवि माँ सरस्वती से देश के युवाओं में क्रान्ति के स्वर का आधान करने का आह्वान कर रहा है।

2. कवि के अनुसार क्रान्ति के लिए युवाओं की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।
3. **भाषा**—संस्कृतनिष्ठ, शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली।
4. **अलंकार**—सम्पूर्ण कविता में रूपक, अनुप्रास और स्वर-मैत्री का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

प्र.11. निम्नलिखित पद्यांशों की सन्दर्भ-प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए-

(क) देख वसुधा का यौवन भार, गूँज उठता है तब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार, कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छवास
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सन्देशा मुझे भेजता मौन!

(ख) मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को, और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु, एक दिन जब मैं सन्ध्या को आँगन में, टहल रहा था–तब सहसा मैंने जो देखा, उससे हर्ष-विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से!
देखा, आँगन के कोने में कई नवागत, छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं। छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की, या हथेलियाँ खोले थे वे नहीं, प्यारी–जो भी हो, वे हरे-हरे उल्लास से भरे, पंख मार कर उड़ने को उत्सुक लगते थे,– डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों से!

उत्तर पद्यांशों की व्याख्या

(क) देख वसुधा ..... भेजता मौन!

शब्दार्थ—वसुधा = पृथ्वी; **विधुर** = विरही; **डर** = हृदय; **सोच्छ्वास** = उच्छ्वास भरते हुए; **मिस** = बहाने से।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ 'मौन निमन्त्रण' नामक कविता से ली गई हैं। इसके रचयिता सुमित्रानन्दन पन्त हैं।

प्रसंग—इन पंक्तियों में पन्तजी ने पृथ्वी को नायिका और वसन्त को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि पृथ्वी को यौवन के भार से युक्त देखकर वसन्त रस-लोभी भ्रमर के समान उसके चारों ओर मँडराने और गुंजार करने लगता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि वसन्त के आगमन पर जब पृथ्वी का सौन्दर्य अद्वितीय हो जाता है, पृथ्वी यौवन के भार से परिपूर्ण हो जाती है, तब उसके इस यौवन-भार से आकर्षित होकर मधुमास उसके चारों ओर उसी प्रकार मँडराने लगता है, जैसे रस-लोभी भ्रमर पुष्पों के चारों ओर मँडराने और गुंजार करने लगता है।

पृथ्वीरूपी नायिका और मधुमासरूपी नायक के मिलन को देखकर एक विरही हृदय से निकलनेवाली उच्छ्वास के समान हल्की ध्वनि करते हुए पुष्प विकसित हो उठते हैं। इन पुष्पों से निकलकर सौरभ चारों ओर विकीर्ण हो जाता है। पन्तजी कहते हैं कि उन पुष्पों से निकले सौरभ के बहाने न जाने कौन मुझे अपने पास आने का मौन सन्देश भेजता रहता है।

विशेष—1. यहाँ प्रकृति का मानवीकरण करके पुष्प-सौरभ को अज्ञात सत्ता का सन्देशवाहक माना है।

2. प्रकृति के सुकुमार कवि की प्रकृति-सम्बन्धी कल्पना उन्हें कल्पना का सुकुमार कवि भी सिद्ध कर रही है।
3. पन्तजी की मान्यता है कि प्रकृति में मानव-जीवन के समान हास-रुदन, हर्ष-विषाद को व्यक्त करने के साधन उपलब्ध हैं।
4. 'देख वसुधा का यौवन भार' में लिंग-विधान का सार्थक निर्वाह हुआ है। यहाँ वसुधा (नायिका) यौवनभार से परिपूर्ण है तो वसन्त (नायक) उसके रूप पर मोहित है।
5. **भाषा**—साहित्यिक खड़ीबोली।
6. **अलंकार**—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, उपमा।

(ख) मैं फिर ..... बच्चों से!

शब्दार्थ—सहस्त = अचानक; **हर्ष-विमुख** = प्रसन्नता के कारण सुध-बुध खोना; **विस्मय** = आश्चर्य; **नवागत** = नए आगन्तुक, पौधे; **पताकाएँ** = झंडे; **उल्लास** = प्रसन्नता; **उत्सुक** = इच्छुक; **डिम्ब** = झण्डी।

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ 'यह धरती कितना देती है' नामक कविता से ली गई हैं। इनके रचयिता सुमित्रा नन्दन पन्त हैं।

प्रसंग—कवि ने बरसात में अपने घर के आँगन की गीली मिट्टी में सेम के बीज दबा दिये थे। इसके बाद उसको इसके बारे में कुछ याद नहीं रहा।

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में पंतजी कहते हैं कि वह यह भूल गए कि उन्होंने अपने घर के आँगन में सेम के बीज बो दिए थे। घटना बहुत मामूली थी और इसमें स्मरण रखने योग्य कोई बात नहीं थी। एक दिन शाम के समय कवि आँगन में टहल रहे थे। अचानक उन्होंने जो देखा उससे वह अत्यधिक प्रसन्न हुए, सुध-बुध खो बैठे तथा आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने देखा कि आँगन में अनेक नए छोटे पौधे उग आए हैं। वे पौधे उनके छोटे-छोटे छाते लगाए हुए आगन्तुकों के समान प्रतीत हुए। कवि उनको छाते या विजय की घोषणा करने वाले झण्डे भी कह सकते थे या इन्होंने अपनी छोटी-छोटी प्यारी हथेलियाँ फैला रखी थीं। कुछ भी कहें पर वे हरे-भरे एवं प्रसन्नता से भरे पौधे चिड़ियों के अंडे फोड़कर बाहर निकले और पंख फैलाकर उड़ने के लिए उत्सुक बच्चों जैसे प्रतीत हो रहे थे।

विशेष—1. सेम के नए उगे पौधों का काव्यमय चित्रण हुआ है। 2. भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण एवं विषयानुरूप है। 3. पुनरुक्ति, संदेह, उपमा अलंकार के प्रयोग हुए हैं। 4. मुक्त छंद अतुकान्त है। 5. पैसे तो नहीं उगे पर सेम के बीज उग आए। कवि बताना चाहता है कि सही ढंग से प्रयास करने पर ही सफलता मिलती है।

प्र.12. निम्नांकित पद्यांशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए–

(क) बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।

(ख) पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों के बीच सो गया;
साँसों की समाधि का जीवन
मसि-सागर का पन्थ गया बन;
रुका मुखर कण-कण का स्पन्दन!
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो! **(2021)**

उत्तर

पद्यांशों की व्याख्या

(क) बीन भी हूँ ..... प्रवाहिनी भी हूँ।

शब्दार्थ—**बीन** = वीणा; **अचल** = जड़ा; **निस्पन्द** = स्पन्दहीन; **कूल** = किनारा; **कूलहीन** = किनारे से रहित; **प्रवाहिनी** = नदी।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश 'मैं नीर भरी दुख की बदली' नामक कविता से किया गया है। इसके स्वयिता छायावाद की प्रमुख स्तम्भ महादेवी वर्मा हैं। यह उनके कविता संग्रह 'यामा' से अवतरित है।

प्रसंग—इस पद्यांश में महादेवी वर्मा ने अद्वैतवादी दर्शन के आधार पर आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध को प्रकट किया है। अपने अनन्त और अज्ञात प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कवयित्री आत्म परिचय देती हैं।

व्याख्या—कवयित्री कहती हैं कि हे प्रिय! मैं तुम्हारी वीणा हूँ और वीणा से नि:सृत होने वाली मधुर रागिनी भी मैं ही हूँ। सृष्टि में प्रथम बार चेतना जागृत हुई तो मैं भी जागृत हुई और मेरे अस्तित्व का बोध होने लगा। प्रलय में भी मेरा अस्तित्व था परन्तु तब मैं स्पन्दनहीन थी। मेरे पदचिह्न जीवन में देखे जा सकते हैं। अर्थात् प्रलय और सृष्टि दोनों ही स्थितियों में मेरा अस्तित्व था। कवयित्री आगे कहती हैं कि शापवश अपने प्रिय से वियुक्त होकर इस संसार में आयी हुई मैं उस शाप को वरदान मानती हूँ क्योंकि प्रिय से मिलन की उत्कण्ठा उससे वियुक्त होने पर ही अनुभव हुई है। अत: प्रेम का यह बन्धन आज मेरे जीवन का वरदान बन गया है। नदी का किनारा भी मैं ही हूँ और किनारे के बन्धन को न मानने वाली नदी भी मैं ही हूँ।

विशेष—1. कवयित्री ने जीवात्मा और परमात्मा की अद्वैतता का वर्णन किया है। 2. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है। 3. उल्लेख, दृष्टान्त और अनुप्रास अलंकार। 4. संगीत की विशेषताओं से युक्त गीत।

(ख) पल के मनके ..... ढलने दो।

शब्दार्थ—**पल के** = पलभर समय के; **मनके** = माला के दाने; **प्रतिध्वनि** = कोई ध्वनि जब किसी सतह से टकराने पर लौटकर पुन: सुनाई दे, उसे प्रतिध्वनि कहा जाता है, अनुगूँज; **प्रस्तरों** = पत्थरों; **मसि-सागर** = स्याही का समुद्र, अर्थात् अन्धकार; **मुखर** = स्पष्ट रूप से व्यक्त होना; **स्पन्दन** = चेतना, धड़कन।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश 'दीपशिखा' नामक काव्य-संग्रह में संकलित गीत 'यह मन्दिर का दीप' से उद्धृत है। इसके रचयिता महादेवी वर्मा हैं।

प्रसंग—व्यक्ति बाह्याडम्बर करते-करते मर जाता है, किन्तु उस परमात्मा के दर्शन की उसे एक झलक भी नहीं हो पाती। उसके लिए प्राणों को जलाना ही पड़ता है। इसका वर्णन महादेवी ने प्रस्तुत काव्यांश में किया है।

व्याख्या—महादेवी वर्मा सम्पूर्ण संसार को एक पुजारी के रूप में देखती हुई कहती हैं कि जिस प्रकार पुजारी माला के दानों (मनकों) का जाप करके अपनी पूजा को पूर्ण करके आराम करता है, उसी प्रकार यह विश्व भी क्षणों और पलोंरूपी दानों की गणना करता हुआ अन्त में मृतरूपी चिरनिद्रा में सो गया है। अब उसके आरती गीतों अथवा घण्टे-घड़ियालों की आवाज प्रतिध्वनि बनकर पुनः सुनाई नहीं देती, किन्तु वह तो पत्थरों के बीच खोकर इतिहास बन चुकी है। उसकी साँसें अब समाधि लेकर शान्त हो चुकी है और पूरा जीवन संसाररूपी सागर के अज्ञानान्धकार का राही बनकर अदृश्य हो गया है और उसके शरीर का धड़कता एक-एक कण अब शान्त हो गया है। अर्थात् उसकी चेतना का अन्त हो चुका है। ऐसे में भी प्राणों का दीया एकाकी ही प्रज्वलित रहा, वह माया-ममता के बन्धनों से दूर रहा। सन्ध्या के समय भक्तों के द्वारा पूजा-अर्चना, आरती-वन्दन के लिए बजाए गए विविध वाद्ययन्त्र तथा भक्ति गीतों के स्वर मन्दिर की दीवारों में लुप्त हो गए। कवयित्री कहना चाहती हैं कि अब तक जीवन-मन्दिर में सांसारिकता के जो भाव व्यक्त हो रहे थे, अर्थात् गुंजित हो रहे थे, वे अन्ततः सभी लुप्त हो गए हैं। मेरे इस जीवन की दशा श्वासों की समाधि के समान अन्धकारमय हो गई है और मेरी साधना-पंक्ति अनेक बाधाओं एवं कष्टों से परिपूर्ण हो गई है। सब ओर कालिमा और अन्धकार का सागर-सा भर गया है। मेरे जीवनरूपी मन्दिर के कण-कण में जो चेतना व्याप्त थी, वह समाप्त होती जा रही है। हे प्रियतम! ऐसा यत्न करो कि इस विरह-ज्वाला के मधुर आलोक में मेरे प्राणों में फिर से जीवन-शक्ति का संचार हो और मैं निरन्तर तुम्हें पाने के लिए इसी प्रकार विरह में जलती रहूँ।

विशेष—1. व्यक्ति जप-तप करके अपना जीवन व्यर्थ गँवाता रहता है। उसके भजन-कीर्तन यहीं पत्थरों की दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनि बनकर लौट आते हैं, वे उस परमात्मा तक पहुँच ही नहीं पाते, जिसके लिए उनको गाया जाता है। 2. स्वयं के भक्त होने के भ्रम में व्यक्ति एक दिन मर जाता है और उसकी आत्मा अज्ञानान्धकार में ही भटकती रहती है। 3. **भाषा**—शुद्ध परिष्कृत खड़ीबोली। 4. **अलंकार**—सम्पूर्ण काव्य में **रूपक**; 'कण-कण' में **पुनरुक्तिप्रकाश** का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन-परिचय देते हुए इनके साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए। भारतेन्दु जी के काव्य की कलापक्ष की विशेषताएँ भी लिखिए।

उत्तर जीवन-परिचय—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी में **संवत् 1907 (सन् 1850 ई०)** में हुआ था। इनके पिता का नाम **गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास'** था। वे स्वयं हिन्दी, उर्दू एवं संस्कृत के महान ज्ञाता थे। साहित्यानुरागी होने के कारण उनके घर पर साहित्यकारों और कवियों का ताँता रहता था। इस प्रकार के साहित्यिक वातावरण में भारतेन्दु जी का लालन-पालन हुआ। घर का वातावरण तो साहित्य से परिपूर्ण था ही, किन्तु इस बालक में भी साहित्य रचना के गुण विद्यमान हैं, पिता तथा उनके साथियों में से कोई नहीं जानता था। एक दिन इनके पिता मित्रमण्डली के साथ साहित्य-चर्चा कर रहे थे। उस समय 'बलराम-कथावृत्त' में उषा-हरण का प्रकरण लिखवा रहे थे, लेकिन प्रकरण में एक जगह बार-बार बाधा आ रही थी। बालक भारतेन्दु भी वहीं बैठे हुए थे। उन्होंने झट से कहा कि वे समस्या पूर्ति कर सकते हैं। सभी ने बालक की बात को हँसी में लिया, लेकिन आश्चर्य तब हुआ, जब बालक ने यह दोहा कहा—

लै व्योढ़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासर के सैन को, हनन लगे भगवान॥

इस प्रकार बालक हरिश्चन्द्र ने समस्या की पूर्ति कर दी। सभी आश्चर्यचकित होकर बालक की साहित्यिक प्रतिभा की प्रशंसा करने लगे। पिता गिरिधरदास ने उन्हें गले से लगाया एवं आशीर्वाद दिया कि भविष्य में वह बड़ा कवि बनेगा। पिता का आशीर्वाद फलित हुआ। भारतेन्दु बड़े कवि भी बने और युग-निर्माता भी। उन्होंने हिन्दी भाषा-साहित्य को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

पारिवारिक दायित्व के बोझ के कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, तथापि इन्होंने हिन्दी, बांग्ला, संस्कृत एवं मराठी भाषा का ज्ञान घर पर ही प्राप्त किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की माता इन्हें पाँच वर्ष की उम्र में ही छोड़कर चल बसी थीं। तत्पश्चात् इनके पिता की भी मृत्यु हो गई। जब इनके पिता की मृत्यु हुई, इनकी अवस्था मात्र दस वर्ष थी। 34 वर्ष 4 मास की अल्प अवस्था में संवत् 1941 (सन् 1885 ई०) में इनका भी निधन हो गया।

साहित्यिक व्यक्तित्व—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न थे। ये कवि, सम्पादक, नाटककार, निबन्धकार आदि के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। नाटक एवं कविता के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा का सर्वाधिक विकास हुआ। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर देश के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अनेक भारतीय भाषाओं में कविताएँ लिखते थे, लेकिन ब्रजभाषा पर इनका विशेष अधिकार था। ब्रजभाषा में इनकी अधिकतर रचनाएँ शृंगार रस से परिपूर्ण हैं। इन्होंने केवल प्रेम के विषय पर ही जो कविताएँ लिखीं, उनके सात संग्रह प्रकाशित हुए। इन संग्रहों के नाम 'प्रेम-फुलवारी', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-मालिका', 'प्रेम-प्रलाप', 'प्रेमाश्रु-वर्षण', 'प्रेम-तरंग' एवं 'प्रेम-सरोवर' हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी-साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया। मात्र 18 वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'कवि-वचनसुधा' नामक पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन प्रारम्भ किया और तत्कालीन कवियों का पथ-प्रदर्शन करने लगे। पाँच वर्ष के उपरान्त इन्होंने दूसरी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र, मैगजीन' का सम्पादन एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया। भारतेन्दुजी नौ वर्ष की अल्पायु से ही कविताएँ करने लगे थे।

कृतियाँ—भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। उन्होंने कविता, नाटक, निबन्ध तथा इतिहास आदि अनेक विषयों पर पुस्तकों की रचना की। इन्होंने छोटी-बड़ी 238 कृतियों का प्रणयन किया। इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

1. **काव्य-कृतियाँ**—'प्रेम-प्रलाप', 'दानलीला', 'प्रेम सरोवर', 'कृष्ण-चरित्र', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेमाश्रु-वर्षण', 'प्रेम-मालिका' आदि भक्ति तथा दिव्य प्रेम पर आधारित रचनाएँ हैं। इनमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त 'जैन कुतूहल', 'प्रेम-फुलवारी', 'भक्तमाल उत्तरार्द्ध', 'भक्त सर्वस्व', 'फूलों का गुच्छा', 'बैशाख माहात्म्य', 'वर्षा विक्षोद', 'विनयप्रेम पचासा', 'कार्तिक स्नान', 'गीत गोविन्द', 'सतसई शृंगार', 'होली', 'मधुकूल' तथा 'राग-संग्रह' का प्रणयन भी किया।
   'विजयिनी', 'भारत-वीरत्व', 'विजय-वल्लरी' एवं 'विजय-पताका', 'जातीय संगीत' एवं 'रिपनाष्टक' आदि इनकी राजभक्ति तथा देशप्रेम-सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'बन्दर-सभा' और 'बकरी-विलाप' में हास्य-व्यंग्य शैली के दर्शन होते हैं।
2. **नाटक**—भारतेन्दु ने कुल 24 नाटकों की रचना की, जिनमें से कुछ मूल तथा कुछ अनूदित हैं। उनके नाम इस प्रकार से हैं—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'धनंजयविजय', 'मुद्राराक्षस', 'विद्या सुन्दर', 'रत्नावली', 'पाखण्डविडम्बन', 'कर्पूरमंजरी', 'श्री चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी', 'सत्यहरिश्चन्द्र', 'प्रेमयोगिनी', 'विषस्य विषमौषधम्', 'नील देवी', 'सर्व जाति गोपाल की', 'वसन्त पूजा', 'इति दिवेकली सभा', 'दुर्लभ वधू', 'अंधेर नगरी', 'सती प्रताप', 'सण्डभड़यो: संवाद', 'रणधीर प्रेममोहिनी', 'श्रीरामलीला'।
3. **उपन्यास**—'पूर्णप्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं।
4. **इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी**—'रामायण का समय', 'कश्मीर-कुसुम', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'बूँदी का राजवंश' तथा 'चरितावली'।

भारतेन्दुजी ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'कवि-वचनसुधा' आदि पत्रिकाओं का भी सफल सम्पादन किया। बाद में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का नाम बदलकर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया।

काव्य की कला-पक्ष की विशेषताएँ

भारतेन्दु जी के काव्य की कला-पक्ष की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **माधुर्यपूर्ण ब्रजभाषा**—भारतेन्दुजी के काव्य की शिष्ट, सरस एवं माधुर्य से परिपूर्ण ब्रजभाषा है। भाषा में नवीनता और सजीवता है। प्रचलित शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों आदि के यथास्थान प्रयोग से भाषा प्रवाहयुक्त हो गयी है।
2. **विविध छन्दों के प्रयोग**—इन्होंने अपनी रचनाओं में विविध छन्दों के प्रयोग किए हैं। विशेष रूप से उन्होंने कवित्त दोहा, छप्पय, सवैया, लावनी, चौपाई तथा कुण्डलियाँ आदि छन्दों को अपनाया है।
3. **शैली की विविधता**—भारतेन्दुजी की शैली उनके भावों के अनुकूल है लेकिन इन्होंने मुख्य रूप से मुक्तक शैली को अपनाया है। इसमें इन्होंने अनेक नवीन प्रयोग करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। लोकगीतों की शैली में भी उन्होंने राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य की रचना की है और इसमें वे पूर्णतया सफल भी रहे हैं।

4. **अलंकार-योजना**—भारतेन्दुजी अलंकारों को अपने काव्य के साधन रूप में ही अपनाया है, साध्य-रूप में नहीं; अर्थात् अलंकारों की साधना करना उनका लक्ष्य नहीं था। अलंकारों के प्रयोग में उन्होंने चमत्कार को नहीं, वरन् सरसता को प्रधानता दी है।

भारतेन्दुजी की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने कहा है—"अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेश के मधुसूदन दत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी में; एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई 'भक्तमाला' गूँथते हुए दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बगुला-भगतों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।"

प्र.2. मातृभाषा प्रेम के दोहों तथा पदों का परिचय देते हुए निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) रोकहिं जौं तौ अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहै पिय जाइए।
जो कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौ कछू न कहै तो सनेह नसाइए।
जो 'हरिचन्द' कहैं तुमरे बिनु जीहैं न तो यह क्यों पतिआइए।
तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमें समुझाइए॥

(ख) ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी पद-पंकज पावन की रज जामै सिर भीजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
श्री राधे-राधे मुख यह बर हरीचन्द्र को दीजै।

उत्तर मातृभाषा-प्रेम के दोहों का परिचय—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी-साहित्य में पहले कवि हैं, जिन्होंने देश के विकास में मातृभाषा के महत्त्व को व्यक्ति किया है, अपितु उसके प्रचार-प्रसार के लिए यथासम्भव सभी प्रकार के प्रयास भी किए हैं। उन्होंने इसके लिए तत्कालीन साहित्य की भाषा ब्रजभाषा में कुछ दोहों की रचना की, जिसमें उन्होंने अत्यन्त सरल शब्दों में मातृभाषा के महत्त्व को रेखांकित करके लोगों को उसके व्यवहार के लिए प्रेरित किया। यह ब्रजभाषा उस समय मातृभाषा के पद पर प्रतिष्ठित थी; अत: उन्होंने इसी को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उनकी यह भाषा शुद्ध ब्रजभाषा न थी, इसमें उस समय की आमबोलचाल की भाषा के शब्दों का सहज प्रयोग किया गया। यही भाषा आगे चलकर खड़ीबोली के विकास में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई।

पदों का परिचय—भारतेन्दु जी द्वारा भारतीय नारी की गरिमा, त्याग, स्नेह और समर्पण के भाव को पदों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

पद्यांशों की व्याख्या

(क) रोकहिं जौं ..... हमें समुझाइए॥

शब्दार्थ—अमंगल = अशुभ; **नसै** = नष्ट होना; **बिन जीहैं** = बिना जीवित रहे; **सनेह** = प्रेम; **पतिआइए** = विश्वास करना; **पयान समै** = प्रस्थान के समय।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश महाकवि भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा रचित है।

प्रसंग—प्रस्तुत सवैया में भारतेन्दु जी ने नायिका के द्वारा परदेश जा रहे अपने पति से चतुरता पूर्वक कहे गए कथन का वर्णन किया है।

व्याख्या—भारतेन्दु जी ने नायिका के उस मनोभाव का चित्रण किया है, जो वह परदेश जाने वाले अपने पति के समक्ष प्रकट कर रही है। नायिका बड़ी असमंजस की स्थिति में है। नायिका अपने प्रियतम से कहती है कि यदि जाते समय वह उन्हें रोकती है तो टोक लगेगा, जो यात्रा के समय अमंगल का सूचक है, क्योंकि लोग यही कहते हैं कि यात्रा के समय टोकना अशुभ होता है। यदि वह उन्हें परदेश जाने के लिए कहती है तो उससे उसका प्रेम नष्ट हो जाएगा। वह कहती है यदि वह उन्हें परदेश जाने से मना करती है तो यह उन पर प्रभुत्व स्थापित करने अर्थात् उन्हें आदेश देने के समान होगा, जो अनुचित है और यदि वह कुछ नहीं कहती है तो उसका पति के प्रति स्नेह नष्ट होता है। वह कहती है कि ऐसी स्थिति में यदि वह अपने प्रियतम से कहे कि उनके बिना वह जीवित नहीं रह सकती है तो क्या वे विश्वास करेंगे? नायिका इस बात से व्यथित है कि परदेश जाते हुए अपने पति से वह क्या कहे।

अन्ततः वह अपने प्रियतम (पति) से ही अनुरोध करती है कि उसके परदेश गमन के समय वह उससे क्या कहे, यह बात उसे वह स्वयं बता दे। नायिका चतुरतापूर्वक अपने मन की बात अपने पति को बताते हुए उसके प्रेम को जीतने की कोशिश कर रही है।

विशेष—1. नायिका के अन्तर्मन में उठ रहे भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। नायिका की चतुरता प्रदर्शित हुई है। 2. रस शृंगार। 3. **भाषा**—ब्रज, **शैली**—मुक्तक, **छन्द**—सवैया, **अलंकार**—अनुप्रास, **गुण**—माधुर्य, **शब्द शक्ति**—लक्षणा।

(ख) ब्रज के ..... को दीजै।

शब्दार्थ—लता = बेल; **पता** = पत्ते; **पद-पंकज** = चरण-कमल; **पावन रज** = पवित्र धूलि; **जामें** = उस (चरण रज) में; **भीजै** = भीगे: **सुधा** = अमृत; **नित** = रोजाना; **पीजै** = पीऊँगा; **वर** = वरदान।

सन्दर्भ—प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत पद में भारतन्दु जी राधिका के प्रति अपने अनन्य भक्ति-भाव का परिचय दिया है।

व्याख्या—भारतेन्दु जी राधिका रानी से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे राधिकाजी! आप मुझे ब्रजधाम की कोई लता बना दीजिए अथवा किसी लता या वृक्ष का पत्ता ही बना दीजिए। ऐसा होने पर जब ब्रज की गोपियाँ वहाँ से गुजरेंगी तो उनके चरण-कमलों से जो रज (धूलि) उड़ेगी, वह उनके चरणों के संस्पर्श से अत्यधिक पवित्र हो जाएगी। मैं जब लता या पत्ते के रूप में वहाँ उपस्थित रहूँगा तो वह पवित्र धूलि मेरे सिर पर जमकर उसे ऐसे सराबोर कर देगी, मानो मैंने जल के स्थान पर धूलि-स्नान कर लिया हो। हे राधिकाजी! आप जब भी गोपियों के साथ वृन्दावन के सँकरे रास्तों और कुंज गलियों से आएँगी-जाएँगी तो मैं आपके दर्शनों के अमृत रस का नित प्रतिदिन पान कर सकूँगा। भक्त कवि भारतेन्दु जी पुनः राधिकाजी से प्रार्थना करते हैं कि आप मुझे यह वरदान दीजिए कि इस मुख पर सदैव श्री राधे-राधे का नाम रहे। अर्थात् मैं सदैव श्री राधे-राधे का निरन्तर जप करता रहूँ।

विशेष—1. कवि किसी भी रूप में राधिकाजी के चरणों की धूलि का स्पर्श करके स्वयं को धन्य करना चाहते हैं। 2. वे दूर से ही राधिकाजी के दर्शन पाकर सन्तुष्ट हो जाना चाहते हैं। 3. उनकी एकमात्र आकांक्षा भी यही है कि उनकी जिह्वा सदैव श्री राधे-राधे का मन्त्र जपती रहे। 4. **भाषा**—सरल और सरस ब्रजभाषा। 5. **अलंकार**—अनुप्रास, रूपक और वीप्सा अलंकार का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

प्र.3. प्रसाद जी के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालते हुए उनकी प्रसिद्ध रचना 'आँसू' की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

उत्तर

जयशंकरप्रसाद का जीवन-वृत्त

जन्मस्थान एवं जन्मकाल—महाकवि जयशंकरप्रसाद छायावादी युग के प्रवर्तक थे। उनका जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य-परिवार में सन् 1890 ई० में हुआ था। इनके पिता एवं बड़े भाई बचपन में ही स्वर्गवासी हो गए थे। अल्पावस्था में ही प्रसादजी को घर का सारा भार वहन करना पड़ा। इन्होंने विद्यालयीय शिक्षा त्यागकर घर पर ही अंग्रेजी, हिन्दी, बाँग्ला तथा संस्कृत आदि भाषाओं का ज्ञानार्जन किया। अपने पैतृक कार्य को करते हुए भी इन्होंने अपने भीतर काव्य-प्रेरणा को जीवित रखा। जब भी समय मिलता, इनका मन भाव-जगत् के पुष्प चुनता, जिन्हें ये दुकान की बही के पन्नों पर सँजो दिया करते थे।

14 नवम्बर, सन् 1937 ई० (संवत् 1994) में अत्यधिक श्रम तथा जीवन के अन्तिम दिनों में राजयक्ष्मा से पीड़ित रहने के कारण अल्पायु में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

साहित्यिक व्यक्तित्व—महाकवि जयशंकरप्रसाद छायावादी काव्य के जन्मदाता एवं छायावादी युग के प्रवर्तक समझे जाते हैं। इनकी रचना 'कामायनी' एक कालजयी कृति है, जिसमें छायावादी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का समावेश हुआ है। अन्तर्मुखी कल्पना तथा सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रसाद के काव्य की मुख्य विशेषता रही है।

प्रसाद जी ने द्विवेदी युग से ही अपनी काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। वे छायावादी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि रहे हैं। प्रेम एवं सौन्दर्य इनके काव्य का प्रमुख विषय रहा है, लेकिन इनका दृष्टिकोण इसमें भी विशुद्ध मानवतावादी रहा है। इन्होंने अपने काव्य में आध्यात्मिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है। ये जीवन की चिरन्तन (अनिवार्य रूप से उत्पन्न होनेवाली स्थायी) समस्याओं का मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित समाधान ढूँढने के लिए प्रयत्नशील रहे। इनका दृष्टिकोण था कि इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का सामंजस्य ही उच्चस्तरीय मानवता का परिचायक है।

जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी-काव्य के सर्वप्रथम कवि थे। इन्होंने अपनी कविताओं में सूक्ष्म अनुभूतियों का रहस्यवादी चित्रण आरम्भ किया और हिन्दी काव्य-साहित्य में एक नवीन क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इनकी इसी क्रान्ति से एक नए युग का सूत्रपात हुआ, जिसे 'छायावादी युग' के नाम से जाना जाता है।

कृतियाँ—प्रसादजी बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। इनकी कुल 67 रचनाएँ हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं का विवरण निम्नि प्रकार है—

(क) काव्य-कृतियाँ—

1. **कामायनी**—यह महाकाव्य छायावादी काव्य का कीर्ति-स्तम्भ है। इस महाकाव्य में मनु और श्रद्धा के माध्यम से मानव को हृदय (श्रद्धा) और बुद्धि (इड़ा) के समन्वय का सन्देश दिया गया है।
2. **आँसू**—यह वियोग रस से परिपूर्ण काव्य है। इसके एक-एक छन्द में दुःख और पीड़ा साकार हो उठी है।
3. **चित्राधार**—यह प्रसादजी का ब्रजभाषा में रचित काव्य-संग्रह है।
4. **लहर**—इसमें प्रसादजी की भावात्मक कविताएँ संगृहीत हैं।
5. **झरना**—यह छायावादी कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में सौन्दर्य और प्रेम की अनुभूतियों को आकर्षक रूप में अंकित किया गया है।

(ख) नाटक—नाटककार के रूप में इन्होंने 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'एक घूँट', 'कल्याणी', 'अजातशत्रु', 'विशाख', 'राज्यश्री' और 'प्रायश्चित्त' नाटकों की रचना की है।

(ग) उपन्यास—'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अपूर्ण रचना)।

(घ) कहानी-संग्रह—प्रसादजी उच्चकोटि के कहानीकार भी थे। इनकी कहानियों में 'प्रतिध्वनि', 'छाया', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' कहानी-संग्रह हैं।

(ङ) निबन्ध—'काव्य और कला'।

'आँसू' की काव्यगत विशेषताएँ

'आँसू' महाकवि जयशंकर प्रसाद का चर्चित विरह-काव्य है। इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, जिनमें प्रथम संस्करण में 120 छन्द थे तो द्वितीय संस्करण में छन्द संख्या 190 हो गई थी। इस समय द्वितीय संस्करण ही प्रचलित है। इसके काव्य-सौन्दर्य का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(अ) 'आँसू' की भावपक्षीय विशेषताएँ

1. **वेदना-विस्तार**—**डॉ० देवीशरण रस्तोगी** के अनुसार आँसू के द्वितीय संस्करण में प्रसाद ने सर्वथा नवीन-क्रम से छन्दों को सजाया है, जिससे 'आँसू' में एक हल्की-सी प्रबन्धात्मकता झलक उठी है। ग्रन्थारम्भ अवश्य ही स्थूल सौन्दर्य और उसके आकर्षण तथा स्मृति से ही हुआ है। साथ ही प्रिया की कठोरता-निष्ठुरता तथा भौतिक सुख के भाग जाने की पीड़ा का वर्णन भी है। अन्त में यह पीड़ा उदात्त हो उठती है। इस कारण आँसू मात्र एक 'करुण कहानी' ही है। इस विषय में **आचार्य विनयमोहन शर्मा** कहते हैं—**''आँसू में पहले उठते यौवन की मादकता-बेचैनी, फिर प्रौढ़ता का चिन्तन और अन्त में ढलती आयु का निर्वेद दिखलाई देता है।''**
2. **आलम्बन का प्रश्न**—'आँसू के आलम्बन से सम्बन्धित में दो मत बहुप्रचलित हैं। एक के मतानुसार 'आँसू' का आलम्बन अज्ञात प्रियतम है। अर्थात् 'आँसू' में अभिव्यक्त प्रेम मूलरूप में अलौकिक या रहस्यवादी है और दूसरे के अनुसार, यह कोई लौकिक व्यक्ति है; अर्थात् 'आँसू' की प्रेमाभिव्यंजना लौकिक धरातल से सम्बन्धित है।
3. **सुख-दुःख में समन्वय**—प्रसाद जी 'आँसू' विरह का काव्य अवश्य है, लेकिन उसमें कहीं भी उन्होंने कोरे सुख की कामना नहीं की है। वे चाहते हैं कि उनके सुख का भी दुःख के साथ समन्वय हो, तभी सुख में सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकता है और उसकी परमावस्था का अनुभव भी तभी हो सकता है। इसीलिए तो वे परिणय के प्रेम-मिलन में सुख-दुःख दोनों को एक साथ नचाना चाहते हैं—

मानव-जीवन वेदी पर, परिणय हो विरह-मिलन का,
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मन का!

TOUCH 'n PASS

4. **वंचितों के आँसुओं को पोंछने का प्रयास**—प्रसादजी की सहानुभूति सदैव वंचितों के साथ रही है। क्योंकि 'आँसू' विरह-काव्य अवश्य है, लेकिन फिर भी प्रसादजी ने इसमें भी वंचितों के आँसुओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का अवसर ढूँढ़ ही लिया है। उनके आँसू पोंछने का प्रयास करते हुए उन्होंने कहा है—

फिर उन निराश नयनों की, जिनके आँसू सूखे हैं,
उस प्रलय दशा को देखा, जो चिर वंचित भूखे हैं।

5. **स्मृति की स्वाभाविकता**—'स्मृति' विरह की पहली स्थिति होती है और यदि गहराई से विचार किया जाय तो पता चलता है कि विरह का आधार ही स्मृति है, उसकी ही व्यापकता उसमें होती है। 'आँसू' में भी उसी का वर्णन अधिक हुआ है—

बस गई एक बस्ती है, स्मृतियों की इसी हृदय में,
नक्षत्र लोक फैला है, जैसे इस नील निलय में।

अत: स्पश्ट है कि भाव-पक्ष की दृष्टि से 'आँसू' एक उत्कृष्ट काव्य है, जिसमें प्रसादजी ने न केवल स्वयं के आँसुओं की व्यथा-कथा कही है, वरन् वंचितों के आँसू पोंछने का प्रयास करते हुए अपनी विश्व-दृष्टि का भी परिचय दिया है।

(ब) 'आँसू' की कलापक्षीय विशेषताएँ

कला-पक्ष के अन्तर्गत मुख्य रूप से भाषा, अलंकार और छन्द का ही विवेचन किया जाता है, शेष अंग इन्हीं में समाहित हो जाते हैं। इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

1. **भाषा**—'आँसू' छायावादी महाकाव्य है; इसलिए उसकी भाषिक रचना में वे सभी विशिष्टताएँ पाई जाती हैं, जो छायावाद में पाई जाती हैं। खड़ीबोली की शुद्धता, कोमलता तो उसमें है ही, साथ ही लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता और शब्द-प्रयोग की सतर्कता भी इसकी भाषा की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

इस करुणा-कलित हृदय में, अब विकल रागिनी बजती,
क्यों हा-हाकार स्वरों में, वेदना असीम गरजती।

2. **अलंकार-योजना**—'आँसू' में सर्वाधिक प्रयोग उपमा अलंकार का हुआ है। इसकी अलंकार-योजना सहज, स्वाभाविक रूप में प्रस्फुटित हुई है। भावों के नाना रूपों के साथ अलंकार स्वयं ही सिमटते चले आए हैं। प्रसाद की लेखनी का स्पर्श पाकर यह बड़ा सरस और मादक हो उठा है—

मादकता से आए तुम, संज्ञा से चले गए थे,
हम व्याकुल पड़े बिलखते, थे उतरे हुए नशे से।

नवीन उपमानों का प्रयोग, मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग, अमूर्त के लिए भी मूर्त उपमान आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो आँसू की अलंकार-योजना को विशिष्टता प्रदान कर देती हैं। कुछ अलंकारों के उदाहरण नीचे दिए गए हैं—

(i) **रूपक**—उपमा के पश्चात् रूपक अलंकार 'आँसू' का महत्त्वपूर्ण अलंकार है। 'आँसू' में रूपक के निरंग रूपक तथा सांगरूपक दोनों ही प्रकारों की बड़ी प्रभावी योजना मिलती है। सांगरूपक का एक दृष्टान्त निम्न प्रकार है—

मानव-जीवन वेदी पर, परिणय हो विरह-मिलन का,
दु:ख-सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मन का!

(ii) **विरोधाभास**—इस अलंकार का भी कुछ अधिक ही प्रयोग किया गया है—

जीवन में मृत्यु बसी है जैसे बिजली हो घन में।

(iii) **श्लेष**—प्रसाद जी ने श्लेष अलंकार का भी पर्याप्त प्रयोग किया है—

तुम सुमन नोचते फिरते, करते जानी अनजानी।

3. **छन्द-योजना**—'आँसू' काव्य में 28 मात्राओं के आनन्द छन्द का प्रयोग हुआ है। इस छन्द को हिन्दी काव्य में इतनी सफलता मिली कि इसका नाम ही 'आँसू' छन्द पड़ गया और इससे प्रभावित होकर परवर्ती कवियों ने भी इसका प्रयोग किया है। **आचार्य विनयमोहन शर्मा** के अनुसार—'आँसू' के प्रकाशित होने के पश्चात्, महादेवी आदि की रचनाओं में बहुत समय तक आनन्द छन्द में भावों का कल-कल निनाद सुनाई दिया।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 'आँसू' प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट है। विषय का सर्वथा नवीन ढंग से प्रस्तुतीकरण, भावों की गहनता, व्यापकता तथा वैविध्य के साथ-साथ कला-पक्ष की उत्कृष्टता उसे निःसन्देह महत्त्वपूर्ण बना देती है। इसका काव्य-वैभव आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे व्यक्ति को प्रभावित किए बिना नहीं रह सका और वे कह उठे—

''उक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है।''

प्र.4. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जीवन-परिचय देते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए। उनके काव्य में छायावादी विशेषताओं को संक्षेप में लिखिए।

उत्तर

निराला जी का जीवन-वृत्त

जन्मस्थान एवं जीवनकाल—महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' मुक्तछन्द के प्रवर्तक थे। इनका जन्म सन् 1899 ई० में बंगाल प्रान्त के मेदिनीपुर जिले में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। इनकी प्राथमिक शिक्षा राज्य के हाईस्कूल में हुई। ये बचपन से ही घुड़सवारी, कुश्ती और खेती के बड़े शौकीन थे। बालक सूर्यकान्त के सिर से माता-पिता का साया अल्पायु में ही उठ गया था। इनको बाँग्ला और हिन्दी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने संस्कृत और हिन्दी-साहित्य का भी अध्ययन किया। भारतीय दर्शन में इनकी पर्याप्त रुचि थी।

निरालाजी का जीवन पारिवारिक रूप से अत्यन्त कष्टमय रहा। इनकी पत्नी एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म देकर स्वर्ग सिधार गईं। इसी समय इनका परिचय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से हुआ। इनके सहयोग से निरालाजी ने 'समन्वय' और 'मतवाला' पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

निरालाजी को अपने उदार स्वभाव के कारण बार-बार आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। आर्थिक अभावों के बीच ही इनकी पुत्री सरोज का स्वर्गवास हो गया। इस अवसादपूर्ण घटना से व्यथित होकर ही इन्होंने 'सरोज स्मृति' नामक कविता लिखी। दुःख और कष्ट से परिपूर्ण इनके व्यक्तित्व में अहम् की मात्रा बहुत अधिक थी।

आप पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्दजी का बहुत प्रभाव पड़ा। इनकी कविताओं में छायावादी, रहस्यवादी और प्रगतिवादी विचारधाराओं का भरपूर समावेश हुआ है। सन् 1961 ई० (संवत् 2018) में इलाहाबाद में निरालाजी की मृत्यु हो गई।

साहित्यिक व्यक्तित्व—अपने युग की काव्य-परम्परा के प्रति प्रबल विद्रोह का भाव लेकर काव्य-रचना करनेवाले महाकवि निराला जी हिन्दी काव्य-जगत् में एक विशिष्ट कवि के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। उन्होंने तत्कालीन काव्य-परम्परा पर आधारित छन्द एवं बिम्ब-विधान की उपेक्षा करके स्वच्छन्द एवं छन्द-मुक्त कविताओं की रचना प्रारम्भ की और नवीन बिम्ब-विधान एवं काव्य-चित्रों को प्रस्तुत किया। इसके परिणामस्वरूप निराला को तत्कालीन साहित्यिक वर्ग के भारी विरोध का सामना करना पड़ा। उनकी कविता 'जुही की कली' उस युग के साहित्यवेत्ताओं के लिए एक चुनौती बनकर सामने आई। उसमें अपनाई गई छन्दमुक्तता एवं उसके प्रणय-चित्र तत्कालीन मान्यताओं के सर्वथा विपरीत थे। परिणामस्वरूप निराला को भारी विरोध का सामना करना पड़ा, किन्तु निराला ने सबकी उपेक्षा की और अपनी काव्य-प्रवृत्ति को ही महत्त्व देकर रचनाएँ करते रहे। अपने कवि-जीवन के प्रारम्भ में निराला ने 'रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता' के द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'समन्वय' का सम्पादन-भार सँभाला। तत्पश्चात् वे आचार्य द्विवेदीजी के सम्पर्क में आए और 'मतवाला' नामक पत्रिका के सम्पादक-मण्डल में सम्मिलित हो गए। इसके तीन वर्ष उपरान्त उन्होंने लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली 'गंगा पुस्तकमाला' का सम्पादन आरम्भ किया तथा 'सुधा' नामक पत्रिका का सम्पादकीय लिखना शुरू कर दिया था। यह बड़े स्वाभिमानी प्रवृत्ति के थे। इसी कारण यह यहाँ भी सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाये और लखनऊ छोड़कर इलाहाबाद आ गए। अपना शेष जीवन उन्होंने इलाहाबाद में स्वतन्त्र रूप से काव्य-साधना करते हुए व्यतीत किया।

प्रमुख कृतियाँ—निराला सर्वतोन्मुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। इन्होंने कविता के अतिरिक्त उपन्यास, निबन्ध, कहानियाँ, आलोचना और संस्मरण भी लिखे हैं। उनकी प्रमुख कृतियों का विवेचन निम्न प्रकार है—

1. **परिमल**—इस रचना में अन्याय और शोषण के प्रति तीव्र-विद्रोह एवं निम्नवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की गई है।
2. **गीतिका**—इसकी मूलभावना शृंगारिक है, तथापि अनेक गीतों में मधुरता के साथ आत्मनिवेदन का भाव भी व्यक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इस रचना में प्रकृति-वर्णन एवं देशप्रेम की भावना का भी चित्रण किया गया है।
3. **राम की शक्ति-पूजा**—इसमें कवि का ओज, पौरुष तथा छन्द-सौष्ठव प्रकट हुआ है।

4. **सरोज-स्मृति**—यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है।
5. **अनामिका**—इसमें संगृहीत रचनाएँ निराला के कलात्मक स्वभाव की परिचायक हैं।
6. **अन्य रचनाएँ**—'बेला', 'नए पत्ते', 'आराधना', 'अर्चना', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'अपरा' आदि भी इनकी अन्य सुन्दर काव्य-रचनाएँ हैं।
7. **गद्य-रचनाएँ**—गद्य-रचनाएँ हैं—'अप्सरा', 'अलका', 'लिली', 'चतुरी-चमार', 'प्रभावती' और 'निरुपमा'।

निराला के काव्य में छायावादी विशेषताएँ

निराला जी हिन्दी-साहित्य के निराले साहित्यकार हैं। उनकी कविता में छायावादी सीमाओं में बाँधे रखनेवाले गुण ही नहीं, बल्कि आज तक की नवीन-से-नवीन काव्यधारा के कुछ-न-कुछ लक्षण देखने को मिल जाते हैं। इसलिए निराला की कविता वह शाश्वत कविता है, जो युगों-युगों तक अपनी ताजगी के कारण अमर बनी रहेगी। निराला का अप्रतिम व्यक्तित्व उनकी कविता में पग-पग पर झलकता मिलता है। स्वानुभूत सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति उनकी '**सरोज-स्मृति**', '**राम की शक्ति-पूजा**' जैसी कृतियों में हुई है, किन्तु ये कृतियाँ उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए भी सामाजिक यथार्थ की ओर संकेत करती हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रवाह उनकी कविता में देखने को मिल जाता है कि वह छायावादी रोमानियत से कोसों दूर दिखाई देता है। कवि '**कुकुरमुत्ता**' में उपेक्षित, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए पूँजीवादी शक्तियों (शोषक) के प्रति तीखी घृणा व्यक्त करता है। कहीं उसका स्वर क्रान्ति का भी हो जाता है। 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'जागो फिर एक बार' में यही स्थितियाँ हैं; अत: यह स्वाभाविक है कि निराला की कविता को छायावादी घेरे में बाँधे रखना उचित नहीं है, फिर भी उनके काव्य में वे सभी लक्षण मिल जाते हैं, जो छायावादी कविता के प्रमुख लक्षण हैं।

प्र.5. निराला की काव्य-शैली का नाम देते हुए इसका विस्तृत विवेचन कीजिए।

उत्तर

निराला की शैली

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपने काव्य में प्राय: **गीति शैली** का प्रयोग किया है। उनकी गीति-शैली में भाषा की ही भाँति विविधता विद्यमान है, जिसका विवेचन निम्न प्रकार है—

1. **ओजपूर्ण शैली**—निरालाजी ने स्वाभिमान और पौरुष जगानेवाली पंक्तियों में ओजपूर्ण शैली का प्रयोग किया है। '**राम की शक्ति-पूजा**', '**बादल-राग**' '**तुलसीदास**', और '**जागो फिर एक बार**' में इसी प्रकार की शैली परिलक्षित होती है। 'बादल-राग' का निम्न उदाहरण देखिए—

   अरे वर्ष के हर्ष! बरस तू बरस-बरस रसधार!
   पार ले चल तू मुझको, बहाँ, दिखा मुझको भी निज, गर्जन-भैरव संसार!

2. **समास शैली**—इनके गीतों में समास-शैली का प्रयोग पर्याप्त रूप में मिलता है। जहाँ लम्बे-लम्बे समास हैं, वहाँ पर भाषा क्लिष्ट हो गई है। '**तुलसीदास**' का एक उदाहरण देखिए—

   बाँधो, बाँधो किरणें चेतन, तेजस्वी, हे तमज्जीवन!
   आती भारत की ज्योतिर्घन, महिमा बल।

3. **चित्रात्मक शैली**—कवि ने प्रकृति तथा नारी के विविध चित्र प्रस्तुत करने में चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। '**वसन वासन्ती लेगी**' में डाल का वर्णन करते हुए कवि ने इसी शैली को अपनाया है—

   रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी, देख, खड़ी करती तप अपलक,
   हीर-कसी समीर-माला जप, शैलसुता अपर्ण-अशना
   पल्लव-बसना बनेगी-वसन वासन्ती लेगी।

4. **व्यंग्यात्मक शैली**—कवि ने जीवन की विषमताओं एवं कुरूपताओं के चित्रण में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। '**बेला**', '**नए पत्ते**', '**कुकुरमुत्ता**', '**अणिमा**' आदि में जहाँ सामाजिक यथार्थ का वर्णन है, वहाँ इसी शैली के दर्शन होते हैं। 'कुकुरमुत्ता' में कवि गुलाब के माध्यम से धनीवर्ग पर व्यंग्य करते हुए कहता है—

   अबे, सुन बे गुलाब, भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो-आब,
   खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिस्ट!

5. **लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली**—इन्होंने लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। निराला जी ने 'जुही की कली' में एक नववधू का रूप प्रतीक द्वारा ही चित्रित किया है; जैसे—

सोती थी, जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल, डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं, चूक क्षमा माँगी नहीं;

6. **माधुर्यपूर्ण मदिर शैली**—निराला जी ने शृंगार, भक्ति, विनय-वन्दना, करुण और प्रकृति-चित्रण आदि कोमल भावों की व्यंजना में माधुर्यपूर्ण मदिर शैली का प्रयोग किया है। '**सन्ध्या-सुन्दरी**' में यह शैली स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है—

दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी, धीरे-धीरे-धीरे।

7. **गजल शैली**—निराला जी ने 'बेला' की कविताओं में उर्दू की गज़ल शैली अपनाई है। इसमें सामाजिक और वैयक्तिक स्वर घुले-मिले हैं। यद्यपि यहाँ प्रयोग की भूमिका है, लेकिन उनकी कितनी ही रचनाएँ ऐसी हैं, जो आलोचना का विषय रही हैं। जैसे—

बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ!
ऊपर वह बर्फ गली है,
नीचे यह नदी चली है,
सख्त तने के ऊपर नर्म कली है;
इसी तरह, पर, दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ।

8. **गेय शैली**—इनके काव्य में गेय शैली सर्वत्र विद्यमान है। गीत-रचना उन्हें सर्वाधिक प्रिय थी। इनके द्वारा लगभग 400 गीतों की रचना की गई। 'अनामिका' और 'गीतिका' में उन्होंने इन्हीं गीतों का संकलन किया है। संगीतात्मकता की दृष्टि से उनका काव्य अत्यधिक सफल है। उनके गीतों में स्वच्छन्दता, भावों की तीव्रता, संक्षिप्तता, वैयक्तिकता एवं कलात्मकता आदि गुण स्पष्टत: देखे जा सकते हैं।

9. **सम्बोधन शैली**—कवि ने कुछ गीत सम्बोधन शैली में भी लिखे हैं। '**यमुना के प्रति**', '**मित्र के प्रति**' आदि सम्बोधन गीत हैं, जिसमें विचारतत्त्व एवं भावतत्त्व की प्रधानता है। '**अणिमा**' में संकलित महापुरुषों के प्रति भी कुछ सम्बोधनपरक रचनाएँ दृष्टिगत होती हैं। सम्बोधि-गीतों में गहनता, कल्पना, सांस्कृतिक प्रेरणा, चित्रात्मकता तथा रसात्मकता का गुण विद्यमान है; जैसे—

हे जननि, तुम तपश्चरिता, जगत की गति, सुमति भरिता।

10. **प्रबन्ध एवं मुक्तक शैली**—निराला जी द्वारा प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया गया है। उनकी अधिकतर रचनाएँ मुक्तक शैली के अन्तर्गत समाहित होती हैं, लेकिन '**राम की शक्ति-पूजा**', '**तुलसीदास**' एवं '**सरोज-स्मृति**' आदि लम्बी कविताओं में प्रबन्ध-शैली के भी दर्शन होते हैं।

11. **संश्लिष्ट शैली**—निराला की कुछ रचनाओं में संश्लिष्ट शैली भी मिलती है। '**जुही की कली**', '**सन्ध्या-सुन्दरी**', '**शेफालिका**' आदि कविताएँ दृश्यात्मक होने के कारण क्लिष्ट तथा संश्लिष्ट शैली में लिखी गई हैं।

12. **सांकेतिक शैली**—निराला जी ने प्रकृति, छवि एवं मानवीय सौन्दर्य के चित्रण में सांकेतिक शैली का प्रयोग किया है। छायावादी काव्य में सांकेतिक शैली का विशिष्ट स्थान है। '**यामिनी जागी**' कविता में कवि ने स्वकीया का रूपांकन करते हुए नारी का आकर्षक रूप प्रस्तुत किया है। '**शेफालिका**' में भी यह शैली मिलती है। '**सखि वसन्त आया**' में किसी एक आंगिक सौन्दर्य के द्वारा अनेक रूपों को चित्रण किया गया है; जैसे—

किसलय वसना नव वय लतिका, मिली मधुर प्रिय उर तरु पतिका।

13. **अलंकृत शैली**—इनके काव्य में अलंकृत शैली की बहुलता है। विविध अलंकारों का प्रयोग करते हुए निराला जी ने अपने विभिन्न भावों को अभिव्यक्त किया है। अभिव्यक्ति की सुन्दरता के लिए सानुप्रास शब्द-योजना, रूपक, मानवीकरण,

उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। **'वसन वासन्ती लेगी'** में यह शैली स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है—

मधुव्रत में रत वधू मधुर फल, देगी जग को स्वाद-तोष-दल,
गरलामृत शिव आशुतोष-बल, विश्व सकल-नेगी-वसन वासन्ती लेगी।

प्र.6. सुमित्रानन्दन पन्त के जीवन-परिचय, साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतियों पर प्रकाश डालते हुए इनके काव्य का क्रमिक विकासकाल लिखिए।

उत्तर

सुमित्रानन्दन पन्त का जीवन-परिचय

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। इनका जन्म 20 मई, सन् 1900 ई० (संवत् 1957) को अल्मोड़ा के निकट कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। जन्म के 6 घण्टे बाद ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता एवं दादी के वात्सल्य की छाया में इनका लालन-पालन हुआ। इन्होंने सात वर्ष की अवस्था से ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। पन्तजी की शिक्षा का पहला चरण अल्मोड़ा में पूरा हुआ। यहीं पर उन्होंने अपना नाम गुसाईंदत्त से बदलकर सुमित्रानन्दन रख लिया। सन् 1919 ई० में पन्तजी अपने मँझले भाई के साथ बनारस चले आए। यहाँ पर उन्होंने क्वीन्स कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। सन् 1950 ई० में वे 'ऑल इण्डिया रेडियो' के परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए और सन् 1957 ई० तक वे प्रत्यक्ष रूप से रेडियो से जुड़े रहे। **28 दिसम्बर, सन् 1977 ई० (संवत् 2034)** को सरस्वती का यह पुजारी इस भौतिक संसार को सदैव के लिए छोड़ गया

साहित्यिक व्यक्तित्व—सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी युग के प्रख्यात कवि थे। यह सात वर्ष की अल्पायु से ही कविताओं की रचना करने लगे थे। सन् 1916 ई० में उनकी प्रथम रचना सामने आई। 'गिरजे का घण्टा' नामक रचना के बाद वे निरन्तर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। सन् 1919 ई० में इलाहाबाद के 'म्योर कॉलेज' में प्रवेश लेने के बाद उनकी काव्यात्मक रुचि और भी अधिक विकसित हुई। उनकी रचनाएँ 'उच्छ्वास' एवं 'ग्रन्थि' सन् 1920 ई० में प्रकाशित हुईं। सन् 1921 ई० में उन्होंने महात्मा गाँधी के आह्वान पर कॉलेज छोड़ दिया और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में शामिल हो गए, परन्तु अपनी कोमल प्रकृति के कारण सत्याग्रह में सक्रिय रूप से सहयोग नहीं कर पाए और सत्याग्रह छोड़कर पुनः काव्य-साधना में तल्लीन हो गए।

पन्त जी के सन् 1927 ई० में 'वीणा' एवं सन् 1928 ई० में 'पल्लव' नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। इसके उपरान्त सन् 1939 ई० में कालाकांकर आकर इन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन प्रारम्भ किया और प्रयाग आकर 'रूपाभ' नामक एक प्रगतिशील विचारोंवाली पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन आरम्भ किया। सन् 1942 ई० के बाद वे महर्षि अरविन्द घोष से मिले एवं उनसे प्रभावित होकर अपने काव्य में उनके दर्शन को मुखरित किया। पन्त जी को इनकी रचना 'कला और बूढ़ा चाँद' पर 'साहित्य अकादमी', 'लोकायतन' पर 'सोवियत' और 'चिदम्बरा' पर 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

पन्त जी के काव्य में कल्पना तथा भावों की सुकुमार कोमलता के दर्शन होते हैं। इन्होंने प्रकृति तथा मानवीय भावों के चित्रण में विकृत एवं कठोर भावों को स्थान नहीं दिया है। इनकी छायावादी कविताएँ अत्यन्त कोमल तथा मृदु भावों को अभिव्यक्त करती हैं। इसी कारण पन्त को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है।

कृतियाँ—सुमित्रानन्दन पन्त बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। उन्होंने अपने विस्तृत साहित्यिक जीवन में विविध विधाओं में साहित्य-रचना की। उनकी प्रमुख कृतियों का विवरण निम्न प्रकार है—

1. **लोकायतन**—इस महाकाव्य में कवि की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विचारधारा दृष्टिगत हुई है। इस रचना में कवि ने ग्राम्य-जीवन और जन-भावना को छन्दोबद्ध किया है।
2. **गुंजन**—इसमें प्रकृति-प्रेम और सौन्दर्य से सम्बन्धित गम्भीर एवं प्रौढ़ रचनाएँ संकलित हैं।
3. **ग्रन्थि**—इस काव्य-संग्रह में वियोग का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ है। प्रकृति यहाँ भी कवि की सहचरी रही है।
4. **वीणा**—इस रचना में पन्तजी के प्रारम्भिक प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य से पूर्ण गीत संग्रहीत हैं।
5. **पल्लव**—इस संग्रह में प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य के व्यापक चित्र प्रस्तुत किए गए हैं।
6. **अन्य कृतियाँ**—'युगपथ', 'उत्तरा', 'स्वर्णधूलि', 'स्वर्ण-किरण' तथा 'अतिमा' आदि में पन्तजी महर्षि अरविन्द के नवचेतनावाद से प्रभावित हैं। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में कवि समाजवाद और भौतिक दर्शन की ओर उन्मुख हुआ है। इन रचनाओं में पन्तजी ने दीन-हीन और शोषित वर्ग को अपने काव्य का आधार बनाया है। 'साठ वर्ष: एक रेखांकन' इनकी आत्मकथा, 'हार' उपन्यास, 'ज्योत्स्ना' नाटक, 'रजत-शिखर' 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' रूपक विधा की रचनाएँ हैं।

पन्त-काव्य का क्रमिक विकास

प्रकृति के सुकुमार कवि कहे जाने वाले पन्तजी का रचनाकाल प्राय: पाँच दशकों में विभक्त है। 'वीणा' के प्रकाशनकाल से उनके स्वर्गवासी होने तक पन्तजी की विचारधारा ने जितने मोड़ लिए हैं, उनको वर्गीकृत करना बहुत जटिल है। फिर भी यदि विषय पर कम और शैली पर अधिक ध्यान दिया जाए तो पन्तजी की काव्य-रचना की प्रगति तीन चरणों में विभाजित की जा सकती है—

1. प्राकृतिक सौन्दर्यवादी (छायावादी) युग—'वीणा' से 'गुंजन' तक (सन् 1918 ई० से 1934 ई०),
2. यथार्थवादी (प्रगति-प्रयोगवादी) युग—'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक (सन् 1934 ई० से 1940 ई०),
3. अन्तश्चेतनावादी (दार्शनिक) युग— 'स्वर्ण-किरण' से 'लोकायतन' तक (सन् 1947 ई० से उनके देहान्त तक)।

प्र.7. महादेवी वर्मा का जीवन-परिचय देते हुए इनकी काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

महादेवी वर्मा का जीवन-परिचय

श्रीमती महादेवी वर्मा 'पीड़ा की गायिका' अथवा 'आधुनिक युग की मीरा' के नाम से विख्यात थीं। इनका जन्म सन् 1907 ई० (संवत् 1964) में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद नामक नगर में होलिका दहन के पुण्य पर्व के दिन हुआ था। उनकी माता हेमरानी साधारण कवयित्री थीं। वे श्रीकृष्ण में अटूट श्रद्धा रखती थीं। उनके नाना भी ब्रजभाषा में कविता करते थे। नाना तथा माता के इन गुणों ने महादेवीजी को भी प्रभावित किया। नौ वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह **स्वरूपनारायण वर्मा** से हो गया था, लेकिन इन्हीं दिनों उनकी माता का भी देहान्त हो गया। माँ का साया सिर से उठ जाने पर भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा तथा पढ़ने में और अधिक मन लगाया, फलस्वरूप उन्होंने मैट्रिक से लेकर एम०ए० तक की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। बहुत समय तक वे 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' में प्रधानाचार्या के पद पर कार्यरत रहीं। महादेवीजी 80 वर्ष की अवस्था में 11 सितम्बर, 1987 ई० (संवत् 2044) को परलोक सिधार गईं।

महादेवीजी की प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **नीरजा**—इसमें प्रकृतिप्रधान गीत संकलित हैं। इन गीतों में सुख-दु:ख को अनुभूतियों को वाणी मिली है।
2. **सान्ध्यगीत**—इसके गीतों में परमात्मा से मिलन का आनन्दमय चित्रण है।
3. **नीहार**—इस काव्य-संकलन में भावमय गीत संकलित हैं। इनमें वेदना का स्वर मुखरित हुआ है।
4. **रश्मि**—इस संग्रह में आत्मा-परमात्मा के मधुर सम्बन्धों पर आधारित गीत संकलित हैं।
5. **दीपशिखा**—इसमें रहस्य-भावनाप्रधान गीत संकलित है।

इनके अतिरिक्त '**अतीत के चलचित्र**', '**स्मृति की रेखाएँ**', '**शृंखला की कड़ियाँ**' आदि इनकी प्रमुख गद्य रचनाएँ हैं। 'यामा' तथा 'सन्धिनी' नाम से इनके विशिष्ट गीतों के संग्रह भी किये गये हैं।

महादेवी वर्मा की काव्यगत विशेषताएँ

भाव-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से महादेवी वर्मा के काव्य की विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(अ) भाव-पक्ष की विशेषताएँ

महादेवी जी के काव्य के भाव-पक्ष की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **अलौकिक प्रेम का चित्रण**—इनका सम्पूर्ण काव्य प्रेम-काव्य है। उनके प्रारम्भिक गीतों में जिस अलौकिक प्रेम का अंकन हुआ है, वही आगे चलकर एक प्रकार की साधना बन गया। महादेवी वर्मा के प्रारम्भिक गीतों में ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं, जिनके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके प्रेम का आलम्बन अलौकिक ब्रह्म है। इस अलौकिक ब्रह्म के विषय में कभी उनके मन में मिलन की प्रबल भावना जाग्रत हुई है और कभी रहस्यमयी प्रबल जिज्ञासा; जैसे—

   सजनि, कौन तम में परिचित-सा, सुधियों-सा छाया-सा आता।
   सूने-से सस्मित चितवन से, जीवन दीप जला जाता॥

2. **प्रकृति-चित्रण**—महादेवी जी ने छायावादी काव्य में प्रकृति का वर्णन बहुत विस्तार से और अनेक रूपों में किया है। फलस्वरूप कुछ आलोचक इसे प्रकृति-काव्य कहना ही सर्वोचित समझते हैं। महादेवीजी ने भी प्रकृति का चित्रण विविध

रूपों में किया है। उनके काव्य में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन, उपदेशिका, पूर्वपीठिका आदि रूपों में प्रस्तुत हुई है। उन्होंने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप करके उसे आत्मीय बना लिया है; जैसे—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त-रजनी!
तारकमय नव वेणी-बन्धन, शीश-फूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित-घन अवगुण्ठन, मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी!

3. **वेदना-भाव**—वेदना-भाव महादेवीजी के काव्य में पर्याप्त झलकता है। उनकी वेदना में साधना, संकल्प और लोक-कल्याण की भावना निहित है। महादेवीजी को वेदना अत्यन्त प्रिय है। उनकी अभिलाषा है कि उनके जीवन में सदैव अतृप्ति बनी रहे और उनकी आँखों से निरन्तर आँसुओं की धारा बहती रहे—

मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें, भरतीं आँसू के सागर।

महादेवीजी के लिए वेदना विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों का साधन बन गई। जिस प्रियतम की प्राप्ति वेदना से हुई है, उस प्रियतम में भी वे पुन: वेदना को ही ढूँढने की कामना करती हैं—

तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।

4. **रहस्यात्मकता**—इनके काव्य में रहस्य की भावना पर आधारित स्वर मुख्य रूप से मुखरित हुआ है। आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए जिन विविध सोपानों को पार करना पड़ता है, वे सभी महादेवीजी के काव्य में दृष्टिगत होती हैं। उनके रहस्यवाद की प्रमुख विशेषताएँ—मनुष्य का प्रकृति से तादात्म्य, प्रकृति पर चेतनता का आरोप, प्रकृति में रहस्यों की अनुभूति, असीम सत्ता और उसके प्रति समर्पण तथा सार्वभौमिक करुणा आदि है। महादेवीजी का प्रियतम निराकार, अगोचर और सर्वव्यापक है। वे पूछती हैं—

कौन तुम मेरे हृदय में?
कौन मेरी कसक में नित, मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में, घुमड़ घिर झरता अपरिचित?

(ब) कला-पक्ष की विशेषताएँ

सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य के कला-पक्ष की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान**—उपमान दो प्रकार के होते हैं—स्थूल और सूक्ष्म। महादेवीजी ने अपने काव्य में सूक्ष्म उपमानों का प्रयोग किया है। साँसों को सौरभ के समान बताते हुए कवयित्री ने कहा है—

इन पर सौरभ की साँसें लुट-लुट जातीं दीवानी।

2. **लाक्षणिकता**—महादेवीजी का काव्य लाक्षणिकता की दृष्टि से भव्य है। उन्होंने अपने अनेक गीतों में भावों का सुन्दर चित्रांकन किया है। जिस प्रकार थोड़ी-सी रेखाओं और रंगों के माध्यम से कुशल चित्रकार किसी भी चित्र को उभार देता है, उसी प्रकार महादेवी ने थोड़े-से शब्दों के माध्यम से ही अनेक सुन्दर चित्र चित्रित किए—

देखकर कोमल व्यथा को आँसुओं के सजल रथ में,
मोम-सी साधें बिछा दी थीं इसी अंगार-पथ में।

3. **प्रतीक-योजना**—इनके काव्य में प्रतीकों का आधिक्य है। बदली, दीप, सजल, नयन, सान्ध्य-गगन, सरिता, पंकज, किरण, विद्युत्, रात्रि, गगन, जलधारा, अन्धकार, ज्वाला, प्रकाश आदि उनके प्रमुख प्रतीक हैं। उनके प्रतीकों के अर्थ भी अपने ही हैं; जैसे—'मैं नीर-भरी दु:ख की बदली' में 'बदली' से आशय 'करुणा से परिपूर्ण हृदयवाली' से है। इसी प्रकार महादेवी जी ने कुछ गिने-चुने प्रतीकों को अपनाकर एवं उनमें नवीन अर्थ भरकर अपनी प्रतीक-योजना को समृद्ध और भावों को प्रभावशाली बना दिया है।

TOUCH 'n PASS

4. **लोकगीत के तत्त्व**—इनका काव्य गीतिकाव्य है। अपने गीतिकाव्य में कवयित्री ने लोकगीत की शैली को भी अपनाया है। लोकगीतों का लयात्मक संगीत इनके गीतों में मिल जाता है; जैसे—

जो तुम आ जाते एक बार!
हँस उठते पल में आर्द्र नयन, धुल जाता ओठों से विषाद।
छा जाता जीवन में वसन्त, लुट जाता चिर संचित विराग।
आँखें देती सर्वस्व वार!

5. **कोमलकान्त पदावली**—कवयित्री अपने शब्द-चयन के प्रति अत्यधिक जागरूक रही हैं। उन्होंने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है, जो उनके भावों को प्रस्तुत करने में पूरी तरह समर्थ और सक्षम हैं। तत्सम शब्दों के साथ-साथ उन्होंने आवश्यकतानुसार तद्भव शब्दों को भी अपनाया है। वर्णमैत्री भी इनकी शब्द-योजना की प्रमुख विशेषता है; जैसे—

वे मुस्काते फूल, नहीं-जिनको आता है मुरझाना
वे तारों के दीप, नहीं-जिनको भाता है बुझ जाना।

प्र.8. निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) मधुर विश्रांत और एकांत-जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुंदर मौन और चंचल मन का आलस्य।

(ख) देखते देखा मुझे तो एक बार, उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं, देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं, सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर, ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा- "मैं तोड़ती पत्थर।"

(ग) नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी
तार भी, आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृत भी हूँ;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

उत्तर **पद्यांशों की व्याख्या**

(क) मधुर विश्रांत ..... का आलस्य।

शब्दार्थ—विश्रान्त = थका हुआ; **एकान्त** = सुनसान, निर्जन; **रहस्य** = भेद; **मौन** = शांति, चुप्पी; **करुणामय** = करुणा से पूर्ण।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश जयशंकरप्रसाद कृत महाकाव्य 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग से ली गई हैं।

प्रसंग—इन पंक्तियों में कवि ने बताया है कि श्रद्धा मनु को देखकर स्तब्ध-सी हो गयी है तथा यह जानने का प्रयास करती है कि सह सुन्दर रूपाकृति वाला मनुष्य कौन है?

व्याख्या—सुन्दर रूपाकृति वाले चुपचाप बैठे हुए मनु को देखकर स्तब्ध (या मुग्ध-सी) श्रद्धा जानना चाहती है कि वह कौन है जो इस एकान्त स्थान में बैठा हुआ अपनी सुन्दरता से सारे वातावरण को सुन्दर बना रहा है)। श्रद्धा को मनु ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे संसार का सम्पूर्ण रहस्य इस एकान्त स्थान पर थककर बैठा हो जो अपने सुलझे हुए रूप में अत्यन्त मधुर सुलझ कर दिखाई दे रहा है। मनु चुपचाप बैठे हैं और चिंतन में लीन हैं, उनके मुख पर करुणा छाई हुई है। वे इस शांत समुद्र में ऐसे दिखाई देते हैं मानो स्वयं मौन ही सुन्दर रूप धारण करके बैठा हो। इस मौन के कारण वे करुण भी दिखाई पड़ते हैं। अथवा मनु इस शांत और थकी हुई-सी (विश्रान्त) मुद्रा में ऐसे प्रतीत होते थे मानों मन की चंचलता आलस्य से भरकर बैठी हो।

TOUCH 'n PASS

विशेष—अलंकार दर्शन—(अ) उल्लेख अलंकार-मनु का अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है—(i) जगत का सुलझा हुआ है। (ii) करुणामय सुन्दर मौन (iii) चंचल मन का आलस्य।

(ब) रूपक अलंकार—मनु पर रहस्य, मौन और आलस्य का आरोप होने से पृथक्-पृथक् तीन रूपक हैं।

(स) 'विशेषण विपर्यय अलंकार'—'करुणामय मौन' में

(द) विरोधाभास अलंकार—(i) 'सुलझा हुआ रहस्य' में (ii) 'चंचल मन का आलस्य' में।

(ख) देखते देखा ..... तोड़ती पत्थर।

शब्दार्थ—सीकर = पसीने की बूँद; **दृष्टि** = नजर; **माथा** = मस्तक; **क्षण** = पल; **कर्म** = कार्य।

संदर्भ—प्रस्तुत पद्यांश सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित 'वह तोड़ती पत्थर' से अवतरित है।

प्रसंग—इस पद्यांश में कवि निराला जी ने एक पत्थर तोड़ने वाली मजदूर के माध्यम से शोषित समाज के जीवन की विषमता का वर्णन किया है।

व्याख्या—ऐसे में जब उसने मुझे उसकी ओर देखते हुए देखा; तो एक बार उस बनते हुए भवन को और एक बार मुझे लक्षित करके कि मैं अकेला ही था। उसने अपने तार-तार होकर फटे कपड़ों की ओर देखा। ऐसा लगा जैसे अपनी उस स्थिति द्वारा ही उसने मुझको अपनी दीन अवस्था की पूरी करुण गाथा उसी तरह सुना दी, जिस प्रकार कोई सितार पर सहज भाव से उँगलियाँ चलाकर अनोखी झंकार उत्पन्न कर देता है। एक क्षण तक कवि की ओर देखने के पश्चात् वह श्रमिक युवती काँप उठी। उसके मस्तक से पसीने के कण छलक गए तत्पश्चात् वह फिर अपने कर्म अर्थात् पत्थर तोड़ने में लग गई।

विशेष—1. सरल भाषा का प्रयोग है एवं मार्मिक कविता है।

2. शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति को दर्शाया है।

(ग) नाश भी हूँ मैं ..... स्मित की चाँदनी भी हूँ।

शब्दार्थ—नाश = अंत; **चरम** = अत्यन्त; **आसक्ति** = मोह; **तम** = अन्धकार; **आघात** = चोट; **मधु** = मदिरा; **मधुप** = मदपान करने वाला।

सन्दर्भ—'मैं नीर भरी दुख की बदली' छायावाद की प्रमुख स्तम्भ महादेवी वर्मा की रचना है। यह उनके कविता संग्रह 'यामा' से ली गयी है।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में महादेवी वर्मा ने अद्वैतवादी दर्शन के आधार पर आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की व्याख्या की है। अपने अनन्त और अज्ञात प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कवयित्री आत्म-परिचय देती हैं।

व्याख्या—आत्म-परिचय देते हुए कवयित्री महादेवी वर्मा कहती हैं—मैं नाश भी हूँ और विकास का क्रम भी अर्थात् परमात्मा स्वरूप होने के कारण मैं ही नाश करती हूँ और मैं ही नवसृजन करती हूँ। मुझ में आत्मत्याग का दिन के समान प्रकाश है और रात्रि के अन्धकार के समान मोहासक्ति भी है। वीणा के तार, उन पर किया जाने वाला प्रहार और प्रहार से निकलने वाली स्वरों की झंकार भी मैं ही हूँ। मैं ही प्याला, मैं ही हाला, मैं ही पीने वाली और मैं ही पीने के उपरान्त आने वाली मदहोशी हूँ। मैं ही अधर हूँ और मैं ही अधरों में समायी चाँदनी-सी स्मिति भी हूँ।

विशेष—1. विरोधाभासी प्रतीकों द्वारा आत्मा और परमात्मा की एकरूपता बताई गई है।

2. प्रस्तुत कविता में रहस्यवाद की छाया है।
3. उल्लेख, विरोधाभास, अनुप्रास अलंकार।
4. अद्वैत दर्शन।
5. संगीतात्मक गीत।
6. लक्षणा शक्ति।

❑

UNIT-VIII

छायावादोत्तर कवि और हिन्दी साहित्य में शोध

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अज्ञेय की रचनाएँ किस 'सप्तक' में प्रकाशित हुईं? उस सप्तक के अन्य कवियों के नाम भी बताइए।

उत्तर अज्ञेय की रचनाएँ 'तारसप्तक' (पहला सप्तक) में प्रकाशित हुईं। इस सप्तक के अन्य कवि हैं—गजानन माधव 'मुक्तिबोध', प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा।

प्र.2. अज्ञेय जी की प्रतीकात्मकता को उदाहरण सहित समझाइए।

उत्तर महाकवि अज्ञेय द्वारा अपनी कविता में सर्वत्र नए प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। उन्होंने 'हारिल पक्षी' कविता में हारिल को अपनी दुर्दमनीय स्वेच्छा का, 'इतिहास की हवा' कविता में एकलव्य को आज के बर्बर मनुष्य का और द्रोणाचार्य को आधुनिक राजनीतिज्ञ का प्रतीक व्यक्त किया है।

प्र.3. 'नदी के द्वीप' नामक कविता का मूलस्वर संक्षेप में लिखिए।

उत्तर 'नदी के द्वीप' नामक कविता का मूलस्वर—व्यक्ति को उसके अस्तित्व की यथार्थता का बोध कराना और उस अस्तित्व को गढ़ने वाले तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना है। इसलिए नदी का द्वीप एक क्षण के लिए भी अपनी जन्मदात्री नदी को भुला नहीं पाता। वह उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहता है—

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड में।
वह बृहद् भूखण्ड से हमको मिलाती है॥

प्र.4. 'नया कवि : आत्म-स्वीकार' नामक कविता में कवि द्वारा कौन-सी बात स्वीकार की गई है?

उत्तर 'नया कवि : आत्म-स्वीकार' नामक कविता में कवि द्वारा खुले मन से स्वीकार किया गया है कि आधुनिक कवियों और उनकी रचनाओं में मौलिकता का सर्वथा अभाव है। आधुनिक कवि प्राय: अपने पूर्ववर्ती कवियों के भाव, विचार या शिल्प का अनुसरण करते हैं। उनका काव्य शाब्दिक बाजीगरी से अधिक कुछ नहीं है। क्योंकि वे स्वयं उत्तम पुरुष (मैंने) के साथ कविता में उपस्थित हैं इसलिए वे वह स्वयं को भी कवियों की इसी श्रेणी में रखते हैं।

प्र.5. अज्ञेय ने 'नन्दा देवी' कविता में किसे सम्बोधित किया है एवं उसकी किस प्रमुख समस्या को उजागर किया है?

उत्तर अज्ञेय ने 'नन्दा देवी' कविता में भारत की दूसरी सबसे ऊँची पर्वत चोटी 'नन्दा देवी' को सम्बोधित किया है। इसमें उन्होंने वहाँ के विविध प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को उजागर किया है।

प्र.6. 'अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जाता है' स्पष्ट कीजिए। **(2021)**

उत्तर छायावादी काव्य का जमाना जब चला गया तो मार्क्सवाद के आधार पर हिन्दी-साहित्य में एक नया वाद जन्मा, जिसे प्रयोगवाद के नाम से जाना गया। इस प्रयोगवादी काव्यधारा का आकस्मिक विकास नहीं हुआ, इसके बीज छायावादी पतन के साथ ही पनप उठे थे। कुछ कवियों ने अपने आप को अलग खेमे का बताते हुए नई प्रकार की रचनाएँ प्रारम्भ कर दी थीं, जिनको एक नवीन दिशा 'अज्ञेय' ने ही प्रदान की। सन् 1943 ई० में इन्होंने सात प्रयोगवादी कवियों की रचनाएँ 'तारसप्तक' में प्रकाशित कीं और प्रयोगवाद के समर्थन में एक वक्तव्य भी प्रकाशित कराया। ये सात कवि इस प्रकार थे—'अज्ञेय', नेमिचन्द, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रथाकर माचवे और डॉ० रामविलास शर्मा।

प्र.7. 'नन्दा देवी' कविता में कवि द्वारा क्या चेतावनी दी गई है?

उत्तर 'नन्दा देवी' कविता में कवि द्वारा चेतावनी दी गई है कि यदि पहाड़ों पर बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण को न रोका गया तो वहाँ की सभी बर्फ पिघल जाएगी और नदियों में भयंकर बाढ़ें आएँगी, अनेक नई-नई बीमारियाँ उत्पन्न होंगी। इसके बाद ये पहाड़ रेगिस्तानों की तरह बंजर और वीरान हो जाएँगे।

प्र.8. नागार्जुन का वास्तविक नाम क्या था और इन्हें नागार्जुन नाम क्यों दिया गया?

उत्तर नागार्जुन का वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र था। ये प्राय: अपने पिता के साथ पुरोहिती के लिए आस-पास के क्षेत्रों में जाया करते थे; सम्भवत: इसी कारण इन्होंने अपना उपनाम 'यात्री' रखा। इन्होंने बहुत समय तक इसी उपनाम से रचनाएँ थीं। तत्पश्चात् इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और महात्मा बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य के नाम पर इन्होंने अपना नाम 'नागार्जुन' रख लिया। इस प्रकार वैद्यनाथ मिश्र का नाम 'यात्री' से नागार्जुन हो गया। यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोग इनके वास्तविक नाम को भूल गए।

प्र.9. हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में नागार्जुन का दृष्टिकोण लिखिए।

उत्तर महाकवि नागार्जुन का हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में दृष्टिकोण है कि भाषा में भावाभिव्यक्ति की प्रधानता को महत्त्व दिया जाय, न कि शब्दों के चयन की प्राथमिकता को। इसीलिए हिन्दी की सार्थकता में प्रयुक्त गँवारू भाषा के शब्दों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नागार्जुन स्वयं भी गँवारू भाषा को हिन्दी भाषा की रीढ़ बताते हुए टिप्पणी की है

''हिन्दी की है असली रीढ़ गँवारू बोली।''

प्र.10. 'अकाल और उसके बाद' कविता में चित्रित अकाल की भयावहता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर 'अकाल और उसके बाद' कविता में चित्रित अकाल की भयावहता का वर्णन करते हुए नागार्जुन ने लिखा है कि इस अकाल में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु कुत्ते, छिपकली और चूहे आदि जीव भी अत्यन्त प्रभावित हुए; क्योंकि अन्न के अभाव में इनके समक्ष भी जीवन का संकट आ खड़ा हुआ था।

प्र.11. नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' किस काव्य-संग्रह में संगृहीत है और इसका प्रकाशन कब हुआ था?

उत्तर नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' इनके काव्य-संग्रह 'प्यासी पथराई आँखें' में संगृहीत है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1962 ई० में हुआ था।

प्र.12. धर्मवीर भारती द्वारा अपनी सबसे प्रिय कविताएँ किन्हें कहा गया है?

उत्तर धर्मवीर भारती द्वारा अपनी सबसे प्रिय कविताएँ उन कविताओं को कहा गया है, जो गटर में पड़े शराबियों, हथौड़ा चलाते लोहारों और धूल में खेलते हुए बच्चों की भोली आँखों में झलकती हैं, लेकिन जिन्हें न अभी किसी ने लिखा, न किसी ने छापा है।

प्र.13. धर्मवीर भारती किन साहित्यिक विधाओं के लिए विख्यात हैं?

उत्तर धर्मवीर भारती सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। उन्होंने काव्य के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, नाटक तथा निबन्ध विधाओं में भी प्रसिद्ध रचनाओं का प्रणयन किया, जिनके लिए वे हिन्दी-साहित्य में विख्यात हैं।

प्र.14. 'बोआई का गीत' कविता पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर 'बोआई का गीत' नामक कविता एक वृन्दगान (कोरस) है। कोरस की परम्परानुसार इस गीत में भारत की सांस्कृतिक विरासत का मधुर गायन किया गया है। इस गीत में बताया गया है कि वर्षा ऋतु लोगों में किस आनन्द का संचार करके उनके जीवन को इन्द्रधनुष की भाँति सतरंगी बना देती है।

प्र.15. 'कविता की मौत' के सम्बन्ध में धर्मवीर भारती का अपना दृष्टिकोण क्या है?

उत्तर 'कविता की मौत' के सम्बन्ध में धर्मवीर भारती का अपना दृष्टिकोण है कि जब तक व्यक्ति अपने दु:खों के आँसू एवं कठोर परिश्रम से आए पसीने से प्रेरणा लेकर स्वर्ग (सुखों) को सींचता रहेगा, तब तक कविता मर नहीं सकती।

प्र.16. कविवर शमशेर स्वयं को कैसा कवि मानते हैं?

उत्तर कविवर शमशेर स्वयं को बहुत सफल कवि नहीं मानते। हाँ, वे स्वयं को एक जेन्यून कवि की श्रेणी में अवश्य रखते हैं। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं—'मैं बहुत कामयाब कवि शायद नहीं बन पाया हूँ, लेकिन सम्भवत: एक जेन्यून (JENUINE) कवि अपने आपको कह सकता हूँ। अगर यह ठीक है तो मेरे लिए सन्तोष की बात कम नहीं है।'

प्र.17. 'बात बोलेगी' कविता के अनुसार स्वतन्त्रता-प्राप्ति कब सम्भव हो सकती है?

उत्तर 'बात बोलेगी' कविता के अनुसार स्वतन्त्रता-प्राप्ति तभी सम्भव हो सकती है, जब जनता में एकता की भावना विद्यमान हो।

एक जनता का-अमर वर : एकता का स्वर।
-अन्यथा स्वातन्त्र्य-इति।

प्र.18. 'काल, तुझसे होड़ है मेरी' में कवि शमशेर ने अपने व्यक्तित्व को किन तत्त्वों से युक्त बताया है?

उत्तर कवि शमशेर ने अपनी कविता 'काल, तुझसे होड़ है मेरी' में अपने व्यक्तित्व को क्रान्ति, कम्यून, कम्यूनिस्ट समाज की अनेक प्रकार की कलाओं, विज्ञान और दर्शन के जीवन्त वैभव से युक्त बताया है।

प्र.19. कवि शमशेर सिंह की काव्य-शैली के चित्रात्मक एवं प्रतीकात्मक होने का प्रमुख कारण लिखिए।

उत्तर कवि शमशेर सिंह की काव्य-शैली के चित्रात्मक एवं प्रतीकात्मक होने का प्रमुख कारण यह है कि उन्हें कला के क्षेत्र में प्रसिद्धि-प्राप्त उकील बन्धुओं से कला का प्रशिक्षण प्राप्त था, जिसका स्थायी प्रभाव उनकी कविता पर पड़ा।

प्र.20. दुष्यन्त कुमार के काव्य की विविध विधाएँ उदाहरण सहित बताइए।

उत्तर कविश्रेष्ठ दुष्यन्त कुमार के काव्य की विविध विधाएँ निम्न प्रकार हैं—

काव्य-संग्रह—'सूर्य की बारात', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन के वसन्त'।

गजल-संग्रह—'साये में धूप'।

काव्यात्मक नाटक—'एक कण्ठ विषपायी'।

प्र.21. हिन्दी के किन्हीं चार आरम्भिक गजलकारों के नाम लिखिए।

उत्तर हिन्दी के चार आरम्भिक गजलकारों के नाम हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकरप्रसाद, हरिवंशराय बच्चन और शमशेरबहादुर सिंह।

प्र.22. दुष्यन्त की गजलों में उनके असन्तोष के कारण लिखिए।

उत्तर दुष्यन्त की गजलों में उनके असन्तोष के दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. लोगों में परिवर्तन अथवा विकास के लिए संघर्ष-भावना की कमी होना।
2. शासन-सत्ता की ओर से जनता की सुख-सुविधा की उपेक्षा करना।

प्र.23. दुष्यन्त का कथन है कि 'हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं है' तो फिर उनका मकसद क्या हो कसता है?

उत्तर दुष्यन्त का कथन है कि 'हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं है', मेरा मकसद सिर्फ इतना है कि किसी भी तरह देश के हालात बदलने चाहिए। दूसरे शब्दों में देश में जो गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, लाचारी, शोषण आदि की समस्याएँ व्याप्त हैं, वे सभी समाप्त होनी चाहिए।

प्र.24. गजलकार दुष्यन्त की दृष्टि में किसके लिए क्या एहतियात जरूरी है?

उत्तर गजलकार दुष्यन्त की दृष्टि में शासकवर्ग अर्थात् राजनेताओं के लिए यह एहतियात जरूरी है कि यदि वे अपनी सत्ता को कायम रखना चाहते हैं तो उन्हें वे सब कदम उठाने होंगे, जिससे कि शायर अर्थात् लेखकगण उनकी शोषण-व्यवस्था के विरुद्ध आवाज न उठा सकें। यदि लेखकों ने उनकी अधिकारों की आवाज को अपना स्वर दे दिया तो वे निश्चय ही सत्ताच्युत हो जाएँगे।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'नदी के द्वीप' कविता की मूलभावना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर 'नदी के द्वीप' कविता की मूलभावना है—व्यक्ति को अपने देश, समाज, जाति एवं मातृभूमि के प्रति सदैव सर्वस्व समर्पण का भाव रखना चाहिए। व्यक्ति अपने देश, समाज या जाति से अपने लिए जो कुछ अभिलाषा रखता है, यदि उसे अपनी अपेक्षा के अनुरूप प्राप्ति न हो, तब भी उसे उनके प्रति विद्रोह अथवा क्षोभ की भावना अपने मन में नहीं लानी चाहिए। उसे अपने मस्तिष्क में यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि उसका वास्तविक अस्तित्व उसके देश, समाज या जाति से ही है। उससे विमुख होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इनसे अलग होने पर वह रेत का एक कणमात्र रह जाता है और रेत के एक कण का होना अथवा न होना किसी विशाल भूखण्ड के लिए कोई महत्व नहीं रखता।

इस कविता में द्वीप व्यक्ति के रूप में है एवं नदी देश, समाज, जाति या मातृभूमि के रूप में व्यक्त है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके देश, समाज और जाति का अत्यधिक योगदान होता है। वही उसके व्यक्तित्व की काट-छाँट करके उसका संस्कार करते हैं। वस्तुत: संस्कारित व्यक्ति ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी होता है। यदि हम स्वयं को देश, समाज या जाति का पर्याय मानने लगेंगे या वैसा प्रयास भी करेंगे तो इससे किसी का कोई भला नहीं हो सकता, बल्कि हमारा वातावरण दूषित और तनावपूर्ण ही होगा।

इस कविता के माध्यम से कवि ने एक सन्देश यह भी दिया है कि संसार में प्रत्येक वस्तु की अपनी नियति है, वह जो चाहे जितनी कोशिश करे, पर अपनी नियति को नहीं बदल सकती; अत: व्यक्ति को उससे सन्तुष्ट रहकर ही अपना जीवनयापन करना चाहिए। इसको कवि ने द्वीप और नदी के माध्यम से व्यक्त किया है कि दोनों की अपनी-अपनी नियति है। द्वीप स्थिर और जड़ है एवं नदी निरन्तर प्रवहमान है। किसी भी स्थिति में नदी द्वीप नहीं बन सकती और द्वीप नदी नहीं बन सकते। दोनों एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि उनके सम्बन्धों की एक-दूसरे के बिना व्याख्या ही नहीं की जा सकती।

प्रकृति अर्थात् नियति जो कुछ करती है, वह ठीक ही करती है। उसके द्वारा किये गये विनाश में भी निर्माण का सन्देश अवश्य छिपा होता है; अत: हमें प्रकृति के प्रत्येक परिवर्तन को सहजभाव से स्वीकार करना चाहिए। यदि नदी कभी भीषण बाढ़ का रूप ग्रहण करती है तो उसका उद्देश्य द्वीप के अस्तित्व को निगल जाना नहीं होता, वरन् वह फिर से नए द्वीपों का निर्माण एक नए रूप में करने के लिए ही प्रलयंकारी रूप ग्रहण करती है, द्वीपों और भूखण्डों का पुन: संस्कार करती है; अत: हमें उसके प्रलयंकारी रूप के प्रति भी श्रद्धावनत ही होना चाहिए।

प्र.2. अज्ञेय ने 'नन्दा देवी' कविता में पहाड़ों की किस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है?

उत्तर कवि अज्ञेय ने 'नन्दा देवी' कविता में भारत की दूसरी सबसे ऊँची पर्वत चोटी नन्दा देवी पर दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रदूषण की समस्या को उठाया है। नन्दा देवी पर्वत की निचली पहाड़ियों पर खूब घने वन हैं। इनका कागज आदि के निर्माण के लिए निरन्तर कटान हो रहा है। इससे वहाँ पर्यावरण असन्तुलन का खतरा बढ़ गया है। वनों के इस कटान में तथा वहाँ के विकास के नाम पर वहाँ किए जा रहे स्थायी निर्माणों में लगे धुआँ उगलते ट्रकों के कारण वायु-प्रदूषण और तापमान में वृद्धि हो रही है। इससे नन्दा देवी की चोटियों की बर्फ पिघलने लगी है। इसी समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए अज्ञेय जी कहते हैं कि यदि यही हाल रहा तो आनेवाले बीस-तीस या पचास वर्षों में इन चोटियों की बर्फ बड़ी मात्रा में पिघल जाएगी, जिससे यहाँ से निकलनेवाली नदियों में भयंकर बाढ़ें आएँगी। ये बाढ़ें जहाँ खेतों में खड़ी फसलों को नष्ट करेंगी, वहीं जनसामान्य में आँतों के संक्रामक रोगों जैसे कितने ही रोगों के प्रसार का कारण बनेंगी। इससे जन-धन दोनों की अपार हानि होगी और हरा-भरा मोहक पर्वत प्रदेश बंजर और वीरान रेगिस्तान में बदल जाएगा।

नन्दा देवी पर्वत क्योंकि भारत का सीमावर्ती क्षेत्र है; अत: यहाँ सामरिक गतिविधियाँ निरन्तर बढ़ रही हैं। यहाँ ध्वनि से भी तेज गति से उड़ान भरनेवाले युद्धक विमान अपनी गर्जना और धुएँ की मोटी रेखाओं से आसमान को भरते रहते हैं। इससे यहाँ के पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कवि को चिन्ता इस बात की है कि यदि यह सब इसी गति से चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब नन्दा देवी पर्वत रेगिस्तान में बदल जाएगा।

प्र.3. निम्नलिखित पद्यांश की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत-कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह है, इसी से हम बने हैं।

उत्तर **पद्यांश की व्याख्या**

हम नदी ..... **बने हैं।**

शब्दार्थ—स्रोतस्विनी = नदी; **अंतरीप** = द्वीपों के मध्य की उठान; **कोण** = कोने; **गलियाँ** = रास्ते; **उभार** = उठाव; **सैकत-कूल** = बालू के किनारे; **गढ़ी** = निर्मित।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश 'नदी के द्वीप' नामक कविता से लिया गया है। इसके रचयिता महाकवि अज्ञेय जी हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि द्वीप के प्रतीकात्मक अर्थ के माध्यम से कहता है कि जिस प्रकार नदी द्वीप का निर्माण करती है, उसी प्रकार समाज के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि नदी ही द्वीप की निर्मात्री है। वही द्वीप को आकार में ढालती है। द्वीप नहीं चाहता कि नदी उसकी उपेक्षा करती हुई आगे बह जाय। द्वीप के कोण, उसके मध्य का उठान, उसके मार्ग, बालू के किनारे सभी गोलाकार आकृति नदी की ही देन हैं। द्वीप को नदी से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, मनुष्य का निर्माण समाज के द्वारा होता है। उसका अस्तित्व समाज के कारण ही है।

विशेष—1. भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त।

2. गेयता का अभाव है। अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया है।
3. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है। नदी, समाज का तथा द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है।

प्र.4. नागार्जुन की प्रमुख कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

नागार्जुन की कृतियाँ

सुप्रसिद्ध कवि नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत और हिन्दी भाषा में काव्य-रचना के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, निबन्ध भी लिखे हैं और कुछ अनुवाद भी किए हैं। उनकी प्रकाशित काव्य-रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(क) काव्य-संग्रह—विलाप (मैथिली 1941), बूढ़वर (मैथिली 1941), शपथ (हिन्दी 1948), चित्रा (मैथिली 1949), चना जोर गर्म (हिन्दी 1952), युगधारा (हिन्दी 1953), खून और शोले (हिन्दी 1955), सतरंगे पंखोंवाली (हिन्दी 1957), प्रेत का बयान (हिन्दी 1957), प्यासी पथराई आँखें (हिन्दी 1962), पत्रहीन नग्न गाछ (मैथिली 1967), अब तो बन्द करो हे देवी (हिन्दी 1971), तालाब की मछलियाँ (हिन्दी 1974), चन्दना (हिन्दी 1976), तुमने कहा था (हिन्दी 1980), हजार-हजार बाँहोंवाली (हिन्दी 1981), पुरानी जूतियों का कोरस (हिन्दी 1983), रत्नगर्भ (हिन्दी 1984), ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या (हिन्दी 1985), आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने (हिन्दी 1986)।
'अपने खेत में', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', 'इस गुबार की छाया में', 'ओममन्त्र', 'भूल जाओ पुराने सपने' इनकी कुछ अन्य प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं। 'भस्मांकुर' इनका बहुत प्रसिद्ध खण्डकाव्य है।

(ख) उपन्यास—रतिनाथ की चाची (1984), बलचनमा (1952), बाबा बटेसरनाथ (1954), वरुण के बेटे (1954), दुःखमोचन, इमरितिया, उग्रतारा, जमनिया के बाबा, कुंभीपाक (1970), अभिनन्दन (व्यंग्यपरक 1970), नई पौध, पारो मैथिली एवं हिन्दी दोनों में (1970)। हीरक जयन्ती भी इनका मैथिली का प्रमुख उपन्यास है।

(ग) कहानी-संग्रह—आसमान में चन्दा तेरे (1982)।

(घ) निबन्ध-संग्रह—अन्नहीनम्, क्रियाहीनम् (1983)।

(ङ) अनुवाद—'मेघदूत', 'गीतगोविन्द', 'विद्यापति की पदावली'। 'मैं मिलिट्री का पुराना घोड़ा' इनकी बाँग्ला से हिन्दी में अनूदित प्रमुख रचना है।

(च) बाल-साहित्य—कथा मंजरी (भाग-1 एवं भाग-2), मर्यादा पुरुषोत्तम, विद्यापति की कहानियाँ।

नागार्जुन को उनकी ऐतिहासिक मैथिली रचना 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए सन् 1969 ई० में **साहित्य अकादमी पुरस्कार** दिया गया। इन्हें साहित्य अकादमी ने सन् 1994 ई० में 'साहित्य अकादमी फेलो' के रूप में नामांकित करके सम्मानित किया।

प्र.5. धर्मवीर भारती के काव्य-शिल्प की विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उनका हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर

काव्य-शिल्प की विशेषताएँ

धर्मवीर भारती ने भी अन्य प्रयोगवादी कवियों की भाँति अपने काव्य को छन्द तथा तुकबन्दी से मुक्त रखा है, लेकिन इसमें लयात्मकता विद्यमान है। इन्होंने कहीं-कहीं अव्यवस्थित तुकबन्दी को भी स्थान दिया है। प्रयोगवादी प्रवृत्ति के अनुरूप बिम्ब-योजना तथा अभिव्यक्ति के साथ-साथ अलंकारों में भी नवीनता परिलक्षित होती है। उनके काव्य एवं गद्य दोनों में ये विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसलिए उनके जीवन्त और मर्मस्पर्शी गद्य में भी इनके कवित्व का स्पर्श मिलता है। इनकी भाषा साहित्यिक, परन्तु सरल है।

हिन्दी साहित्य में स्थान—अनेक आलोचक धर्मवीर भारती को प्रयोगवादी एवं नई कविता दोनों का पक्षधर कवि मानते हैं। दूसरा सप्तक में स्थान पाने के कारण भारतीजी के प्रयोगवादी होने में किसी को सन्देह नहीं रह जाता है, पर उनका काव्य तथा

अभिव्यक्ति पूर्णरूप से कभी प्रयोगवाद की काया में आबद्ध नहीं रही। नई कविता का झण्डा उठाकर तथा धर्मयुग के माध्यम से नई कविता का प्रचार-प्रसार करके भी भारतीजी पूर्णत: नए कवि कभी नहीं बन पाये। भारतीजी वस्तुत: यथार्थवादी रागात्मकता के कवि हैं। यथार्थ एवं रागात्मकता दोनों उनकी कविता में सर्वत्र विद्यमान हैं। यदि दोनों का तुलनात्मक विवेचन करें तो उनके काव्य में रागात्मकता का आधिक्य है। यथार्थ की नग्नता उनके काव्य में प्राय: कम ही दिखाई देती है। विषय का वैविध्य और क्षेत्र उन्हें रागात्मकता का नया कवि सिद्ध करता है।

प्र.6. निम्नलिखित पद्यांश की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—

मैं बोऊँगा बीर बहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नए सितारे, नई पीढ़ियाँ, नए धान का रंग!
बदरा पानी दे!
हम बोएँगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेहँदी–
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज!
बदरा पानी दे!

उत्तर

पद्यांश की व्याख्या

मैं बोऊँगा ..... पानी दे!

शब्दार्थ—बीर बहूटी = बरसात में बहुतायत से दिखाई देनेवाला एक बहुत सुन्दर कीट, जिसके लाल शरीर पर काले गोल चकत्ते होते हैं; **सतरंग** = सात रंगों वाला; **बदरा** = बादल; **चुनरियाँ** = स्त्रियों के द्वारा सिर से ओढ़े जानेवाला हल्का वस्त्र; **कजरी** = वर्षा ऋतु में महिलाओं द्वारा गाया जानेवाला एक लोकगीत, पूर्वी उत्तर प्रदेश में वर्षा ऋतु में मनाया जानेवाला महोत्सव; **मेहँदी** = बरसात में तीज आदि के पर्व पर प्राय: कुँआरी लड़कियाँ और सुहागिनें अपने हाथों में कलात्मक ढंग से मेहँदी रचाकर स्वयं को सजाती-सँवारती हैं; **राखी** = रक्षासूत्र।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पद्यांश धर्मवीर भारती के प्रथम स्वतन्त्र काव्य-संग्रह 'ठण्डा लोहा' में संकलित 'बोआई का गीत' नामक कविता से अवतरित हैं।

प्रसंग—भारती जी ने प्रस्तुत पंक्तियों में वर्षा के मोहक वातावरण एवं विशेष रूप से स्त्रियों में उत्साह का संचार करनेवाले प्रमुख त्योहारों का चित्रण किया है।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि द्वारा किसानों से यह प्रश्न पूछने पर कि तुम खेतों में कौन-सी नई फसल बोओगे, किसान उत्तर देते हुए कहता है कि मैं अपने खेतों में बीर बहूटी और इन्द्रधनुष के सात रंग बोऊँगा। अर्थात् मैं अपने खेतों में ऐसे नए-नए उन्नत बीज बोऊँगा कि वे हरियाली से लहलहा उठेंगे और उससे आकर्षित होकर बीर बहूटियाँ (किसान का मित्र कीट) पैदा होंगी, जिससे खेतों में समृद्धि आएगी, भरपूर फसलें होंगी जिससे सभी के जीवन में खुशियों का सतरंगी इन्द्रधनुष छा जाएगा। इन खुशियों एवं समृद्धि से सभी के भाग्य के नए सितारों का उदय होगा। मेरे द्वारा खेतों में बोए गए नए धान के रंगों से नई पीढ़ियाँ सम्पन्न होंगी, वे सब फूले-फलेंगी। इस तरह बादल पानी देते रहेंगे तो मैं सब ओर समृद्धि और खुशियों की प्रतीक बीर बहूटियों, सतरंगे इन्द्रधनुषों, भाग्योदय के नए सितारों और नए धान्यों (अन्नों) की फसलें उगा सकूँगा।

'क्या बोएँगी' के प्रश्न पर किसानों की स्त्रियाँ कहती हैं कि हम इस बरसात में सौभाग्य और सम्पन्नता की प्रतीक हरी चुनरियाँ, कजरी के गीत और मेहँदी बोएँगी अर्थात् अब वर्षा के होने पर हमारे खेतों में फसलों की हरी चुनरियाँ लहलहाएँगी तो हम अपने लिए नई चुनरियाँ खरीदेंगी, सौभाग्य के प्रतीक कजरी के गीत गाकर खूब धूमधाम से कजरी महोत्सव मनाएँगी और अपने हाथों में मेहँदी रचाकर स्वयं को खूब सजाएँगी-सँवारेंगी। सावन के इसी महीने में कच्चे सूत के धागों का भाई-बहन के पवित्र प्रेम का प्रतीक रक्षाबन्धन का और सुहागिनों के सौभाग्य का प्रतीक तीज के उत्सव भी हम बड़े उत्साह से मनाएँगी। इस तरह हे बादलो! तुम इसी तरह हमें पानी देते रहो तो हम अपने जीवन में हरी चुनरियाँ, कजरी, मेहँदी, राखी और तीज के बीज बोकर अपने जीवन को समृद्ध बनाएँगी।

विशेष—1. बीर बहूटी एक बहुत सुन्दर कीट है। यह कीट किसानों का मित्र होता है, इसका लारवा हानिकारक कीटों को खाकर किसानों की सहायता करता है। इसीलिए खेतों में बीर बहूटी के बोने की बात कही गई है। 2. इन्द्रधनुष को जीवन की खुशियों का प्रतीक माना जाता है। इसमें सता रंग होते हैं। वर्षा के दिनों में आकाश में प्रायः इन्द्रधनुष बनते रहते हैं। 3. अच्छी वर्षा से खेतों में धान्य की अच्छी उपज होती है, जिससे कृषकों की नई पीढ़ियों के भाग्य के सितारों का उदय होता है। इसलिए किसान ने अपने

खेतों में धान के रंग के रूप में नए सितारों और नई पीढ़ियों के रंग बोने की बात कही है। 4. अच्छी वर्षा होने पर अच्छी फसलें होती हैं, जिससे किसानों की स्त्रियाँ अपने लिए नई चुनरियाँ खरीदती हैं, हाथों में मेहँदी रचाकर खूब सजती-सँवरती हैं; कजरी, रक्षाबन्धन और तीज के त्योहारों को खूब हर्षोल्लास के साथ मनाती हैं। 5. **भाषा**—आम बोलचाल की अत्यन्त सरल खड़ीबोली, जिसमें प्रतीकात्मकता तथा लाक्षणिकता के द्वारा भावों की संवेदना को उकेरा गया है। 6. **अलंकार**—अनुप्रास और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

प्र.7. 'बोआई का गीत' वास्तव में भारतीय संस्कृति एवं परम्परा का गीत है।' संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

उत्तर भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यहाँ पर कृषि के लिए वर्षा का सर्वाधिक महत्त्व है। वर्षा का सीधा सम्बन्ध खेती, फसलों के उत्पादन, किसानों की समृद्धि, उनके हर्ष-विषाद, खान-पान, रहन-सहन, गीत-संगीत, तीज-त्योहार और मेले आदि से है। इन सभी के सामूहिक रूप को ही हम संस्कृति और परम्परा के नाम से अभिहित करते हैं। 'बोआई का गीत' में इन सभी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन करके कवि ने यहाँ यह भी स्पष्ट किया है कि वर्षा किस तरह फसलों की बोआई को प्रभावित करती है और सही समय पर की गई बोआई और समय पर हुई वर्षा जनजीवन को उत्साह से भर देती है। वर्षा के होते ही खेतों में खेती सम्बन्धी लोकगीत गूँज उठते हैं; क्योंकि खेतों की तैयारी या बोआई में संलग्न किसानों की खुशी और उत्साह इस समय अपने चरम पर होता है। उमंग से भरकर किसान ऊँचे स्वर में लोकगीत गा उठता है। किसानों के सपने सजने लगते हैं कि खेती में कृषक-मित्र बीरबहूटियों का समूह उमड़ेगा, फसलें खनखना उठेंगी, जिससे उनके सतरंगी इन्द्रधनुषी सपने साकार हो उठेंगे, नई पीढ़ियों का भाग्योदय होगा। किसानों के घर धन-धान्य से भर जाएँगे तो कृषक स्त्रियाँ अपने लिए नई चुनरियाँ खरीदेंगी, कजरी गाकर और मेहँदी रचाकर वे कजरी महोत्सव, रक्षाबन्धन और तीज आदि के त्योहार अत्यन्त उमंग एवं हर्षोल्लास से मनाएँगी। भारतीय संस्कृति की इस पूरी चित्रपटी को भारती जी ने 'बोआई का गीत' में बड़ी तन्मयता से उकेरा है। इसलिए हम निस्संकोच कह सकते हैं कि 'बोआई का गीत' वास्तव में भारतीय संस्कृति तथा परम्परा का गीत है।

प्र.8. नई कविता के लिए शमशेरबहादुर सिंह ने किन बातों को महत्त्वपूर्ण माना है?

उत्तर नई कविता के लिए शमशेरबहादुर सिंह ने निम्न छह बातों को महत्त्वपूर्ण माना है—

1. **कवि की जाती दिलचस्पियाँ**—कलाकार के जाती शौक़ और उसकी अपनी खास दिलचस्पियाँ भी उसकी कला का रूप निखारने और सँवारने में जाने-अनजानेतौर से सहायता करती हैं। कभी-कभी ये रुकावट भी बन जाती हैं। मगर नई कला में इनसे लाभ उठाया गया है।
2. **दूसरी भाषाओं का ज्ञान**—भाषाओं की जानकारी के पीछे यह दृष्टिकोण कम-से-कम कलाकार के लिए तो बहुत काम का है। दो-चार अलग-अलग भाषाओं के अलग-अलग मिजाज की, और उनकी अलग-अलग तरह की रंगीनियों और गहराइयों की जानकारी हमें जितना ही ज्यादा होगी, उतना ही हम फैले हुए जीवन और उसको झलकानेवाली कला के अपार सौन्दर्य की पहचान और सौन्दर्य की असली कीमत की जानकारी बढ़ा सकेंगे।
3. **सच्चाई का अपना खास रूप**—हम अपनी भावनाओं की सच्चाई कविता में खोजते हैं। इस खोज में उस सच्चाई का अपना विशिष्ट रूप भी हमें मिलना चाहिए, जिस हद तक भी सम्भव हो; क्योंकि किसी भी चीज का असली रूप उस चीज से अलग तो सम्भव नहीं।
4. **ललित कलाएँ काफी एक-दूसरे में समाई हुई हैं**—तसवीर, इमारत, मूर्ति, नाच, गाना और कविता-इन सबमें बहुत कुछ एक ही बात अपने-अपने ढंग से खोलकर या छिपाकर या कुछ खोलकर कुछ छिपाकर कही जाती है। लेकिन इनके ये अलग-अलग ढंग दरअसल एक-दूसरे से ऐसे अलग-अलग नहीं हैं, जैसे कि ऊपरीतौर से लगते हैं।
5. **भाषा और कला के रूपों का कोई पार नहीं है**—हम-आप ही अगर अपने दिल और नजर का दायरा तंग न कर लें तो दखेंगे कि हम सबकी मिली-जुली जिन्दगी में काल के रूपों का खजाना हर तरह बेहिसाब बिखरा चला गया है। सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर कि अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर बुला सकते हैं।

   इसका सीधा-सादा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अनुभूति तथा अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना। यह आधार इस युग के हर सच्चे

और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है। इस तरह अपनी कला चेतना को जगाना एवं उसकी सहायता से जीवन की सच्चाई एवं सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव-से-सजीव रूप देते जाना : इसी को मैं 'साधना' समझता हूँ। और इसी में कलाकार का संघर्ष छिपा हुआ देखता हूँ। कला में भावनाओं की तराश-खराश, चमक, तेजी और गरमी सब उसी से पैदा होंगी, उसी 'संघर्ष' और 'साधना' से, जिसमें अन्दर-बाहर दोनों का मेल है।

6. **क्रान्ति : काव्य-सामग्री**—आज यह क्रान्ति का युग है। थके हुए पुराने कलाकार की आहों को भी उससे चमक मिलती है। नयों की तो वह काव्य-सामग्री ही है; क्योंकि वही उनके और उनके आगे की पीढ़ियों के लिए नए, उन्मुक्त-सुखी, आदर्श जीवन की नींव डालनेवाला है।

प्र.9. कवि दुष्यन्त कुमार द्वारा अपनी गजलों में आम आदमी की अतिशय सहनशीलता का वर्णन क्यों किया गया है?

उत्तर कविवर दुष्यन्त कुमार द्वारा अपनी गजलों में आम आदमी की अतिशय सहनशीलता का वर्णन करके परोक्ष रूप से उसके प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया गया है। वे आम आदमी को इस सहनशीलता के माध्यम से धिक्कारते हुए कहते हैं कि तुम्हारा जन्म इस तरह के शोषण के लिए नहीं हुआ है। तुम कोई बेजान झुनझुना नहीं हो, जिसे जब कोई चाहे जैसे बजाकर अपने अहम् की तुष्टि कर ले। इसीलिए वह व्यंग्य के साथ आम आदमी के हृदय पर प्रहार करते हुए कहते हैं—

जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।

सहनशीलता भले ही एक गुण है, परन्तु सीमा लाँघने पर वह भी अवगुण बन जाती है। जिस सहनशीलता का लाभ उठाकर अन्य लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने में सफल हों, उसे किसी भी प्रकार अच्छा नहीं कहा जा सकता। देशभक्ति की यात्रा पूरी करने के लिए दूसरों के संकेतों पर इतनी सहनशीलता उन्हें आश्चर्य में डाल देती है। वे आम आदमी को यही समझने का प्रयत्न करते हैं कि तुम भले ही कमीज का काम अपने पाँवों को मोड़कर चला लो, लेकिन यह तुम्हारी देशभक्ति का प्रतीक नहीं है, बल्कि राजनीतिज्ञों की सत्ता-प्राप्ति का उपकरण मात्र है—

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।

वर्तमान आज का आम आदमी इसी में प्रफुल्लित है कि स्वार्थ पूर्ति करनेवाले नेता उसकी समस्याओं की चर्चा कर रहे हैं। नेताओं की लच्छेदार बातों में आकार अपनी भूख तक भूल जानेवाला यह आम आदमी वास्तव में तरस खाने लायक है—

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ?
आजकल दिल्ली में जेरे बहस है यह मुद्दआ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दुष्यन्त कुमार का प्रमुख उद्देश्य यहाँ आम आदमी की सहनशीलता की चरम सीमा व्यक्त कर उसकी दीनता का प्रदर्शन करके उसके कल्याण के लिए शासन से साधनों की भीख माँगना नहीं है, अपितु आम आदमी को इस बात के लिए प्रेरित करना है कि यदि इसी तरह सहनशील बने रहोगे तो यह सत्ता तुम्हारा इसी तरह शोषण करती रहेगी। अपने उद्धार के लिए तुम्हें इस सहनशीलता को त्यागकर अपने आक्रोश का प्रदर्शन करना ही पड़ेगा।

प्र.10. दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित 'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए' नामक कविता का परिचय दीजिए तथा निम्नलिखित पद्यांश की ससन्दर्भ व्याख्या भी कीजिए–

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

उत्तर कविता-परिचय—प्रस्तुत कविता कवि दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित एक हिन्दी गजल है। गजल वस्तुतः फारसी की एक काव्य-शैली (विधा) है, जहाँ से वह उर्दू भाषा में आई। उर्दू भाषा में प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए गजल को सबसे अच्छी विधा माना गया है, इसीलिए हिन्दी-साहित्यकारों को भी इसने अपनी ओर मोहित किया। हिन्दी के गजलकारों में नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर **दुष्यन्त कुमार** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दुष्यन्त का 'साये में धूप' बहुत प्रसिद्ध गजल-संग्रह है। सन् 1975 ई० में इसका सर्वप्रथम प्रकाशन हुआ। इसी गजल-संग्रह में प्रस्तुत गजल 'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए' संकलित है। इस गजल में कवि ने देश में व्याप्त अव्यवस्थाओं के कारण मुश्किल हुई आम आदमी की जिन्दगी पर चिन्ता व्यक्त करते हुए किसी भी स्थिति में इसके निदान की आवश्यकता पर बल दिया है।

पद्यांश की व्याख्या

हो गई ..... निकलनी चाहिए।

शब्दार्थ—पीर = पीड़ा, दर्द; **पर्वत-सी** = पहाड़ जैसी दुर्गम।

सन्दर्भ—कवि/गजलकार **दुष्यन्त कुमार** के सुप्रसिद्ध गजल-संग्रह 'साये में धूप' से प्रस्तुत गजल 'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए' संकलित है। इसी गजल का पहला शेर अर्थात् मतला के रूप में ये पंक्तियाँ अवतरित हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत शेर में गजलकार दुष्यन्त कुमार कहते हैं कि स्वतन्त्रता के समय यह उम्मीद की गई थी कि स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में जितने भी कष्ट और समस्याएँ हैं, उन सबका निदान हो जाएगा तथा व्यक्ति का जीवन खुशहाल हो जाएगा। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

व्याख्या—कवि कहता है कि आज देश के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अभावों और समस्याओं के कारण इतनी अधिक पीड़ा का समावेश हो गया है कि उससे पार पाना व्यक्ति के लिए उसी प्रकार दुष्कर हो गया है, जिस प्रकार दुर्गम पहाड़ को पार करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आसान नहीं होता। जिस तरह पर्वतों पर पड़ी बर्फ के पिघलने पर उस पर चढ़ना थोड़ा आसान हो जाता है, उसी तरह व्यक्ति के जीवन में जमी पीड़ारूपी बर्फ को भी अब थोड़ा पिघल जाना चाहिए। पीड़ा की यह बर्फ यदि थोड़ी-सी पिघल जाएगी तो व्यक्ति का जीवन थोड़ा सरल हो जाएगा, उसमें खुशियों का थोड़ा समावेश हो जाएगा।

आगे कवि कहता है कि पहाड़ों पर जमी बर्फ जब पिघलती है तो वह गंगा जैसी एक नदी का रूप ले लेती है। यह गंगा नदी देश तथा समाज के लिए बड़ी उपयोगी साबित होती है। यह अपने अमृत जल से देश की मिट्टी को भिगोती हुई उसमें सोने जैसी फसलें उपजाती हुई उसे सब प्रकार से समृद्ध बनाती है। व्यक्ति के दुर्गम पहाड़ जैसे जीवन में जमी जब पीड़ा की बर्फ पिघलेगी तो उससे उत्साह की एक नई गंगा का जन्म होगा। उत्साह की यह गंगा प्रत्येक व्यक्ति के साथ-साथ समाज और देश का सब प्रकार से कल्याण करके उन्हें समृद्धि से परिपूर्ण कर देगी। कवि कहता है कि देश को स्वतन्त्र हुए एक लम्बा समय बीत गया है; अत: अब तो आम आदमी के जीवन में जमी बर्फरूपी पीड़ा को पिघलकर उसे एक गंगा जैसी नदी के रूप में बहकर निकल ही जाना चाहिए।

विशेष—1. कवि ने उस उम्मीद या आशा की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश के प्रत्येक नागरिक के हृदय में जाग्रत हुई थी। 2. 'हिमालय' व्यक्ति के जीवन में व्याप्त अनन्त दु:खों या समस्याओं का एवं 'गंगा' उनके निदान की प्रतीक है। 3. **भाषा**—प्रतीकात्मक सरल खड़ीबोली। 4. **अलंकार**—उपमा, अनुप्रास और रूपक अलंकारों का मंजुल प्रयोग द्रष्टव्य है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रयोगवादी कविता से आपका क्या अभिप्राय है? इस कविता के भाव-पक्ष पर प्रकाश डालिए।

उत्तर 'प्रयोगवादी' कविता अथवा 'नई कविता'

हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद की परिणति स्वार्थ प्रेरित, असामाजिक और असन्तुलित मनोवृत्ति के रूप में हुई। इसी को 'प्रतीकवाद', 'प्रयोगवाद' अथवा 'नई कविता' कहा गया। प्रयोगवाद के प्रवर्तक **अज्ञेयजी** के अनुसार—"प्रयोगवादी कविता में नए तथ्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध भी है, इन सत्यों के साथ नए रागात्मक सम्बन्ध भी हैं और उनको पाठकों तक पहुँचाने वाली साधारणीकरण की शक्ति है।"

अज्ञेयजी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तारसप्तक' काव्य-संकलन से प्रयोगवादी कविता का प्रारम्भ माना जाता है, जिसका प्रकाशन सन् 1934 ई० में हुआ था। अज्ञेयजी ने इसमें सात कवियों की कविताओं को यह कहकर प्रस्तुत किया था कि हिन्दी-काव्य-जगत् में यह एक नई क्रान्ति का प्रारम्भ है, लेकिन अनेक समालोचकों द्वारा अज्ञेय की इस नई क्रान्तिकारी उद्घोषणा को वास्तविक क्रान्ति मानने से अस्वीकार कर दिया गया। इन्होंने टिप्पणी की थी कि पश्चिमी काव्यात्मक शैली तथा उसके दर्शन की नकल किसी क्रान्ति की उद्घोषणा नहीं हो सकती।

वस्तुत: प्रयोगवादी कविता या 'नई कविता' इन्ने जैसे पश्चिमी कवियों की शैली तथा दृष्टिकोण की प्रतिलिपिमात्र ही थी। पश्चिम में व्यक्तिवाद, नग्नता, मशीनी प्रगति के प्रति निराशा एवं बौद्धिक प्रदर्शन का भार वहाँ की कविताओं में स्थान बना चुका था। इन्हीं कविताओं से प्रेरणा पाकर लिखी गईं ये कविताएँ वस्तुत: कविता की भावात्मक रागात्मकता को त्यागकर सामने आईं।

प्रयोगवादी कविता का भाव-पक्ष

'प्रयोगवादी' अथवा 'नई कविता' के भाव-पक्ष का संक्षिप्त वर्णन निम्नि प्रकार किया जा सकता है—

1. **निराशावाद**—प्रयोगवादी कविता अथवा 'नई कविता' अतीत की गौरवमयी प्रेरणा एवं भविष्य की उल्लासपूर्ण उज्ज्वल अभिलाषाओं अथवा इच्छाओं से रहित है; क्योंकि उसका दृष्टिकोण केवल वर्तमान तक ही सीमित है। सार यह है कि इस धारा के कवियों की स्थिति उस मनुष्य के समान है, जिसे ऐसा विश्वास हो कि अगले ही क्षण प्रलय होनेवाली है, इसलिए वर्तमान क्षण में ही सबकुछ प्राप्त कर लेना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरण ध्यानपूर्वक पढ़िए—

   आओ हम अतीत को भूलें,
   और आज ही अपनी रग-रग के अन्तर को छू लें।
   छू लें इसी क्षण,
   क्योंकि कल के वे नहीं रहे,
   क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।

2. **अतिबौद्धिकता**—प्रयोगवादी कविता में अनुभूति और रागात्मकता का अभाव है एवं इसमें बौद्धिक उछल-कूद अथवा क्रीडा आवश्यकता से अधिक है, इसीलिए इसमें साधारणीकरण की कमी है। **धर्मवीर भारती** के अनुसार—"प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है, इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न-चिह्न उसी का ध्वनिमात्र है।" निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

   अन्तरंग की इन घड़ियों पर छाया डाल दूँ?
   अपने व्यक्तित्व को एक निश्चित साँचे में ढाल दूँ?
   निजी जो कुछ है अस्वीकृत कर दूँ?
   सम्बोधनों से स्वर्ग को उपसंहत कर दूँ?

   ये किसी सफल नए कवि की पंक्तियाँ हैं; क्योंकि ये पाठक के मस्तिष्क को परेशान करने में अपनी समता नहीं रखतीं।

3. **व्यक्तिवाद की प्रधानता**—प्रयोगवादी कविता अथवा नई कविता में घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद की झलक व्यक्त होती है। प्रयोगवादी कवि सामाजिक जीवन से किसी प्रकार भी तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके। काव्य में व्यक्तिवाद की पराकाष्ठा हो गई। भारत भूषण की कविता में निम्नलिखित पंक्तियाँ उनकी इस प्रवृत्ति की परिचायक हैं—

   साधारण नगर के
   एक साधारण घर में
   मेरा जन्म हुआ।

4. **अतिनग्न यथार्थवाद**—जिस अश्लीलता, ग्राम्यता एवं विवृत्ति चित्रण को हिन्दी काव्य-क्षेत्र में बहिष्कृत किया जाता रहा था, प्रयोगवादी कवि उन्हीं सबके अत्यन्त नग्न रूप में यथार्थता के साथ वर्णन करने को अपने लिए श्रेय की बात समझने लगे हैं। **शकुन्तला माथुर** के काव्य में कामुकता और वासना की विवृत्ति का एक उदाहरण देखिए—

   चली आई बेला सुहागिन पायल पहने.....
   बाण-विद्ध हरिणी-सी
   बाँहों में सिमट जाने को,
   उलझने को, लिपट जाने को,
   मोती की लड़ी समान'.....।

5. **सौन्दर्य के प्रति व्यापक दृष्टिकोण**—मानव का शाश्वत तथा स्वाभाविक गुण सौन्दर्यानुभूति है। प्रयोगवादी कविता में सौन्दर्य के व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं। प्रयोगवादी कवि को संसार की तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु में भी सौन्दर्य का आभास होता है; यथा—

   हवा चली
   छिपकली की टाँग
   मकड़ी के जाले में फँसी रही,
   फँसी रही।

प्र.2. निम्नलिखित पद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) अकाल और उसके बाद
कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

(ख) दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

उत्तर

पद्यांशों की व्याख्या

(क) अकाल और ..... रही शिकस्त।

सन्दर्भ—प्रस्तुत कविता 'अकाल और उसके बाद' नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है। नागार्जुन ने मानवीय संवेदना के विभिन्न पक्षों का बहुत अच्छा चित्रण किया है।

प्रसंग—कवि ने इन पंक्तियों में अकाल की भीषण स्थिति का चित्रण किया है। चूल्हे और चक्की के भावों को भी कवि ने दिखाया है। अकाल की स्थिति में अनाज के अभाव में मानव तो क्या अन्य जीवों की भी दशा दयनीय रही है।

व्याख्या—अकाल पड़ने की वजह से आम आदमी का जीवन बहुत ही कठिन हो गया। अनाज न होने की वजह से कई दिनों तक चूल्हा नहीं जला और न चक्की चली जिससे लोगों की दशा बहुत ही पतली हो गयी। भूख-प्यास और अकाल की स्थिति के कारण से कानी कुतिया मतलब पालतू जानवर जिसकी एक आँख न हो, वह भी खाना मिलने की उम्मीद में वहीं पड़े रहते थे। यहाँ तक कि दीवारों पर छिपकलियाँ, कीड़े-मकोड़े भी भोजन की आशा में कई दिनों तक दीवारों पर पहरा दे रहे। कई दिनों तक वह छिपकली किसी कीड़े की उम्मीद करते हुए दीवारों पे रेंग रही थी और भूख से उसकी भी स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। चूहे भी खाना न मिलने की वजह से बहुत ही परेशान थे और उनकी हालत खाना न मिलने की वजह से पस्त होती जा रही थी।

विशेष—1. आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग है।
2. चित्रात्मक वर्णन है।
3. बिम्बतकमता है।

(ख) दाने आए ..... के बाद।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—इन पंक्तियों में कवि ने अकाल के बाद की स्थिति का चित्रण किया है। जब घर में अनाज के दाने लाए जाते हैं तब उनकी महत्ता का पता चलता है।

व्याख्या—जब अकाल की विपत्ति गयी तो घर में अन्न के दाने आए और घर में खुशी का माहौल और हलचल प्रारंभ हो गयी। ऐसा लगता है कि मानो कोई मृत इंसान वापस जिंदा हो गया हो। घर में कई दिनों के बाद चूल्हा जला और आँगन के ऊपर से धुआँ उठता दिखाई देने लगा। अन्न की प्राप्ति होने की खुशी से घरवालों की आँखें चमकने लगीं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें भरपेट भोजन मिलेगा। यह सोचकर उन्हें खुशी और आनंद का अनुभव हो रहा था। घर में धुआँ देखकर कौए को भी भोजन पाने की आशा हो गयी। वह भी प्रसन्नता से अपने पंख खुजलाने लगा और इसी तरह से वातावरण में खुशी का माहौल छा गया।

विशेष—1. भाषा सहज एवं सरल है। 2. बिम्बात्मक काव्य है। 3. वर्णात्मक शैली है। 4. काव्यांश में गेयता है।

प्र.3. धर्मवीर भारती के जीवन- परिचय पर प्रकाश डालते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए। उनके काव्य के भाव-पक्ष की विशेषताएँ भी लिखिए।

***अथवा* धर्मवीर भारती की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।** **(2021)**

उत्तर

धर्मवीर भारती का जीवन-परिचय

जन्मस्थान एवं जन्मकाल—हिन्दी काव्य के प्रख्यात कविश्रेष्ठ धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसम्बर, सन् 1926 ई० को इलाहाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम चिरंजीलाल वर्मा तथा माता का नाम चन्दा देवी था। ये इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय

से हिन्दी में एम०ए० और पी-एच०डी० की। इसके बाद ये यहीं पर हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। इसके पश्चात् भारती जी विधिवत् साहित्य के क्षेत्र में आए और कुछ वर्षों तक इलाहाबाद से ही प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक पत्र 'संगम' का सम्पादन किया। सन् 1959 ई० में ये बम्बई (मुम्बई) से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' के सम्पादक बने।

भारती जी प्रतिभासम्पन्न श्रेष्ठ कवि, कथाकार और नाटककार थे। इनकी कविताओं में राग-तत्त्व के साथ-साथ बौद्धिक उत्कर्ष की आभा भी दर्शनीय है। इन्होंने कहानियों और उपन्यासों में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को उठाते हुए बड़े ही सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। समाज की विषमताओं पर व्यंग्य करने में ये बड़े कुशल थे।

साहित्यिक सेवाओं के लिए भारती जी को 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया। **सितम्बर, 1997 ई०** में ये परलोकवासी हो गये। उस समय ये सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के सम्पादक का पदभार सँभाले हुए थे।

साहित्यिक परिचय—धर्मवीर भारती इलाहाबाद के निवासी थे, इसलिए इलाहाबाद के साहित्यिक परिवेश का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। ये बहुमुखीप्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। कहानी, निबन्ध, एकांकी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, सम्पादन तथा काव्य-सृजन के क्षेत्र में इन्होंने अपनी विलक्षण सृजन-प्रतिभा का परिचय दिया। वस्तुतः साहित्य की जिस विधा का भी इन्होंने स्पर्श किया, वही विधा इनका स्पर्श पाकर धन्य हो गई। अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में भारतीजी ने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सजीव रूप में प्रस्तुत किया। सामाजिक विषमताओं पर अपनी लेखनी से तीखे प्रहार किए और आधुनिक भारतीय समाज के यथार्थ रूप को अनावृत करके रख दिया। 'गुनाहों का देवता' जैसा सशक्त उपन्यास लिखकर ये अमर हो गए।

कृतियाँ—इनकी कुछ प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

(क) **काव्य**—'ठण्डा लोहा' (सन् 1952 ई०), 'अन्धा युग' (सन् 1954 ई०—पद्य नाटक), 'कनुप्रिया' (सन् 1959 ई०), 'सात गीत वर्ष' (सन् 1959 ई०), 'सपना अभी भी' (सन् 1993 ई०), 'अद्यतन' (सन् 1999 ई०), 'देशान्तर' (अनूदित सन् 1960 ई०)।

(ख) **उपन्यास**—'गुनाहों का देवता', 'ग्यारह सपनों का देश', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'प्रारम्भ व समापन'।

(ग) **कहानी**—'स्वर्ग और पृथ्वी', 'मुर्दों का गाँव', 'चाँद और टूटे हुए लोग', 'बन्द गली का आखिरी मकान', 'साँस की कलम से'।

(घ) **आलोचना**—'प्रगतिवाद : एक समीक्षा', 'मानव मूल्य और साहित्य', 'सिद्ध-साहित्य' (शोध-प्रबन्ध)।

(ङ) **अनुवाद**—ऑस्कर वाइल्ड की कहानियाँ, मानव-मूल्य और साहित्य।

(च) **रिपोर्ताज**—'युद्धयात्रा', 'मुक्त क्षेत्रेः युद्ध क्षेत्रे'।

(छ) **नाटक**—'नदी प्यासी थी'।

(ज) **एकांकी**—'आवाज का नीलाम', 'नीली झील' आदि।

(झ) **निबन्ध**—ठेले पर हिमालय', 'पश्यन्ती', 'शब्दिता', 'कहनी-अनकहनी', 'साहित्य-विचार और स्मृति'।

(ञ) **यात्रावृत्त**—'यात्रा चक्र'।

(ट) **संस्मरण**—'कुछ चेहरे : कुछ चिन्तन'।

(ठ) **पत्र**—'अक्षर-अक्षर यज्ञ'।

(ड) **सम्पादन**—'अर्पित मेरी भावना' (भगवतीचरण वर्मा की रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन), 'अभ्युदय' 'संगम', 'प्रतीक', 'निकष', 'आलोचना', 'धर्मयुग'।

धर्मवीर भारती की काव्यगत विशेषताएँ

धर्मवीर भारती 'दूसरा सप्तक' के कवि हैं। 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में धर्मवीर भारती ने लिखा है कि "भारती कविताएँ कम लिखता है, लेकिन जब वह लिखता है तो अपनी रुचि की और अपने ईमान की।" 'ठण्डा लोहा' में युवावस्था के प्रेम की भावुकता, आवेग और स्वप्न की अभिव्यक्ति हुई है। वह गुनाह का गीत गाता है।" इनकी काव्यगत विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार है—

(क) धर्मवीर भारती के काव्य की भाव-पक्ष की विशेषताएँ

डॉ० धर्मवीर भारती के काव्य की भाव-पक्ष की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **विराट् सत्य की खोज**—भारती जी की आत्मा इस रोमानियत के रहते हुए भी किसी विराट सत्य की खोज में घूम रही है। वह कहते हैं—

मैं और कला
इनकी कुछ भी अहमियत नहीं।
इन दोनों से ज्यादा विराट्
कोई तीसरा सत्य है।
जिनको आत्मसात् कर पाने को
मेरी आत्मा
धीरे-धीरे
जीवन की यज्ञशिखाओं में पकती जाती।

यह तीसरा विराट् सत्य है। मनुष्य के सृजन की शक्ति, जो समस्त बाह्य शक्तियों से परे है, विषम परिस्थितियों में भी नष्ट नहीं होती। कविता मनुष्य के सृजन की आवाज है, जो मनुष्य को नया विश्वास, नया इतिहास प्रदान करती है—

भूख, लाचारी, गरीबी ही मगर
आदमी के सृजन की ताकत
इन सबों की शक्ति के ऊपर
और कविता सृजन की आवाज है
फिर उभरकर कहेगी कविता,
''क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी?
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी है हैवानियत की इम्तेहान
आदमीयता का अभी आगाज बाकी है
लो तुम्हें भी फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ।''

2. **प्रेम की निराशा और अकुलाहट**—हिन्दी काव्य के सुप्रसिद्ध कवि धर्मवीर भारती में जहाँ एक ओर प्रणय की उद्दामता मिलती है तो वहीं दूसरी ओर प्रेम की निराशा, अकुलाहट और दर्द का गम्भीर सागर गरजता है। वैयक्तिक जीवन का प्रेम जब समाज में आ जाता है, तब उसे ठेस पहुँचती है और जीवन के स्वप्न पूरे नहीं होते। ऐसे में व्यक्ति की रगों पर समाज के ठण्डे लोहे की पर्तें चढ़ जाती हैं—

मेरी दुखती हुई रगों पर
ठण्डा लोहा।
मेरी स्वप्न भरी पलकों पर
मेरे गीत मेरे होठों पर
मेरी दर्द भरी आत्मा पर
स्वप्न नहीं अब
गीत नहीं अब
दर्द नहीं अब–
एक पर्त ठण्डे लोहे की।

इसी प्रकार निराशा, ऊबन और थकान से भरी हुई उदासी जीवन में व्याप्त हो जाती है—

एक स्वाद-सा छोड़ जाती है
जिन्दगी तृप्त भी वह प्यासी थी।
लोग आए गए बराबर हैं,
शाम गहरा गई उदासी भी।

3. **नया सामाजिक स्वर**—'दूसरा सप्तक' में संकलित 'कविता की मौत' नामक कविता का यह अंश डॉ० भारती में नया सामाजिक स्वर मुखरित करता है। कवि को व्यक्ति के अहं और कला से बढ़कर सत्य 'मनुष्य की सृजनशक्ति' में दिखाई

TOUCH 'n' PASS

दिया, जो विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य को नया जीवन-विश्वास देती है, इस भावभूमि का प्रतिफल भारती के 'अन्धायुग' में दृष्टिगत होता है।

(ब) धर्मवीर भारती के कला-पक्ष की विशेषताएँ

डॉ० धर्मवीर भारती के काव्य के कला-पक्ष की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **भाषा एवं शैली**—डॉ० धर्मवीर भारती की भाषा-शैली बहुत ही सरल है। धर्मवीर भारती द्वारा तत्सम, तद्भव, स्थानीय रंग से रंजित शब्दों तथा उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनके द्वारा लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। विभिन्न कलाओं के मूल में अभिव्यक्ति के लिए कवि को कई माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है; जैसे—भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार छन्द आदि। इन्हीं माध्यमों के द्वारा कवि अपनी बात कलात्मक ढंग से दूसरों तक पहुँचा सकता है।
2. **प्रतीक-विधान**—प्रतीक-विधान में धर्मवीर भारती सफल कवि हैं। अन्धायुग एवं अनुप्रिया पूर्णत: प्रतीकात्मक हैं, कवि ने अनेक नए उपमानों का प्रयोग किया है; जैसे—

अब सर्फ मैं हूँ
यह मन है
और संशय है
बुझी हुई राख में छिपी हुई चिनगारी-सा
रीते हुए पात्र की आखिरी बूँद-सा
पाकर खो देने की कथा भरी-गूँज-सा।

3. **छन्द विधान**—भारती ने प्रमुख रूप से अपनी कविताओं में मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। मुक्त छन्द के प्रयोग में उनका ध्यान भाषा की लय पर है। मुक्तक छन्द के रूप में इनके द्वारा युगीन-प्रगीत एवं घनाक्षरी का खूब प्रयोग किया गया है। दो उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

मुक्तक कवित्त—ओस में भागी हुई अमराइयों को चूमता
झूमता आता मलय का एक झोंका सर्द
काँपती मन की मुँदी मासूम कलियाँ काँपतीं
और खुशबू-सा बिखर जाता हृदय का दर्द!

अतुकान्त छन्द—यह फूल, मोमबत्तियाँ और टूटे सपने
ये पागल क्षण
यह काम-काज दफ्तर-फाइल, उचटा-सा जली
भत्ता वेतन
ये सब सच हैं।

भावों की अधिव्यक्ति के लिए उचित उपमानों का प्रयोग करने में भारती सिद्धहस्त हैं। अश्वत्थामा के अस्तित्व की कुण्ठा, घृणा, विकृति, विवशता को कवि ने एकदम नवीन उपमानों द्वारा व्यक्त किया गया है; जैसे—

मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
''जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है।
गन्दा कफ
बासी थूक
शेष हूँ अभी तक मैं।

4. **बिम्ब-विधान**—धर्मवीर भारती का बिम्ब-अत्यन्त प्रभावपूर्ण और नवीन है। इन्होंने पौराणिक बिम्बों में प्राचीन जनश्रुतियों एवं कथानकों को आधार बनाकर बिम्ब-विधान की योजना बनाई है। इनमें राधा-कृष्ण के बिम्ब मुख्यतया प्रस्तुत किए गए हैं। कहीं-कहीं बिम्ब-निर्माण के लिए पौराणिक सन्दर्भों का सुन्दर उपयोग किया गया है—

रख दिए तुमने नजर में बादलों को साधकर,
आज माथे पर, सरल संगीत से निर्मित अधर,
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में,
बाँसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर।

गुणात्मक बिम्ब—ऐसे बिम्ब स्पर्श, रंग, स्वाद, श्रवण स्मृति आदि के आधार पर खड़े हैं। इस प्रकार 'दूसरा सप्तक' के साथ अग्रसर हुए डॉ० धर्मवीर भारती द्वारा कवि के रूप में सशक्त कृतियाँ दी गई हैं। उनका काव्य मात्रा में कम होने पर भी आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति में सफल है। डॉ० धर्मवीर भारती एक प्रतिभासम्पन्न कवि हैं।

प्र.4. शमशेरबहादुर सिंह के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालते हुए उनके काव्य की प्रयोगवादी विशेषताएँ बताए।

उत्तर

शमशेर बहादुर सिंह का जीवन-परिचय

जन्मस्थान एवं जन्मकाल—शमशेर बहादुर सिंह आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगतिशील त्रयी के प्रमुख स्तम्भ और सन् 1951 ई० में प्रकाशित दूसरा सप्तक में स्थान प्राप्त हैं। इनका जन्म 13 जनवरी, सन् 1911 ई० को देहरादून में एक जाट परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम चौधरी तारीफ सिंह एवं माता का नाम प्रभुदेई था। वास्तव में इनके पिता मुजफ्फरनगर जिले के एल्लम गाँव के रहनेवाले थे, जहाँ शमशेरबहादुर सिंह कभी गए ही नहीं थे। देहरादून इनके नाना का घर था। वर्तमान में इनका गाँव शामली जिले में स्थित है। जब ये आठ-नौ वर्ष के थे, तभी इनकी माँ की मृत्यु हो गई। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा देहरादून और बाद में गोंडा में हुई। सन् 1930 ई० में इनका विवाह धर्मवती के साथ हुआ, किन्तु पाँच वर्ष पश्चात् ही क्षयरोग से उनका भी स्वर्गवास हो गया। शमशेर को मिला जीवन का यह अभाव कविता में विभाव बनकर हमेशा मौजूद रहा। काल ने जिसे इनसे लिया, उसे अपनी कविता में सजीव रखकर ये काल से होड़ लेते रहे। इन्होंने सन् 1933 ई० में इलाहाबाद से बी०ए० पास किया। सन् 1936 ई० में प्रगतिशील आन्दोलन में सम्मिलित हुए। सन् 1939 ई० में सुमित्रानन्दन पन्त के 'साथ रूपाभ' पत्रिका में कार्यरत रहे। इन्होंने 'कहानी', 'नया साहित्य', 'माया' आदि पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोग दिया। सन् 1951 ई० में प्रकाशित द्वितीय सप्तक में अज्ञेय ने इनकी कविताएँ प्रकाशित की थीं। सन् 1965-77 ई० की कालावधि में इन्होंने उर्दू-हिन्दी कोश का सम्पादन किया। ये विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में सन् 1981 ई० से 1985 ई० तक 'प्रेमचन्द सृजन पीठ' के प्रमुख रहे। सन् 1978 ई० में इन्होंने सोवियत संघ की यात्रा की।

शमशेरबहादुर सिंह का पूरा जीवन साहित्य, चित्रकला और पत्रकारिता में व्यतीत हुआ और बड़ी विपन्न अवस्था में 12 मई, सन् 1993 ई० में 82 वर्ष की आयु में अहमदाबाद में अपने कालखण्ड को चार-पाँच शताब्दी की चेतना देकर स्वर्ग लोग चले गए। शमशेरबहादुर सिंह में छिछोरापन, बड़बोलापन, विज्ञापनबाजी और दुनियादारी बिल्कुल नहीं थी। वे सदैव बैर और नफरत से दूर रहे और जीवनभर फकीरों की तरह जीवन बिताते रहे।

सन् 1979 ई० में शमशेर को अपनी कृति 'चुका भी हूँ नहीं मैं' के लिए मध्य प्रदेश साहित्य कला परिषद् का 'तुलसी' पुरस्कार तथा सन् 1977 ई० में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इन्हें मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार (सन् 1987 ई०) प्राप्त होने के साथ-साथ कबीर सम्मान (सन् 1989 ई०) भी प्राप्त हुआ।

रचनाएँ: (क) काव्य-संग्रह—'कुछ कविताएँ' (सन् 1956 ई०), 'कुछ और कविताएँ (सन् 1961 ई०), 'शमशेरबहादुर सिंह की कविताएँ' (सन् 1972 ई०), 'चुका भी हूँ नहीं मैं' (सन् 1975 ई०), 'उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष (सन् 1980 ई०), 'इतने पास अपने (सन् 1980 ई०), 'बात बोलेगी' (सन् 1981 ई०), 'काल, तुझसे होड़ है मेरी' (सन् 1988 ई०) प्रमुख हैं। दूसरा सप्तक (सन् 1951 ई०) में भी इनकी अनेक कविताएँ प्रकाशित हैं।

(ख) निबन्ध-संग्रह—दोआब।

(ग) कहानी-संग्रह—प्लाट का मोर्चा।

(घ) अनुवाद—कामिनी, हुश्शू और पी कहा।

शमशेर के काव्य की प्रयोगवादी विशेषताएँ

प्रयोगवाद की उत्पत्ति प्रगतिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ था, इसलिए उसमें समाज की अपेक्षा व्यक्ति को, विषयवस्तु की अपेक्षा कलात्मकता को विचारधारा की अपेक्षा अनुभव को, श्रेष्ठ माना गया। शमशेर प्रयोगवादी कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। उनके काव्य की प्रयोगवादी विशेषताओं का विवेचन इन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **विचारधारा से मुक्ति**—सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ० नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेयजी ने भी यही कहा था—'प्रयोगवाद का कोई वाद नहीं है।' प्रयोगवादी कवियों का मत था कि कोई भी वाद अथवा विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुँचा सकती है। महाकवि शमशेर सिंह का भी किसी वाद विशेष के प्रति कोई आग्रह नहीं रहा है। उनका एकमात्र उद्देश्य सत्य का अन्वेषण एवं कविता में उसका उद्‌घाटन करना रहा है।
2. **व्यक्तिवाद**—प्रयोगवादी कविता अथवा 'नई कविता' में समाज के स्थान पर व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व पर विशिष्ट बल दिया गया है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रति यह आग्रह मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है, जो वैयक्तिक असन्तोष से उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि प्रयोगवाद में समाज से कटे हुए व्यक्ति का नितान्त व्यक्तिगत दर्द व्यक्त हुआ है। इसमें आशा एवं विश्वास की जगह निराशा एवं अनास्था सर्वत्र परिलक्षित होती है। शमशेरबहादुर सिंह की कविता में यह वैयक्तिकता अपने पूर्ण आवेग के साथ व्यक्त हुई है। 'शाम होने को हुई' कविता में किसान का यह व्यक्तिगत सत्य कितनी सुन्दरता से व्यक्त हुआ है—

   तू न चेता। काम से थककर
   फटे-मैले वस्त्र में कमकर
   लौट आए खोलियों में मौन।
   चेतनेवाला न तू-है कौन?

3. **यथार्थ दृष्टि**—प्रयोगवादी कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह अधिक किया गया है। प्रयोगवाद ने जीवन के यथार्थ को रंगीन, मोहक एवं भावमय रूप में प्रस्तुत न करके उसे सहज और साधारण रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रयोगवादी कवि की जीवनानुभूति बहुत सीमित थी, लेकिन यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप में ही व्यक्त हुआ। प्रयोगवादी कवियों ने प्रेम-भावना को एक नई दृष्टि से देखा। उनका प्रेम नितान्त भावुकतापूर्ण और लिजलिजा नहीं है, अपितु बौद्धिकता के धरातल पर व्यक्त हुआ है। 'सावन' कविता में प्रेम की यह सीमा (हद) जहाँ केवल कवि के हृदय की पवित्र भावना की द्योतक है, वहीं उसका यह दृष्टिकोण समाज में प्रेम के नाम पर होनेवाली उच्छृंखलता की सीमाएँ तय करता है—

   आज मेरे लिए तुम
   उसकी हद हो।
   उस बात की हद हो
   जो मेरे लिए हो-तुम
   वह मेरी
   तुम,
   तुम मेरे लिए
   मेरी हद हो, मेरी हद हो
   तुम
   लिए.....।

4. **सत्य के लिए निरन्तर अन्वेषण-डॉ० नामवर सिंह** के शब्दों में, "सत्य के लिए निरन्तर अन्वेषण प्रयोगवाद की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है।" अज्ञेय ने भी 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में कहा है—"प्रयोग दोहरा साधन है; क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी

तरह अभिव्यक्त कर सकता है।'' कविवर शमशेरबहादुर सिंह ने उस सत्य की खोज भी की है और उसे अपने काव्य में अभिव्यक्त भी किया है। उन्होंने अपनी कविता में उस माध्यम को भी खोजा है, जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है। उपर्युक्त काव्य-पंक्तियाँ इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं।

5. **काव्य-भाषा**—प्रयोगवादी काव्य में शब्द-प्रयोग की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। **डॉ० नामवर सिंह** के शब्दों में—''यद्यपि प्रयोगवादी कवियों की भाषा में आरम्भ में दुरूहता और अनगढ़पन अधिक था, परन्तु बाद में भाषा अधिक सहज और सरल बनी। उसमें अधिक पारदर्शिता और सम्प्रेषणीयता आई। भाषा में गेयता और आलंकारिकता कम हुई।'' कविवर शमशेरबहादुर सिंह की भाषा प्रयोगवादी कविता की भाषा के इन मानकों पर अक्षरश: सही प्रमाणित होती है। इनकी अधिकांश कविताओं की भाषा अत्यन्त सरल है, लेकिन उसमें शब्दों की स्थिति एक नवीन निहितार्थ को अभिव्यक्त करने में सफल होती है। छन्द एवं लय के प्रति उनमें कहीं आग्रह नहीं है। गजल तथा रूबाइयों आदि में इसकी जहाँ आवश्यकता पड़ी है, वहाँ इसमें भी वे किसी से कमतर नहीं हैं। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि शमशेरबहादुर सिंह के शब्द-प्रयोग यद्यपि सरल हैं, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अधिक गहन हैं। उन्होंने सिर्फ शब्दों तक ही अपनी कविता के अर्थ को नहीं बाँधा है, अपितु उससे आगे शब्दों के बीच के मौन अन्तराल में काव्यार्थ छिपा होता है।
6. **छन्द और लय**—छायावाद के उपरान्त कविता पहले छन्द से मुक्त हुई, फिर तुक से, फिर शब्द की लय से। प्रयोगवाद तक आते-आते मुक्त-छन्द कविता का मुख्य स्वर बन गया। प्रयोगवादियों ने इसमें नए-नए स्वरों एवं नई-नई लयों से प्रयोग किए।
7. **प्रतीक और बिम्ब**—प्रतीक प्रयोगवादी कविता में 'लाक्षणिक वक्रता' से आगे बढ़कर सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। शमशेर के प्रतीक अत्यधिक दुरूह हैं। प्रयोगवादी कविता बिम्ब-निर्माण की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध है। अज्ञेय के यहाँ बिम्ब अधिक हैं। अज्ञेय के काव्य-बिम्ब प्राय: सामान्य एवं सरल होते हैं। लेकिन वह कभी-कभी उनके द्वारा जीवन की किसी ऐसी समस्या को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं, जो उतनी सरल एवं सामान्य नहीं होती। अज्ञेय की अपेक्षा शमशेर के यहाँ सौन्दर्य-बिम्बों का रूप अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म है। उन्होंने अनेक कविताओं में प्रकृति के बिम्बों को अपनी भावनाओं के साथ इस तरह अन्तर्गृहीत किया है कि वह केवल वस्तु का चाक्षुष बिम्ब न होकर, कवि का मानसिक प्रतिबिम्ब बन जाता है, ऐसा मानसिक प्रतिबिम्ब, जिसमें स्वयं कवि का 'मैं' घुलामिला रहता है।

प्र.5. दुष्यन्त की गजलों के विषय एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

गजलों का विषय एवं उद्देश्य

दुष्यन्त कुमार की गजलों के विषय और उद्देश्य का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

1. **आम आदमी की पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए गजल**—देश के आम आदमी की भुखमरी, अभावों, बेरोजगारी, प्रताड़ना एवं पीड़ा की आवाज बुलन्द करने के लिए इन्होंने गजल की रचना की—

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।

2. **संवैधानिकता की आड़ में देश को फटेहाल बनाए रखने के प्रति चिन्ता**—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त जब देश का संविधान देश में लागू किया गया, तब उसमें देश और उसकी जनता को सर्वोपरि रखने की घोषणा की गई, किन्तु उस पर अमल नहीं किया गया। आम आदमी फटेहाल ही बना रहा और संविधान की दुहाई देकर अपने उत्तान की गुहार लगाता रहा, लेकिन हाल ज्यों-का-त्यों बना रहा, तब दुष्यन्त की कलम से गजल का यह शेर स्वत: निकल पड़ा—

सामान कुछ नहीं है फटेहाल हैं मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है।

3. **देश के नेतृत्व के प्रति आक्रोश**—दुष्यन्त कुमार ने अपनी गजलों में देश के उस नेतृत्व के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है, जिसने स्वतन्त्रता से पूर्व देश में सब प्रकार की सुख-सुविधाओं को उपलब्ध कराने का वादा देश की जनता से किया था। देश की जनता ने मिलकर आजादी की लड़ाई लड़ी और अन्तत: आजादी प्राप्त भी कर ली, लेकिन सत्ता हाथ में आते ही देश के राजनीतिज्ञ जनता से किया अपना वादा भूल गए। तब दुष्यन्त उन्हें लानत भेजते हुए लिखते हैं—

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।

4. **देश-भक्ति की प्रेरणा**—दुष्यन्त देश की सत्ता अथवा नेतृत्व से भले ही कितने खफा रहे हों, लेकिन उन्होंने कभी भी देश की जनता को देश के विरुद्ध नहीं भड़काया। उन्होंने तमाम अभावों, अव्यवस्थाओं के चलते लोगों को सदा देश पर मर-मिटने के लिए ही प्रेरित किया—

जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।

5. **उम्मीद की गजल**—दुष्यन्त कुमार ने देश और समाज में व्याप्त सभी प्रकार की अव्यवस्थाओं, अभावों, अत्याचार के बाद भी न स्वयं सुधार की उम्मीद छोड़ी है और न किसी को छोड़ने दी है। उनकी यही उम्मीद भी गजल बनकर बह निकली है—

पौधे झुलस गए हैं, मगर एक बात है,
मेरी नजर में अब भी चमन है हरा-भरा।

6. **व्यवस्था-परिवर्तन के लिए व्याकुल**—निराशा की अभिव्यक्ति, विवशताजन्य-विरोध की भावना एवं तीखी आलोचना-इन सबके पीछे दुष्यन्त कुमार का उद्देश्य कोई विद्रोह करना या हंगामा करना नहीं था, अपितु व्यवस्था में परिवर्तन लाना रहा है। अपने इस उद्देश्य को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

मगर इस व्यवस्था को बदलने के लिए क्रान्ति की जिस एक चिनगारी की जरूरत होती है, उसको भड़काने के लिए उनके पास एकमात्र लेखनी ही थी, जिससे वे लोगों को दिशाबोध दे सकते थे। इसी के द्वारा उन्होंने लोगों में वह चिनगारी भड़काने के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को इन शब्दों में प्रेरित किया—

एक चिनगारी कहीं से ढूँढ लाओ दोस्तो,
इस दीये में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

7. **व्यवस्था-परिवर्तन के लिए मुखरता आवश्यक**—दुष्यन्त कुमार के अनुसार व्यवस्था परिवर्तन तभी हो सकता है, जब लोग अपनी आवाज को मुखर करें। मगर व्यवस्था में ऐसे लोगों का अभाव परिलक्षित होता है। उन्हें लगता है कि मंच पर तरह-तरह के मुखौटे लगाए हुए ऐसे गूँगे-बहरे लोग एकत्र होने लगे हैं, जो कभी न बोले और न कभी चीखे-चिल्लाए। लोग परिस्थितियों के अनुसार मुखौटे बदलने लगे हैं, जो लोग कभी सत्य का पक्ष लेते थे, वे नेपथ्य में पड़े-पड़े झूठ का घूँट पीने लगे। ये ऐसे लोगों से सख्त घृणा करते थे। ऐसे लोगों के लिए वे कहते हैं—

यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।

8. **भ्रष्टाचार से क्षुब्ध**—स्वतन्त्रताप्राप्ति के उपरान्त देश की शासन-व्यवस्था में भ्रष्टाचार इतनी गहराई तक बैठ गया कि कवि को उसके समाप्त होने की कहीं कोई सम्भावना ही नजर नहीं आती। यहाँ जिसे देखो, उसके पैर घुटनों तक भ्रष्टाचार की कीचड़ में सने दिखाई देते हैं; यहाँ तक कि संसद भी इससे मुक्त नहीं रह पायी है। इसी पर क्षोभ व्यक्त करते हुए वे कह उठते हैं—

इस सड़क पर इस कदर कीचड बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।
पक्ष और प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं,
बात इतनी है कि कोई पुल बना है।

9. **असफलताओं के बीच आस्था का सम्बल**—दुष्यन्त कुमार निरन्तर सफलताओं का आकाश छूने का प्रयत्न करते रहे, लेकिन बार-बार असफलताएँ ही हाथ लगीं। असफलताओं को पाकर भी वे निराश नहीं हुए, बल्कि असीम साहस बटोरकर एवं आस्थाओं का सहारा लेकर सबको जीवन की शिक्षा देने लगे—

दुःख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर,
और कुछ जो हो न हो आकाश-सी छाती तो है।

10. **घोर निराशा और अवसाद की गजल**—सब तरह के प्रयास करने के पश्चात् भी जब पीड़ा का कोई निदान नहीं हो पाता, तब दुष्यन्त के भीतर बैठा गजलकार घोर निराशा एवं अवसाद में पहुँच जाता है। इस स्थिति में वह अपने दर्द को भी नहीं पहचान पाता कि वह कहाँ है और कितना है। इससे अधिक पीड़ा तथा परिस्थितियों के खराब होने की पराकाष्ठा और क्या हो सकती है—

सिर से सीने में कभी, पेट से पाँवों में कभी,
एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुष्यन्त कुमार ने अपनी गजलों में मानव-जीवन की विशद व्याख्या की है। उन्होंने गजल को प्रेम और सौन्दर्य, इश्क और हुस्न की कारा से निकालकर नवीन, विस्तृत और मुक्त आकाश दिया है।

11. **सन्तोष की सीख**—दुष्यन्त कुमार ने जनसाधारण की हीन दशा देखकर उसको सान्त्वना देते हुए सन्तोष रखने के लिए प्रेरणा दी; क्योंकि सदैव क्रान्ति से काम नहीं चलता। इसलिए वे कहते हैं—

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस ये मुद्दआ।

12. **भटके हुओं को राह दिखाने की गजल**—दुष्यन्त कुमार की गजल का सबसे बड़ा उद्देश्य उन लोगों को राह दिखाना था, जो आत्मश्लाघा में भटककर सही मार्ग पर आना ही नहीं चाहते। ऐसे लोगों को उन्होंने बड़ी शालीनता से यह सन्देश दिया है कि जीवन के इस मेले में भटका हुआ आदमी तभी घर पहुँच सकता है, जब वह स्वयं की भटकन से बाहर निकले—

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता,
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर ठिकाने आएँगे।

प्र.6. 'हिन्दी साहित्य में शोध' के अन्तर्गत शोध के अर्थ, परिभाषा प्रविधियों एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

हिन्दी साहित्य में शोध

शोध का अर्थ—शोध उस प्रक्रिया अथवा कार्य का नाम है जिसमें बोधपूर्वक प्रयत्न से तथ्यों का संकलन कर सूक्ष्मग्राही एवं विवेचक बुद्धि से उसका अवलोकन-विश्लेषण करके नए तथ्यों या सिद्धांतों का उद्घाटन किया जाता है। विषय विशेष के बारे में बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण एवं यथासम्भव प्रभूत सामग्री संकलित कर सूक्ष्मतर विश्लेषण-विवेचन और नए तथ्यों, नए सिद्धान्तों के उद्घाटन की प्रक्रिया अथवा कार्य शोध कहलाता है। शोध के लिए हिन्दी में प्रयुक्त अन्य पर्याय हैं—अनुसंधान, गवेषणा, खोज, अन्वेषण, मीमांसा, अनुशीलन, परिशीलन, आलोचना आदि।

शोध की परिभाषा

अंग्रेजी में जिसे लोग डिस्कवरी ऑफ फैक्ट्स या रिसर्च कहते हैं, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी स्थूल अर्थों में उसी नवीन और विस्मृत तत्वों के अनुसंधान को शोध कहते हैं। पर सूक्ष्म अर्थ में वे इसे ज्ञात साहित्य के पुनर्मूल्यांकन और नई व्याख्याओं का सूचक मानते हैं। वास्तव में सार्थक जीवन की समझ एवं समय-समय पर उस समझ का पुनर्मूल्यांकन, नवीनीकरण का नाम ज्ञान है, और ज्ञान की सीमा का विस्तार शोध कहलाता है। **पी०वी० यंग** के अनुसार 'नवीन तथ्यों की खोज, प्राचीन तथ्यों की पुष्टि, तथ्यों की क्रमबद्धता, पारस्परिक सम्बन्धों तथा कारणात्मक व्याख्याओं के अध्ययन की व्यवस्थित विधि को शोध कहते हैं।' **एडवर्ड** के अनुसार—'किसी प्रश्न, समस्या, प्रस्तावित उत्तर की जाँच हेतु उत्तर खोजने की क्रिया शोध कहलाती है।'

नए ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित प्रयत्न को विद्वानों ने शोध की संज्ञा दी है। **एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी ऑफ करेण्ट इंग्लिश** के अनुसार—"किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जाँच-पड़ताल शोध है।" दुनिया भर के विद्वानों ने अपने-अपने अनुभवों से शोध की परिभाषा दी है—**रैडमैन** और **मोरी** ने अपनी किताब 'दि रोमांस ऑफ रिसर्च' में शोध का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयत्न को हम शोध कहते हैं। **स्पार और स्वेन्सन** ने शोध को परिभाषित करते हुए लिखा है, "कोई भी विद्वत्तापूर्ण शोध ही सत्य के लिए, तथ्यों के लिए, निश्चितताओं के लिए अन्वेषण है।"

साहित्य में शोध की प्रविधियाँ

शोध की प्रविधियों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. सर्वेक्षण पद्धति (Survey method)
2. आलोचनात्मक पद्धति (Critical method)
3. समस्यामूलक पद्धति (Problem based method)
4. तुलनात्मक पद्धति (Comparative method)

5. वर्गीय अध्ययन पद्धति (Class based method)
6. क्षेत्रीय अध्ययन पद्धति (Regional method)
7. आगमन (Induction)
8. निगमन (Deduction) पद्धति
9. आलोचनात्मक पद्धति (Critical method)
10. काव्यशास्त्रीय पद्धति (Aesthetic/Poetics method)
11. समाजशास्त्रीय पद्धति (Sociological method)
12. भाषा वैज्ञानिक पद्धति (Linguistic method)
13. शैली वैज्ञानिक पद्धति (Stylistic method)
14. मनोवैज्ञानिक पद्धति (Psychological method)।

शोध का महत्त्व

शोध के महत्त्व को निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

1. शोध मानव-ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान-भंडार को विकसित एवं परिमार्जित करता है।
2. शोध से व्यावहारिक समस्याओं का समाधान होता है।
3. शोध से व्यक्तित्व का बौद्धिक विकास होता है।
4. शोध सामाजिक विकास का सहायक है।
5. शोध जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति (Curiosity Instinct) की संतुष्टि करता है।
6. शोध अनेक नवीन कार्य विधियों व उत्पादों को विकसित करता है।
7. शोध पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक है।
8. शोध ज्ञान के विविध पक्षों में गहनता और सूक्ष्मता प्रदान करता है।

प्र.7. शोध के अंग के विषय में संक्षेप में बताते हुए शोध की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

शोध के अंग

शोध-प्रक्रिया उन क्रियाओं अथवा चरणों का क्रमबद्ध विवरण है जिसके द्वारा किसी शोध को सफलता के साथ सम्पन्न किया जाता है। शोध-प्रक्रिया के कई चरण होते हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि शोध-प्रक्रिया में प्रत्येक चरण एक-दूसरे पर निर्भर होता है। कोई चरण एक दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र नहीं होता।

शोध-प्रक्रिया के विविध चरण

शोध-प्रक्रिया के प्रमुख चरणों का वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **विषय-निर्धारण**—स्वच्छन्द शोध की स्थिति में विषय चयन की प्रणाली शोधार्थी तक ही सीमित रहती है। शोधकर्ता स्वयं अपना विषय तय करता है। किन्तु शोध योजनाबद्ध तरीके का हो, उसकी कोई सांस्थानिक सम्बद्धता हो, किसी शैक्षिक संस्था से संचालित, सम्पोषित हो; उस स्थिति में विषय की चयन प्रणाली सांस्थानिक हो जाती है। फिर शोध हेतु शोधार्थी को विषय वह संस्था देती है। सूचीबद्ध चयन-प्रणाली में विषय निर्धारित करते समय शोध-पर्यवेक्षक और शोधार्थी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे प्रसंग में शोधार्थी और पर्यवेक्षक आपसी सहमति से शोध-विषय निर्धारित करते हैं।
2. **शोध-समस्या निर्धारण**—शोध समस्या निर्धारण किसी शोध प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। यह शोध-प्रक्रिया का प्रथम सोपान है। यहीं से शोध की दिशाएँ खुलती हैं। पूरे शोध की सफलता शोधार्थी द्वारा निर्धारित शोध-समस्या पर ही निर्भर होती है। शोध-समस्या सामान्य अर्थों में सैद्धान्तिक या व्यावहारिक सन्दर्भों में व्याप्त वह कठिनाई होती है, जिसका समाधान शोधार्थी अपने शोध के दौरान करना चाहता है। शोध-समस्याएँ निर्धारित करते समय हर शोधार्थी को निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—
   (i) कोई-न-कोई व्यक्ति, समूह अथवा संगठन हर वातावरण की समस्या से अवश्य ही सम्बद्ध रहता है।
   (ii) समस्या समाधान हेतु शोधार्थियों को कम-से-कम दो कार्य-प्रणालियों के साथ आगे बढ़ना चाहिए। कार्य-प्रणाली से तात्पर्य उस तरीके से है जिसके अधीन संचालित एक या एक से अधिक मूल्य परिभाषित होते हैं।
   (iii) कार्य-प्रणाली का प्रयोग करते हुए ध्यान रखना चाहिए कि हर समस्या के कम-से-कम दो सम्भावित परिणाम सामने हों, जिनमें से एक की तुलना में शोधार्थी को दूसरा परिणाम अधिक उपयुक्त लगता हो। अभिप्राय यह कि शोधार्थी के समक्ष कम-से-कम एक ऐसा परिणाम अवश्य हो, जो उसके उद्देश्य को पूरी तरह पूरित करता हो।
   (iv) कार्य-प्रणालियाँ समान न हों, एक-दूसरे से भिन्न हों, किन्तु वे लक्षित उद्देश्यों पर आधारित कार्य करने की सुविधा देने वाली हों।

3. **शोध-समस्या का निर्धारण चुनाव**—शोध-समस्या का चुनाव करते समय कुछ बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है; वे बातें निम्नलिखित हैं—
   (i) जिस विषय पर अत्यधिक कार्य हो चुका है, उस पर कोई नई रोशनी डालना कठिन होता है, इसलिए वैसे विषयों के चयन से बचना चाहिए।
   (ii) शोध-समस्या न तो अत्यन्त संकीर्ण होना चाहिए, न अत्यधिक विस्तृत। दोनों ही स्थितियाँ नुकसानदेह होती हैं। संकीर्णता की स्थिति में विषय-प्रसंग पर कार्य करने की सुविधा नहीं होती, तो व्यापकता की स्थिति में लक्ष्य केन्द्रित शोध की प्रेरणा नहीं जगती।
   (iii) शोध का विषय परिचित और सम्भाव्य क्षेत्र का होना चाहिए ताकि शोधार्थी यथोचित तथ्य, सामग्री, संसाधन आसानी से जुटा सके।
   (iv) शोध-समस्या निर्धारण के समय शोधार्थी को विषय के महत्त्व एवं उपादेयता के साथ-साथ अपनी योग्यता, प्रशिक्षण समय, धन एवं शक्ति के अनुमानित व्यय का सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए।
   (v) विषय-निर्धारण से पूर्व शोधार्थी को यथासम्भव प्रारम्भिक अन्वेषण कर लेने के बाद ही इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।
4. **शोध की रूपरेखा**—शोध-संकल्पना तैयार कर लेने के बाद हर शोधार्थी अपने अनुभवजन्य संकल्पना की जाँच हेतु एक शोध-प्रारूप बनाता है। अर्थात् अपनी योजना का एक आदर्श आधार वह तैयार कर लेता है, संकलित तथ्यों के विश्लेषण-विवेचन से उसके बारे में सारा निर्णय कर लेता है। शोध-प्रारूप वस्तुत: शोध के प्रारम्भ से अन्त तक की अभिकलित कार्य-योजना है, जिसमें शोधार्थी की पूरी कार्य-पद्धति दर्ज रहती है। आत्मस्फुरण से, अभिज्ञान से अथवा पर्यवेक्षक एवं सन्दर्भों के सहयोग से, जैसे भी हो, शोध-प्रारूप के रूप में शोधार्थी वस्तुत: अपने लिए एक स्वनिर्मित विधान पंजीकृत कराता है, जिसका अनुसरण करते हुए वह अपने लक्षित उद्देश्य तक पहुँच जाने की अश्वस्ति पाता है। प्रारूप बनाते समय शोधार्थी अपने अध्ययन के सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भ का भी विशेष ध्यान रखता है।
   शोध-प्रारूप अपने नामानुकूल प्रारूप ही होता है। पर इसमें इतना लोच होता है कि प्रयोजन पड़ने पर उसमें आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इसके अलावा अपनी संरचना में ही वह प्रमाणिकता, विश्वसनीयता, उचित अवधारणाओं के चयन में सावधानी के लिए दृढ़ एवं सुचिन्तित होता है। उसकी संरचना परिस्थिति, प्रयोजन, उद्देश्य एवं शोधार्थी की क्षमता (समय, धन, शक्ति) पर आधारित होती है, और उसमें व्यावहारिक मार्गदर्शकों का समावेश किया जाता है। शोध-विषय, शोधार्थी, शोध-पर्यवेक्षक तथा उपलब्ध सामग्री ही अन्तत: किसी शोध-प्रारूप के निर्धारक तत्व होते हैं। इन्हीं घटकों की गुणवत्ता से शोध-प्रारूप और शोध की गुणवत्ता रेखांकित होती है।
5. **सामग्री संकलन**—किसी शोध कार्य के प्राथमिक उद्यमों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री-संकलन का काम होता है। विषय-वस्तु से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन की सावधानी और विश्वसनीयता ही किसी शोध-कार्य को उत्कर्ष एवं महत्ता देती है। इसमें शोधार्थी की निष्ठा का बड़ा महत्व होता है। सामग्री-संकलन को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जाता है—
   (i) **प्राथमिक सामग्री**—प्राथमिक सामग्री किसी शोध के लिए आधार-सामग्री होती है। इसी के सहारे कोई शोधकर्ता अपने अगले चरण की ओर बढ़ता है। इन सामग्रियों का शोध-विषय से सीधा सम्बन्ध होता है। अपने शोध-विषय से सम्बद्ध समस्याओं के समाधान हेतु शोधार्थी विभिन्न स्रोतों, संसाधनों, उद्यमों से सामग्री एकत्र करते हैं। विभिन्न अवलोकनों, सर्वेक्षणों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों अथवा साक्षात्कारों द्वारा वे तथ्य के निकट पहुँचने की चेष्टा करते हैं। उनके द्वारा संकलित ये ही तथ्य-स्रोत प्राथमिक सामग्री कहलाते हैं। ऐसे तथ्यों का संकलन शोधार्थी प्राय: अध्ययन-स्थल पर जाकर करते हैं। समाज-शास्त्र विषयक शोध-सामग्री-संग्रह के ऐसे स्रोत को क्षेत्रीय-स्रोत भी कहा जाता है।
   (ii) **द्वितीयक सामग्री**—लक्षित विषय-प्रसंग के बारे में पहले से ही उपलब्ध अथवा संकलित सामग्री को द्वितीयक सामग्री कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे समस्त सामग्रियाँ एवं सूचनाएँ आती हैं जो प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में कहीं-न-कहीं उपलब्ध हैं। लक्षित विषय-प्रसंग से सम्बद्ध सन्दर्भ-ग्रन्थ, सम्बद्ध सरकारी विभागों में उपलब्ध सूचनाएँ आदि इसके उदाहरण हैं। इन्हें सहायक सामग्री अथवा प्रलेखीय स्रोत भी कहा जाता है।
   द्वितीयक सामग्री के प्रकाशित स्रोतों में प्रमुख हैं—पुस्तकालयों, संग्रहालयों में उपलब्ध सन्दर्भ-ग्रन्थ, सरकारों के वार्षिक प्रतिवेदन, सर्वेक्षण, योजना प्रतिवेदन, जनगणना रिपोर्ट, पत्र-पत्रिकाएँ, समाचार-पत्र, पुस्तकें आदि।

अप्रकाशित स्रोतों में प्रमुख हैं–हस्तलिखित सामग्री, डायरी, लेख, पाण्डुलिपि, पत्र, विभिन्न संस्थाओं में संकलित अप्रकाशित सामग्री आदि। इसके साथ–साथ गूगल–पुस्तक या सूचना–तन्त्र के वेबलिंक भी इन दिनों बड़े महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

द्वितीयक सामग्री का चुनाव करते समय सामग्री की विश्वसनीयता, उपयुक्तता एवं पर्याप्तता पर खास तरह की सावधानी रखने की जरूरत होती है।

6. **संकलित तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या**—शोध–कार्य के दौरान संकलित तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या शोध का महत्वपूर्ण सोपान है। वैज्ञानिक परिणाम प्राप्त करने के लिए तथ्यों का विश्लेषण और उनकी व्याख्या अत्यावश्यक है। सामग्री के विश्लेषण एवं व्याख्या में घनिष्ठ सम्बन्ध है। विश्लेषण का मुख्य कार्य व्याख्या की तैयारी करना है। अर्थात् विश्लेषण का कार्य जहाँ समाप्त हो जाता है, वहीं से व्याख्या शुरू होती है। विश्लेषण से प्राप्त सामान्य निष्कर्षों को व्यवस्थित, क्रमबद्ध एवं तार्किक रूप में प्रकट करना व्याख्या कहलाता है। **पी०वी० यंग** के अनुसार, विश्लेषण शोध का रचनात्मक पक्ष है। विश्लेषण और व्याख्या के पूर्व प्राप्त तथ्यों का सम्पादन कर संकलित सामग्री की कमियाँ दूर की जाती हैं। द्वितीयक तथ्यों की विश्वसनीयता, उपयुक्तता और पर्याप्तता जाँची जाती है। तथ्यों का वर्गीकरण किया जाता है। व्याख्यात्मक तत्वों को संकेतों या प्रतीकों द्वारा प्रकट किया जाता है। इससे विश्लेषण में आसानी हो जाती है।
7. **शोध प्रतिवेदन अथवा शोध प्रबन्ध लेखन**—शोध–प्रतिवेदन तैयार करना शोध–प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। इसका उद्देश्य जिज्ञासु लोगों तक शोध के बारे में व्यवस्थित, विस्तृत और लिखित परिणाम पहुँचाना होता है। शोध प्रतिवेदन में शोध के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रविधियाँ, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण, व्याख्या और निष्कर्ष आदि लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जब तक शोधार्थी अपना शोध लिखित रूप में प्रस्तुत नहीं करता, शोध–कार्य पूर्ण नहीं माना जाता। प्रतिवेदन द्वारा ही शोध–सम्मत ज्ञान दूसरों तक पहुँचाया जाता है। हरेक अनुशासन में शोध–प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की विशेष शैली होती है।

❑

TOUCH 'n' PASS

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं। 922

मॉडल पेपर

हिन्दी काव्य

B.A.-I (SEM-I) [**पूर्णांक** : 75

निर्देश—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—सभी **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **(3 × 5 = 15)**

1. शुक्ल जी द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. भारतेन्दु युगीन कविता की विशेषताएँ बताइए।
3. भक्तिकालीन कृष्ण-भक्तिधारा की विशेषताएँ बताइए।
4. रीतिमुक्त कविता में घनानन्द का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
5. 'अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक कहा जाता है' स्पष्ट कीजिए।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित **तीन** पद्यांशों में से किन्हीं **दो** की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए। प्रत्येक व्याख्या **7.5** अंक की है। अधिकतम **200** शब्दों में उत्तर अपेक्षित है।* **(7.5 × 2 = 15)**

6. यहु तन जालौ मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
   लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाऊँ।।
   सब रग तंत रबाब देतन, विरह बजावै देनित्त।
   और न कोई सुणि सकै, कै साई कै चित्त।।
7. रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
   दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज समाज बिसारे।
   एक अचंभौ भयो घनआनंद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
   टारें टरें नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे।।
8. पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
   प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
   सांसों की समाधि सा जीवन,
   मसि-सागर का पंथ गया बन,
   रूका मुखर कण-कण स्पंदन
   इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित **पाँच** प्रश्नों में से किन्हीं **3** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15** अंक का है। विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।* **(15 × 3 = 45)**

9. विद्यापति की 'पदावली' के भाव एवं कला पक्ष पर प्रकाश डालिए।
10. 'भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग था' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
11. निराला के काव्य की प्रगतिवादी चेतना पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।
12. 'रीतिकालीन कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोपरि है' इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
13. धर्मवीर भारती की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

❑

TOUCH 'n' PASS